साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक विघटन का समीक्षात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की हिन्दी विषय में

पी-एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2002-2003

निदेशक :

डॉ0 मनु जी श्रीवास्तव,

रीडर एवं विभागाध्यक्ष-हिन्दी,

बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी

शोधार्थी :

अचल सिंह

शोध केन्द्र

बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी (उ0प्र0)

निदेशक :
डॉ0 मनुजी श्रीवास्तव,
रीडर एवं विभागाध्यक्ष-हिन्दी,
बुन्देलखण्ड कॉलेज,
झाँसी (उ0प्र0)

फोन : (0517)2447669
निवास : 1362/ई,
सिविल लाइन,
झाँसी.

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री अचल सिंह ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी द्वारा स्वीकृत शोध विषय 'साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक विघटन का समीक्षात्मक अध्ययन' पर निरन्तर मेरे सम्पर्क में रहकर अनुसंधान-कार्य किया है। इस उपक्रम में इन्होंने विश्वविद्यालय शोध परिनियमावली के सभी उपबन्धों का पूर्ण पालन किया है। यह इनका मौलिक अनुसंधान कार्य है। मैं इस शोध-प्रबन्ध को विशेषज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुमति के साथ शोधार्थी के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

निदेशक,

(डॉ0 मनुजी श्रीवास्तव)

१२.०८.०३

प्राक्कथन

स्नातकोत्तर उपाधि के अध्ययन के दौरान मिली प्रेरणा के फलस्वरूप शोध प्रबन्ध लिखने के लिये हिन्दी साहित्य में बहुतेरे मणि-मुक्तक दिखे जिन पर यह कृति तैयार की जा सकती थी। परन्तु यह सब बिना मार्ग दर्शक के असम्भव था, फिर ऐसा निस्पृह मार्ग-दर्शक खोजना भी कठिन था, जो अनवरत रूप से प्रेरित ही नहीं करे बल्कि विषय-सामग्री एवं दिशा-निर्देश भी देता रहे। ऐसी सभी विशेषतायें सौभाग्य से मुझे परम् श्रद्धेय श्री (डॉ0) मनु जी श्रीवास्तव, रीडर एवं विभागाध्यक्ष-हिन्दी, बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी में मिली, जिसके परिणाम स्वरूप ही यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात जीवन के हर क्षेत्र में विघटन आता गया और चारों ओर शून्य फैलता गया। मैंने जब सामाजिक विघटन के दुष्परिणामों को अपने चारों ओर व्याप्त देखा तथा उपन्यासों में रूचि होने के कारण उसकी अभिव्यक्ति उपन्यास साहित्य में पाई, तो मैंने निश्चय किया कि मैं अपना शोध कार्य "साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक विघटन" पर करूँगा।

प्रस्तुत शोध कार्य से मुख्य बात यह सामने आती है कि आज का उपन्यासकार अत्यन्त सतर्क और सक्रिय है। वह सामाजिक-विघटन से आशंकित है, इसलिए सभी प्रकार के विघटन को अपने उपन्यासों में चित्रित कर वह सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक नेताओं को चुनौती दे रहा है, कि वे यदि इस विघटन को रोक सकते हैं तो रोकने का प्रयास करें। उसे इस बात की चिन्ता अधिक है कि जिनके हाथों में नेतृत्व है, वे स्वयं इस विघटन के शिकार हो रहे हैं। वास्तविकता यह है कि मूल्य ऊपर से छनकर नीचे तक पहुँचते हैं, इसलिये यदि नेतृत्व में ही भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद अथवा अन्य प्रकार के विघटन के तत्व होंगे तो सामान्य जन भी उन्हीं से प्रभावित होगा। नेतृत्व के लिए ईमानदारी, कर्तव्य निष्ठा, त्याग आदि नैतिक मूल्यों को अपनाने की अधिक आवश्यकता है। उन्हीं उपन्यासों के माध्यम से सन् 1960 के पश्चात राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक विघटन के स्वरूप का आकलन करना ही प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का मूल उद्धेश्य है।

अध्ययन को सुव्यवस्थित एवं सुचारू रूप से सम्पन्न करने हेतु मैंने अपने शोध को निम्न छः अध्यायों में विभक्त किया है :-

सामाजिक विघटनः अर्थ एवं स्वरूप, साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक विघटन, साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक दृष्टि से विघटन, साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सांस्कृतिक दृष्टि से विघटन, साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आर्थिक दृष्टि से विघटन तथा उपसंहार।

प्रथम अध्याय में, सामाजिक विघटन के अर्थ एवं उसके लक्षणों का वर्णन किया गया है। जिसमें विघटन के प्रमुख निम्न छः लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। (1) रूढ़ियों और संस्थाओं का संघर्ष, (2) किसी समिति के कार्यो का हस्तांतरण, (3) व्यक्तिवादी भावना, (4) एकमत का अभाव, (5) नियंत्रण का प्रभावहीन हो जाना तथा (6) सामाजिक परिवर्तन की तीव्र गति।

विघटन के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्कालीन परिस्थितियाँ होतीं हैं, इसलिये हमने परिस्थितियों पर विचार किया है। आलोच्य युग में राजनैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है तथा राजनैतिक दलों में कोई आदर्श नहीं रह गया है। राजनीति जातिवाद के निम्नतम् स्तर पर उतर आई है। जातीय संघर्ष बढ़े हैं। इस युग में पति-पत्नी के सम्बंधों में तनाव अधिक बढ़ा है। नारी ने विभिन्न क्षेत्रों में आशातीत प्रगति की है, किन्तु मूलतः आज भी वह दलित है। नव शिक्षित युवजन मुक्त यौन-सम्बन्धों के प्रति आकर्षित है। तथा उग्रवाद ने राष्ट्र की धर्म निरपेक्षता को धूमिल किया है।

द्वितीय अध्याय में, यह दिखाने का प्रयास किया गया कि भारतीय परिवार की विशेषता थी कि वह 'संयुक्त परिवार' में रहता था और पाश्चात्य परिवार 'इकाई परिवार' के रूप में। नगरीय सभ्यता के बढ़ने से वैयक्तिक मूल्यों को महत्व मिला और सामूहिक परिवारों का विघटन होने लगा। सामूहिक परिवारों का विघटन ग्राम से लेकर नगर तक के परिवार के विघटन में पुरूष और नारी दोनों का ही योगदान होता है। वैयक्तिक स्वार्थ, अहं का टकराव, भावना और स्नेह की कमी आदि अन्य घटक भी हैं जो पारिवारिक विघटन के

लिये उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। हिन्दी के उपन्यासकारों ने सामूहिक परिवारों का विघटन ग्राम से लेकर नगर तक के परिवारों में चित्रित किया है।

तृतीय अध्याय में, साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक विघटन का सटीक चित्रण हुआ है। इसी को इस अध्याय में बताया गया है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात चुनावों के कारण सामान्य व्यक्ति भी राजनीति से जुड़ गया। आज की राजनीति में समाज सेवा, राष्ट्रप्रेम, सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा एवं त्याग आदि का अभाव हो गया है और उसके स्थान पर मूल्यहीनता, स्वार्थ और भ्रष्टाचार का बोलबाला बढ़ता जा रहा है। नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बंधु था' मन्नू भंडारी के 'महाभोज' तथा राम दरश मिश्र के 'अपने लोग' में राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट आचरण तथा अनुचित हथकंडों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

चतुर्थ अध्याय में, पश्चिमी भौतिकवादी दृष्टिकोण से जो मानसिक विकृति बढ़ी हैं तथा नगरों में महिलाओं में समलैंगिकता को प्रमुखता दी जा रही है, बिना विवाह किये पर पुरूष से यौन-सम्बंध स्थापित करने के विघटन को चित्रित किया गया है। सांस्कृतिक विघटन में शिक्षा क्षेत्र के विघटन ने अग्नि में घृत का कार्य किया है। वर्तमान में शिक्षक व्यक्तिगत स्वार्थों तथा गुटबंदियों को ज्यादा महत्व दे रहे हैं। छात्र में शिक्षा के प्रति रूचि नहीं रह गयी है। वह अनुशासनबद्ध होकर रहना नहीं चाहता। इसके साथ ही यह दिखाया गया है कि साम्प्रदायिक दंगों में नुकसान सामान्य व्यक्ति को ही पहुँचता है। धनी व्यक्ति का कुछ नहीं बिगड़ता।

पंचम् अध्याय में, इस अध्याय में इस बात को स्पष्ट किया गया कि धनाभाव अथवा धनाधिक्य होने पर दोनों ही स्थितियों में विघटन होता है। धनाभाव के कारण व्यक्ति की नैतिकता मर जाती है वह हर गलत काम करने को सहर्ष तैयार हो जाता है। महिलाओं को पद की लालसा में अपने वॉस का हम बिस्तर तक होने को विवश होना पड़ता है। वहीं धनाधिक्य होने पर व्यक्ति और अधिक से अधिक धन अर्जित करने, दूसरे की सम्पत्ति को हस्तगत करने तथा विभिन्न प्रकार के अत्याचार करने के लिये अपने को समर्थ समझने लगता है और दूसरों को धमकाने या दंडित करने में विश्वास करता है, उसकी सशक्त अभिव्यक्ति हिमांशु जोशी के उपन्यास 'सु-राज में' में हुई है।

षष्ठम् अध्याय में, विघटन के सभी कारणों पर प्रकाश डाला गया है तथा विघटन का निष्कर्ष एवं महत्व को बताया गया है। 'उपसंहार' में विघटन के समग्र रूपों का मूल्यांकन किया गया है। इस अध्याय को परम्परागत ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

हंस-वाहिनी, वेदमाता, विश्वमाता आद्यशक्ति गायत्री की कृपा-छाया में मेरा यह शोध प्रबंध इस पूर्णता को प्राप्त कर सका है, संसार की समस्त चर-अचर, क्रिया-प्रतिक्रिया एवं भौतिक-अभौतिक प्रतिमान विधि की किसी अदृश्य सत्ता के द्वारा ही संचालित है। इस कार्य को निपटाने में उसकी असीम कृपा रही है। जिसके अभाव में, मैं यह कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता था, इसलिए मैं सर्वप्रथम अपने कृतज्ञ भाव सुमन ईश्वर और हंस वाहिनी की अनुमेय शक्ति को असीम श्रद्धा और भक्ति के साथ नतमस्तक होकर समर्पित करता हूँ।

वंदनीय श्री (डॉ0) सुरेश चंद्र शर्मा (पूर्व विभागाध्यक्ष-हिन्दी,आगरा कॉलेज, आगरा) ने मुझे समय-समय पर सामग्री संकलन के लिये विद्वत्तापूर्ण सुझाव देकर मार्ग दर्शन किया। उनके प्रति आभार व्यक्त करने में मेरी लेखनी असमर्थ है। आदरणीय श्री (डॉ0) जे.एल. वर्मा (रीडर-बी.एड. विभाग, बी.के.डी., झाँसी) ने लेखन के समय मेरी अनेक उलझनों एवं शंकाओं का समाधान करते हुये मुझमें उत्साह का संचार किया। इसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। शोध-प्रबंध के लेखन के समय आई अनेक कठिनाईयों को दूर करने में श्री ओम प्रकाश यादव का सक्रिय योगदान रहा। जिसके कारण यह कठिनाईयाँ सुगमता से दूर हो सकीं। इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय के सर्व श्री आर0बी0 सिंह, डॉ0 हरी शंकर यादव एवं राजेन्द्र कुमार वर्मा से समय-समय पर जो उत्साह, स्नेह व सहयोग प्राप्त हुआ वह अविस्मरणीय है। मैं निष्ठा से उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। अभिन्न मित्र योगन्द्र कुमार आर्या के सक्रिय योगदान के लिए आभार व्यक्त करने में संकोच महसूस कर रहा हूँ। इस शोधकार्य को पूर्ण करने में रश्मि जी का अनिवर्चनीय सहयोग रहा है। उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर मैं औपचारिकता नहीं निभाना चाहता। खुशी के ऐसे क्षणों में अपने दोस्तों को भुलाकर मैं अक्षम्य अपराध नहीं कर सकता, जिनके हास परिहास एवं स्नेह के बीच मुझको जीवन जीने की शक्ति प्राप्त हुई है। मैं उन सभी का आभारी हूँ। जिनमें मुकेश मिश्रा, उमेश माहौर, नीरेन्द्र सिंह यादव, वी0के0 कुशवाहा (क्राईम रिपोर्टर-अमर उजाला), एडवोकेट राकेश झा, संजय कंचन (पूर्व उपसम्पादक - दैनिक भास्कर), निधि सिंह चिरार, नीलम चतुर्वेदी, एडवोकेट राजेश झा, जितेन्द्र तिवारी, संजीव दीक्षित, कामता प्रसाद, जितेन्द्र सिंह परमार, महादेव सिंह एवं पंकज शुक्ला

(सह सम्पादक - दैनिक जागरण) आदि मुद्रण में आयीं परेशानियों को दूर करने के लिये फिरोज खाँन और इनायत खाँ का आभारी हूँ।

मेरे पिता आदरणीय श्री पी0आर0 चिरार (अवकाश प्राप्त मुख्य कार्यालय अधीक्षक, रेल कारखाना, झाँसी) एवं माता श्रीमती कुन्दन चिरार ने मुझे जिस आत्मीयता और वात्सल्य से ओत-प्रोत अध्ययन की सुविधा प्रदान की है तथा शोध कार्य के लिये आवश्यक सामग्री संचय करने में मेरा उत्साहवर्धन किया है, वह सदैव स्मृति के रूप में अमूल्य धरोहर रहेगा। मैं अपने बड़े भाई श्री प्रभात सिंह चिरार (अवर अभियन्ता-पी0 डब्ल्यू0 डी0), भाभी श्रीमती पूनम सिंह (आवास-विकास विभाग, उ0 प्र0) एवं भाई श्री ज्ञानेन्द्र सिंह (डब्ल्यू0 टी0 एम0 रेलवे माइक्रोवेव), भाभी श्रीमती अभिलाषा का आभारी हूँ, जिन्होंने पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त कर स्वतंत्र चिंतन के लिये शुभ अवसर प्रदान किया।

अन्त में, मैं उन सभी ग्रन्थकारों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता लेकर मैंने अपना निर्दिष्ट कार्य पूर्ण किया है।

विनीत,

अचल सिंह

(अचल सिंह)
शोधार्थी

दिनाँक : 12.09.2003.

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

सामाजिक विघटन: अर्थ, स्वरूप

- विघटन: तात्पर्य एवं परिभाषा
- सामाजिक विघटन का अर्थ व परिभाषा
- सामाजिक विघटन के लक्षण

प्रथम अध्याय

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक विघटन

सामाजिक विघटन : अर्थ, स्वरूप

विघटन : तात्पर्य एवं परिभाषा

"विघटन" शब्द संस्कृत की 'घट्' धातु में 'वि' उपसर्ग और 'ल्युट्' प्रत्यय लगाकर बना है जिसका अर्थ होता है- 'अलग-अलग करना, 'बर्बादी', विनाश।'

वस्तुतः 'विघटन' शब्द संगठन का विलोम है। एक में अनेक का समावेश करना ही संगठन है। यह समावेश एक निश्चित क्रम से ही संभव है। श्रीमती सरला दुबे के अनुसार "संगठन का तात्पर्य एक संरचना के अर्न्तगत एकाधिक इकाईयों या तत्वों की उस निश्चित प्रतिमानात्मक सम्वद्धता से है जो कि एक प्रकार्यात्मक (Functional) सम्बन्ध के आधार पर उन इकाईयों को एक सूत्र में बांधता है तथा उन्हें क्रियाशील व गतिशील करता है ताकि संगठन के वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति संभव हो सके।"[2]

शब्द 'विघटन' संगठन का विलोम होने के कारण उसके विपरीत में असंतुलन होता है। बिखराव और विश्रृंखलता की स्थिति ही विघटन है। विघटन में असंतुलन होता है। श्रीमती सरला दुबे आगे विघटन को इस प्रकार परिभाषित करती हैं,

"विघटन" वह स्थिति है जिसमें कि एक व्यवस्था की विभिन्न इकाइयाँ आपस में एक प्रकार्यात्मक सम्बन्ध (Functional Relation) को बनाये रखने में असफल होती हैं और एक पारस्परिक तनावपूर्ण स्थिति में इस तरह से क्रियाशील होती हैं कि उस असन्तुलित परिस्थिति में स्थापित उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव नहीं होती।"[3]

वस्तुतः विघटन व्यवस्था के नष्ट होने अथवा निर्वाचक अंगों की एकता के भंग का सूचक है। इस प्रकार हम विघटन को इस प्रकार परिभाषिति कर सकते हैं।

---

1 - वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश, पृष्ठ-928
2 - सामाजिक विघटन तथा सुधार, पृष्ठ -4
3 - उपरिवत्, पृष्ठ - 38

"विघटन", वह स्थिति है जिसमें संगठन के एक-एक अंग को अलग करने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है और व्यवस्था के निर्वाचिक अंगों की एकता भंग होने लगती है।"

सामाजिक विघटन अर्थ व परिभाषा :-

'विघटन' शब्द 'संगठन' का विपरीत है। समाज एक संगठित संस्था होती है जब उसके संगठन में विषमताएं उत्पन्न हो जाती हैं और उसकी कार्यप्रणाली में अवरोध उत्पन्न होता है तो उसे सामाजिक विघटन कहते हैं। समाज संतुलित होता है किन्तु विघटन आ जाने पर उसमें असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है श्रीमती सरला दुबे ने सामाजिक विघटन को परिभाषित करते हुए कहा कि:

"सामाजिक विघटन सामाजिक संगठन की वह अस्वस्थ और असंतुलित दशा है जबकि सामूहिक जीवन नष्ट हो जाता है तथा व्यक्तियों और समूहों के पारस्परिक सम्बन्ध अस्थिर व विकृत हो जाते है"।[1]

श्री अजित माथुर ने 'सामाजिक विघटन' को निम्न प्रकार परिभाषित किया:

"सामाजिक विघटन एक ऐसी स्थिति है जिसके द्वारा सामाजिक सम्बन्धों में विषमताएं पैदा हो जाती हैं तथा सामूहिक समरूपता नष्ट हो जाती हैं अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि सामाजिक विघटन एक ऐसी स्थिति है जिसमें समाज की विभिन्न संस्थाएं अपनी निश्चित स्थिति में, निश्चित उद्देश्यों के अनुरूप कार्य न कर रही हों"।[2]

वस्तुतः सामाजिक विघटन की प्रक्रिया का आरम्भ सर्वप्रथम पाश्चात्य राष्ट्रों में हुआ। यही कारण है कि पाश्चात्य समाजशास्त्रियों ने सर्वप्रथम इस पर विचार किया। हमारे लिए भी यह आवश्यक हो जाता है कि हम पाश्चात्य समाजशास्त्रियों के दृष्टिकोण को भलीभाँति समझें। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री इलियट और मेरिल ने सामाजिक विघटन पर गम्भीरता से विचार किया है। उन्होंने 'सामाजिक विघटन' पर विचार करते हुऐ सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के टूटने को महत्वपूर्ण माना अनका मत है कि:

---

1 - दल-बदल और राज्यों की राजनीति, पृ0 396
2 - संसदीय प्रजातंत्र, पृ0 14

"सामाजिक विघटन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक समूह के सदस्यों के बीच स्थापित सम्बन्ध टूट जाते है या समाप्त हो जाते है।"[1]

श्री फैरिस, समूह के स्वीकृत कार्यो में बाधा पड़ने पर ही विघटन मानते हैं। उनके अनुसारः

"सामाजिक विघटन मनुष्यों के बीच प्रकार्यात्मक सम्बन्धों के उस सीमा तक टूट जाने को कहते है जिसके कारण समूह के स्वीकृत कार्यो के करने में बाधा पड़ती है।"[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं पर ध्यान देने से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं- (1) समूह के सदस्यों के बीच सम्बन्धों का टूटना और (2) समूह के स्वीकृत कार्यो में बाधा पड़ना समाज द्वारा स्वीकृत सम्बन्ध विभिन्न हो सकते हैं, यथा पिता-पुत्र, माता-पुत्री, श्वसुर-बहु, सास-बहु, भाई-भाई, भाई-बहन, देवर-भाभी, ननद-भाभी आदि। इन सम्बन्धों में परस्पर तनाव बढ़ने पर धीरे-धीरे सम्बन्ध टूट जाते हैं और उसके पश्चात् समूह के स्वीकृत कार्यो में बाधा पड़ती हैं। विवाहादि के कार्य समाज के स्वीकृत कार्य हैं किन्तु विवाहविच्छेद होना सामाजिक विघटन है। श्रीमती सरला दुबे इस तथ्य के संदर्भ में अपने विचार प्रकट करती हुई कहतीं हैं किः

"जिस प्रकार समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है, उसी प्रकार समूह भी उसके सदस्यों के बीच पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों का गुच्छा (Cluster) है और यह गुच्छा जब टूट जाता है या बिखर जाता है तो वह सामाजिक विघटन की स्थिति होती है।"[3]

वस्तुतः समूह से तात्पर्य एक परिवार तो है ही, किन्तु गॉव, नगर, प्रदेश अथवा राष्ट्र भी हो सकता है। विवाहविच्छेद की समस्या जब एक परिवार की होती है तो परिवार ही समूह है किन्तु वही समस्या अनेक परिवार की होने लगे तो पूरा गॉव अथवा नगर प्रभावित होता है। सामाजिक विघटन तभी आरम्भ होता है जबकि विभिन्न भागों का सामंजस्य

1- दल-बदल और राज्यों की राजनीति, पृ0 143
2- सन् 62 के अपराधी कौन, पृ0 37
3- Gilin and Gilin Cultural Sociology, The MecMillen and Co. New York 1950, P.742-743

टूटता हैं'।[1] वस्तुतः समूह के सदस्यों के बीच स्थापित सम्बन्धों के रूप में एक प्रतिमान Pattern को जन्म मिलता है, जिसे हम समूह-प्रतिमान (Group Pattern) भी कह सकते हैं। यह समूह-प्रतिमान व्यक्ति के जीवन के प्रमुख उद्देश्यों तथा आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। समूह-प्रतिमान वास्तविक तो होते हैं, किन्तु प्रत्यक्षतः इन्हें नापा तो नहीं जा सकता है। इन प्रतिमानों में व्याघात उत्पन्न होने अथवा इनके टूट जाने पर ही सामाजिक विघटन की स्थिति उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार कहा जाता है, कि समूह-प्रतिमान के कारण ही समाज में संतुलन बना रहता है। संतुलन स्थापित करने वाली शक्तियों में उत्पन्न परिर्वतन से सामाजिक असन्तुलन उत्पन्न होता है, जिससे सामाजिक विश्रृंखलता फैलती है।

सामाजिक विघटन का तात्पर्य ही यह है कि समाज के विभिन्न अंगों का संतुलन समाप्त हो जाता है और वे किसी नियम के अनुसार कार्य न करके, मनमाने ढंग से काम करना आरम्भ कर देते हैं। उनके ऊपर जो सामाजिक नियंत्रण रहता था, वह समाप्त हो जाता है तथा समाज में अनिश्चितता और अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

श्री निऊमेयर ने व्यक्तियों, समूहों, संस्थाओं और मानदण्डों के बीच उत्पन्न असंतुलन को ही सामाजिक विघटन की स्थिति की संज्ञा प्रदान की है।[2]

सामाजिक विघटन को एक प्रक्रिया मान लेने पर एक बात स्पष्ट हो जाती है, कि यह समाज की परिवर्तनशील स्थिति होती है। सामाजिक विघटन को अन्तिम अवस्था नहीं माना जा सकता। समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इसका प्रमुख कारण है कि समाज में कुछ ऐसी शक्तियाँ निरन्तर क्रियाशील रहती हैं जिनके कारण शत-प्रतिशत सन्तुलन और व्यवस्था नहीं रह पाती। इन शक्तियों में संघर्ष, प्रतिस्पर्धा,

---

1 - " A Certain amount of deterioration may accompany social disorganization; but the unbalanced conditions growing out of the inadequate adjusment of personsconditions of the time constitute the chief characterstics of social disoranization."
- Mastin H.Neumeyer, Juvenile delinquency society, D.Van Nastrandco, New York, 1995, P.9

2 - "Social disorgazation is more than a condition, it is fundamentally a process or a series of processes. The series of events that make up the process involves conflict, excessive competition differentiation, and other disruptive subprocess". उपरिवत्, पृ0 17

श्रम-विभाजन, सामाजिक विभेद आदि को माना जा सकता है। अन्त में हम उपर्युक्त परिभाषाओं एवं विद्वानों के मतों के आधार पर सामाजिक विघटन को निम्नप्रकार से परिभाषित कर सकते हैं :-

सामाजिक विघटन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके कारण समूह के अंगों में शिथिलता आती है अथवा उनके सम्बन्ध पूणर्तः टूट जाते हैं, जिसके परिणामस्परूप उसके अंग शत-प्रतिशत कार्य नहीं कर पाते और समाज में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है, परिणामतः समाज के उदेश्य की पूर्ति नहीं हो पाती।

सामाजिक विघटन के प्रमुख लक्षण :-

सामाजिक विघटन की पहचान करने के लिए समाजशास्त्रियों ने उसके लक्षणों की पहचान की है श्री फैरिस ने सामाजिक विघटन के प्रमुख आठ लक्षण बताये है जो निम्न प्रकार हैं:

(1) औपचारिकता (Formality), (2) पवित्र तत्वों का ह्रास (Decline of Sacred Elements), (3) स्वार्थ और रूचि में व्यक्तिभेद (Individuality of Interests and Tastes), (4) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और अधिकारों पर बल देना (Emphasis on Personal Freedom and Rights), (5) सुखवादी व्यवहार (Heydonic Behaviour), (6) जनसंख्या में विभिन्नता (Population Heterogencity), (7) पारस्परिक अविश्वास (Mutual Distrusts) (8) अशान्तिपूर्ण घटनाएं (Unrest Phenomena)[1]

गिलिन और गिलिन ने सामाजिक विघटन के केवल पाँच लक्षण गिनाये हैं।[1]

(1) साधारण दर (Simple Rate),
(2) समष्टि मापदण्ड (Composite measurement),
(3) जनसंख्या की रचना (Composition of Population),
(4) सामाजिक दूरी (Social Distance),
(5) हिस्सेदारी (Participation)

---

1 - " A Society experience disorganization when the parts of it, loose their intergration and fail to function according to their implicit purposes." - Robert E.L. Faris, Social Disorganization, P.49

सामाजिक विघटन की परिस्थितियाँ एवं प्रमुख लक्षण :-

हम यहाँ सामाजिक विघटन के उन प्रमुख लक्षणों पर विचार करेंगे जिससे समाज तो प्रभावित होता ही है, साहित्य भी प्रभावित होता हैं। (1) रूढ़ियों और संस्थाओं का संघर्ष, (2) किसी समिति के कार्यो का हस्तान्तरण, (3) व्यक्तिगतवादी भावना, (4) एकमत का ह्रास, (5) नियंत्रण का प्रभावहीन हो जाना तथा (6) सामाजिक परिवर्तन की तीव्र गति।

लक्षण

1- रूढ़ियों और संस्थाओं का संघर्ष :-

हर समाज में कुछ रूढ़ियाँ स्थापित होती हैं। परिवर्तन की दशा में कुछ नये जीवन-मूल्यों की सृष्टि होती है, जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन रूढ़ियों और नवीन जीवन-मूल्यों के मध्य संघर्ष उत्पन्न होता है। प्राचीन रूढ़िवादी व्यक्ति समाज में व्याप्त रूढ़ियों का समर्थन करते हैं और रूढ़ि-भंजको से संघर्ष करते है। इस संघर्ष से विघटन के लक्षण का ज्ञान हो जाता है। भारतीय समाज में तो असंख्यों रूढ़ियां हैं। नारी से सम्बंधित ही अनेक रूढ़ियां हैं। नारी को शिक्षित करने की आवश्यकता नहीं, विधवा विवाह नहीं हो सकता, पर्दा-प्रथा आदि अनेक रूढ़ियाँ इसी प्रकार की हैं। अन्तर्जातीय विवाह की रूढ़ि भी इस प्रकार की है। नवीन चेतना और जीवन-मूल्यों के उदय ने इस सम्बन्ध में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किये। नारी को पुरूष के समान ही अधिकार दिये जा रहे हैं, अन्तर्जातीय विवाह हो रहे हैं, नारी-शिक्षा पर बल दिया जा रहा है,विधवा-विवाह समाज में स्वीकृत होते जा रहे हैं, संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और इकाई परिवार बन रहे हैं। इन परिवर्तनों का तात्पर्य यह नहीं हैं कि प्राचीन रूढ़ियाँ समाप्त हो गयी हैं। कहीं-कहीं वे रूढ़ियाँ आज भी जीवित हैं। रूढ़िवादी इन परिवर्तनों का विरोध करते हैं और नयी चेतना के वौध्दिक व्यक्ति इन प्राचीन रूढ़ियों से संघर्ष करके नये परिवर्तन लाते हैं। यह संघर्ष ही सामाजिक विघटन का लक्षण बन जाता है।

2- किसी समिति के कार्यो का हस्तांतरण :-

प्रत्येक समाज में अनेक समितियाँ होती हैं, जिनके अपने-अपने कार्यक्षेत्र होते हैं; किन्तु जब किसी एक समिति के कार्यो का हस्तांतरण दूसरी समिति को हो जाता है, तो विघटन का लक्षण उत्पन्न होता है। सामाजिक परम्परा, नियम अथवा कानून द्वारा उन

समितियों के कार्य निर्धारित होते है। सभी समितियाँ अपने-अपने निर्धारित कार्य करती रहती हैं, तो समाज मे सुतंलन बना रहता है। किन्तु जब किसी एक समिति के कार्यों का हस्तांतरण दूसरी समिति को दे दिया जाता है अथवा एक समिति के कार्यो को छीन लेती है, असंतुलन उत्पन्न हो जाता है और यह असंतुलन विघटन का लक्षण बन जाता है। भारतीय समाज में संयुक्त परिवार के अपने ऐसे अनेक कार्य थे, जिनके उससे छिन जाने के कारण विघटन की स्थिति उत्पन्न हो गयी। सरकार के अनेक कार्यो को व्यक्तिगत हाथों में दिया जा रहा है, जो विघटन के लक्षण बन रहे हैं।

3– **व्यक्तिवादी भावना** :–

जब किसी समाज में व्यक्तिवादी भावना की प्रबलता होती है, तो सामाजिक मूल्यों का ह्रास होने लगता है। वैयक्तिक मूल्य वहीं तक ठीक रहते हैं जहां तक उनका सामाजिक मूल्यों से संघर्ष नहीं होता, किन्तु जब व्यक्तिवादिता की भावना उग्र होती जाती है, तो सामाजिक विघटन अवश्यम्भावी हो जाता है। व्यक्तिवादी के लिए उसके अपने अधिकार और कल्याण का ही महत्व होता है और जो भी उसके अधिकार और कल्याण में बाधक दिखाई देते हैं, वहीं वह उन सामाजिक मूल्यों का भंजक बन जाता है। व्यक्तिवादिता के बढ़ने से समाज में पृथकतावाद की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है। व्यक्तिवादिता का दर्शन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता है। राजनीति में व्यक्तिवादी राजनैतिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं, आर्थिक जगत में झूठी महँगाई उत्पन्न हो जाती है, समाज में सामाजिक मान्याताओं को नष्ट किया जाता है और धर्म के क्षेत्र में भी अनुशासन को समाप्त करके भ्रष्टाचार होता है। व्यक्तिवादिता का बढ़ावा निश्चित रूप से सामाजिक विघटन का लक्षण हैं।

4– **एकमत का अभाव** :–

किसी भी समाज के संगठन की सुदृढ़ता के लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी रीतियों आदि के लिए एकमत हों। जब भी समाज के विभिन्न व्यक्तियों में मत-वैभिन्य उत्पन्न होता है, तभी सामाजिक विघटन आरम्भ हो जाता है। हिन्दू समाज के हजारों वर्ष तक सशक्त रहने के पीछे एक प्रमुख कारण यही था कि समाज में एकमत स्थापित करने के लिए विभिन्न संगठनों की बैठकें की जाती थी और सामाजिक विघटन से उसे

बचाने का प्रयास किया जाता था। प्राचीन धर्मशास्त्रों की आवश्यकतानुसार व्याख्या की जाती थी। विदेशी आक्रमणकारियों के कारण हिन्दू समाज पीड़ित हुआ तो धर्म के क्षेत्र में टीका-युग का उदय हुआ। प्राचीन शास्त्रों की टीकाएं रची गयीं और समाज को पुनर्जीवित करने के सफल प्रयास हुए। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् ऐसे प्रयासों का अभाव हो गया, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक विघटन आरम्भ हो गया।

5– नियंत्रण का प्रभावहीन हो जाना :–

समाज की सुदृढ़ता के लिए उस पर नियंत्रण आवश्यक होता है। प्राचीन भारत में पंचायतों द्वारा नियंत्रण रखा जाता था। जब सामाजिक नियंत्रण प्रभावहीन होने लगता है, तो समाज में ऐसे शक्तिशाली स्वार्थ-समूह पनपने लगते हैं, जो सामाजिक परम्पराओं को अस्वीकृत कर देते हैं। परिणामतः सामाजिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। संतुलन के बिगड़ने से सामाजिक विघटन अवश्यम्भावी हो जाता है। आज के गतिशील समाजों में इस असंतुलन की स्थिति को देखा जा सकता है। नियंत्रण के प्रभावहीन होने से ही वैयक्तिक दर्शन का विकास होता है और सामाजिक मूल्य ह्रास की स्थिति में पंहुच जाते हैं। नियंत्रण के शक्तिहीन होने पर समूह के कार्यो में बाधा पहुँचती है। और वे अपने-अपने कार्य सुचारू रूप से करने में असमर्थ हो जाते हैं। यही कारण हैं कि सामाजिक नियंत्रण को सामाजिक संगठन के लिए आवश्यक माना जाता रहा। नियंत्रण का अभाव तो असंतुलन उत्पन्न करेगा ही और उससे समाजिक विघटन होगा ही।

6– सामाजिक परिवर्तन की तीब्र गति :–

जब भी किसी समाज में परिवर्तन की गति तीव्र होती है तो सामाजिक विघटन आरम्भ हो जाता है। वास्तविकता यह है कि परिवर्तन की तीव्र गति के अनुसार विभिन्न समितियाँ अपने कार्यों अधिकारों में उसी गति से परिवर्तन नहीं कर पातीं। परिणामतः सामाजिक विघटन आरम्भ हो जाता है। समाज के संगठन के लिए यह आवश्यक है, कि जिस गति से सामाजिक परिवर्तन हो रहा हो, उसी गति से समिति और व्यक्ति के कार्य-क्षेत्रों और उनके अधिकारों में भी परिवर्तन हो। किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक युग में, जब विश्व बहुत छोटा हो गया है, एक राष्ट्र के प्रभाव दूसरे राष्ट्र में त्वरित गति से पहुंच

रहे हैं और परिवर्तन की गति अत्यंत तीव्र हो गई, ऐसी स्थिति में समाज की विभिन्न समितियों के कार्य-क्षेत्रों में उसी गति से परिवर्तन होना सम्भव नहीं हैं। यही कारण है कि आज सामाजिक विघटन की गति भी तीव्र हो गई है।

राजनैतिक परिस्थितियाँ

सामाजिक विघटन को प्रभावित करने वाले जो उपादान हैं, उनमें परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान होता हैं। राष्ट्र की राजनैतिक परिस्थितियाँ भी उतनी ही प्रभावकारी होती हैं, जितनी अन्य परिस्थितियाँ। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व भारतीय नागरिकों के मन में एक आशा थी, किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पचास वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी उसकी आशाओं की पूर्ति नहीं हुई, जिससे जन-मानस में असंतोष उत्पन्न होने लगा। जो कानून स्वतंन्त्रता से पूर्व थे, वे ही स्वतन्त्रता -प्राप्ति के पश्चात् भी लागू रहे जिससे संविधान में प्रदत्त अधिकारों-नागरिकों की स्वतन्त्रता, समानता, न्याय तथा रोजगार के समान अवसर उपलब्ध होना-की प्राप्ति में उसे वैसी ही कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं जैसी कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व झेलनी पड़ती थीं। जन-मानस का मोह-भंग हो गया।

साठ का दशक भारतीय राजनीति में अत्यन्त घटना प्रधान दशक रहा, जिसके कारण उसका महत्व और भी बढ़ गया। 16 फरवरी से 25 फरवरी तक तृतीय आम चुनाव हुए जिसमें कांग्रेस की शक्ति क्षीण हुई। इससे स्पष्ट हो गया, कि जनता केवल नारों से अब भुलावे में आने वाली नहीं है। कांग्रेस की लोकप्रियता घटने लगी। 20 अक्टूबर सन् 1962 को चीन ने भारतीय सीमा पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण से नेहरू-सरकार की सुरक्षा-नीति विदेश नीति की शिथिलताएँ सबके समक्ष आ गयीं। भारत ने चीन से पंचशील सिद्धान्त का समझौता किया था और उस समझौते के पश्चात् वह चैन की नींद सो गया। दूसरी ओर चीन ने भारत के अस्माई चिन इलाके में 1200 मील लम्बी एक सड़क और दो हवाई पटिट्याँ बना लीं। भारत विरोध-पत्र भेजता रहा। और चीन भारतीय क्षेत्र में कई सैनिक चौकियाँ स्थापित करता रहा इस सन्दर्भ में डी0आर0मानकेकर ने लिखाः

"सन् 1959 और 1961 के बीच भारत सरकार टालमटोल कर रही थी, मीटिंगें कर रही थी, फाइलें इधर से उधर दौड़ा रही थी, विस्तारपूर्ण आपत्ति-पत्रों का विनिमय कर रही थी और कुछ ढीली-ढीली कार्रवाई कर रही थी, उस समय में चीन अत्यन्त व्यावहारिक रूप से लद्दाख में अपनी 'अग्रिम नीति' कार्यान्वित कर रहा था नयी सैनिक चौकियाँ स्थापित कर रहा था, अधिकाधिक भारतीय भूमि को निगलता जा रहा था"[1]

चीनियों का आक्रमण टिड्डी-दल के समान हुआ। भारतीय सैनिकों के पास न तो आवश्यक युद्ध-सामग्री ही थी ओर न संख्या बल ही, किन्तु फिर भी भारतीय सैनिक वीरतापूर्ण लड़े। वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए भी उन्हें कई महत्वपूर्ण चौकियाँ से पीछे हटना पड़ा। 25 अक्टूबर को चीनियों ने हमारे सामरिक महत्व के नगर 'तोवांग' पर अधिकार कर लिया। 14 नवम्बर को चीन ने एकपक्षीय युद्ध-विराम की घोषणा कर दी। भारत ने इस एक पक्षीय युद्ध-विराम का उल्लंघन नहीं किया और कोलम्बो सम्मेलन में ' शान्ति प्रस्ताव ' पारित किया, किन्तु चीन ने नेफा की कुछ चौकियों पर आक्रमण किया। 21 नवम्बर को इस प्रस्ताव को स्वीकार न करके लद्दाख अंचल के असैनिक क्षेत्र में सात चौकियों की स्थापना और कर दी।

अभी चीनी आक्रमण की पराजय से भारत पूरी तरह मुक्त भी नहीं हो सका था। कि अप्रैल 1965 में पाकिस्तान ने रण-कच्छ में सीमा-विवाद का प्रश्न उठा कर आक्रमण कर दिया। 30 जून को कच्छ-युद्ध विराम हुआ। किन्तु यह युद्ध-विराम एक छलावा था। 5 अगस्त को जम्मू-कश्मीर की सम्पूर्ण युद्ध-विराम रेखा पर उसने भारी आक्रमण किया। उसके पश्चात् पाकिस्तानी सेनाओं ने छम्ब क्षेत्र में खुला आक्रमण किया। 6 सितम्बर को भारतीय सेनाओं ने पंजाब की सीमा पर आक्रमण किया और 11 सितम्बर तक उड़ी से लेकर पुंछ तक की विस्तृत पर्वतमाला पर विजय प्राप्त की। सुरक्षा-परिषद् के आदेश पर 23 सितम्बर को युद्ध को रोक दिया गया। 10 जनवरी को ताशकन्द में भारत-पाकिस्तान के मध्य समझौता हुआ, जिसमें 5 अगस्त 65 की स्थिति के अनुसार सेनाओं को वापस लौटाया गया।

---

1 - "Social disorgazation is the disruption of the functions among persons to a degree that interferes with the performance of the accepted tasks of the group."
Robert E.L. Faris, Social disorganization,
The Ronald press Co., New York, 1948, P. 19

साठ के दशक की तीसरी महत्वपूर्ण घटना चौथा आम चुनाव था। फरवरी सन् 1967 में चौथा आम चुनाव सम्पन्न हुआ, जिसके परिणामों ने यह स्पष्ट कर दिया कि जनता का कांग्रेस से मोह-भंग हो रहा है। कांग्रेस को लोकसभा में सरकार बनाने योग्य बहुमत तो अवश्य प्राप्त हुआ, किन्तु मद्रास, उड़ीसा, केरल और पंजाब में कांग्रेस की पराजय हुई। उत्तर प्रदेश में चरणसिंह ने दल-बदल कर सरकार बनाई। 17 फरवरी 1968 को चरणसिंह सरकार ने भी त्यागपत्र दे दिया और उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति-शासन लागू कर दिया गया। सन् 67 के चुनावों के पश्चात् दल-बदल की सर्वाधिक घटनाएँ हुई। सन् 1969 में मध्यावधि चुनाव हुए और इस चुनाव में भी कांग्रेस के पक्ष में आशावादी परिणाम नहीं आये। इस चुनाव में जातियों और उपजातियों की भूमिका ने भावी राजनीति की दिशा की ओर इंगित किया। "जाति की भावना सभी सम्प्रदायों में प्रबल रही।"[1]

राष्ट्रपति डॉ0 जाकिर हुसैन की असामयिक मृत्यु के कारण नए राष्ट्रपति के चुनाव प्रश्न पर कांग्रेस के आन्तरिक मतभेद खुलकर सामने आ गये। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी उपराष्ट्रपति एवं कार्यवाहक राष्ट्रपति श्री वी0वी0गिरि को राष्ट्रपति का प्रत्याशी बनाना चाहती थी, किन्तु कांग्रेस दल की ओर से संजीव रेड्डी को राष्ट्रपति का प्रत्याशी घोषित किया गया। इन्दिरा गाँधी ने दल के आदेश की अवहेलना करते हुए 'अन्तरात्मा की आवाज' पर संसद-सदस्यों को मतदान करने की अपील की। इन्दिरा गाँधी के समर्थन से श्री वी0वी0गिरि बहुमत से विजयी घोषित हुए। कांग्रेस का विभाजन हो गया। इन्दिरा गाँधी की कांग्रेस का यह विभाजन व्यक्तिगत तथा सत्ता-संघर्ष था। डॉ0 सुभाष कश्यप का मत भी यह है:

> "राष्ट्रपति के चुनाव-संघर्ष ने यह स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस संगठन विभाजित है और इस विभाजन का कारण विचारधारा-सम्बन्धी मतभेद इतना नहीं है जितना कि व्यक्तित्व तथा सत्ता-संघर्ष है।"

प्रसिद्ध विधिवेत्ता लक्ष्मीमल सिंघवी कांग्रेस-विभाजन का एकमात्र कारण व्यक्तित्व तथा सत्ता-संर्घष नहीं मानते। उनके अनुसार सैद्धान्तिक मतभेद भी उतने ही महत्वपूर्ण थे:

---

1. सामाजिक विघटन तथा सुधार, पृष्ठ 38, सरस्वती सदन मसूरी, प्रथम संस्करण 1967

''कांग्रेस में विभाजन व्यक्तिगत झगड़ों के कारण हुआ या सैद्धान्तिक कारणों से यह कहना कठिन है शायद दोनों ही कारण थे।''[1]

दलीय विभाजन के पश्चात् इंद्रिरा गाँधी की कांग्रेस भारतीय साम्यवादी दल और डी0एम0के0 निकट आई। 1971 में अगला आम-चुनाव कराया गया जिसमें इन्दिरा को विजयश्री मिली। सन् 1972 में विभिन्न राज्यों में हुए चुनावों में भी कांग्रेस को विजय मिली।

1971 में पाकिस्तान का विभाजन कराकर बंगलादेश का निर्माण कराने ने इन्दिरा गाँधी के महत्व को बढ़ा दिया था। जिसके कारण पुरानी कांग्रेस के अनेक नेता इन्दिरा कांग्रेस में सम्मिलित हो गये। इन्दिरा गाँधी को व्यक्तिगत लाभ तो अवश्य मिला, किन्तु महंगाई और भ्रष्टाचार को रोक पाने की असमर्थता के कारण जयप्रकाश नारायण ने, संपूर्ण क्रान्ति का नारा देते, हुए राष्ट्र-व्यापी आन्दोलन छेड़ दिया। इसी समय इलाहाबाद-उच्च न्यायालय ने श्रीमती इन्दिरा गाँधी के चुनाव को अवैध घोषित कर दिया। इन्दिरा गांधी ने त्यागपत्र देने के स्थान पर 25 जून 1975 को देश में आपात स्थिति लागू कर दी। हजारों लोगों को कारागार में डाल दिया गया। लगभग दो वर्ष तक आपात-स्थिति बनी रही। जन-अधिकारों के छिन जाने से जनता के मन में आक्रोश था, जो सन् 1977 के आम-चुनाव में फूट पड़ा। विभिन्न विपक्षी दलों ने मिलकर जनता पार्टी की स्थापना की। आम चुनाव मे कांग्रेस की पराजय हुई और जनता पार्टी की जीत। मुरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने किन्तु जनता पार्टी के अन्तर्विरोध के परिणामस्वरूप उसका विभाजन हुआ। कांग्रेस के समर्थन से चौधरी चरणसिंह प्रधानमंत्री बने, किन्तु संसद में बहुमत सिद्ध न कर पाने के कारण इन्हें संसद भंग करने की सिफारिश राष्ट्रपति से करनी पड़ी। सन् 1980 के मध्यावधि चुनाव में कांगेस को पुनः बहुमत मिल गया। एक हवाई जहाज दुर्घटना में संजय गाँधी की मृत्यु होने के कारण एक ओर इन्दिरा गाँधी उदासीनता थीं, तो दूसरी ओर विभिन्न राज्यों में अलगाववादी शाक्तियाँ सिर उठा रहीं थीं। पंजाब में उग्रवादी स्वर्ण-मन्दिर में बैठकर हत्या और लूटपाट कराते थे। परिणामतः उग्रवादियों से निपटने के लिये स्वर्ण मन्दिर में आपरेशन ब्लू-स्टार के नाम से सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी।

---

1. सामाजिक विघटन और अपराधशास्त्र के उपादान, पृष्ठ-221, सरस्वती सदन, मसूरी, 1959

इस सैनिक कार्यवाही से सिखों के मन में इन्दिरा जी के प्रति विद्वेष उत्पन्न हुआ, जिसके परिणामस्वरूप प्रधानमंत्री के अंगरक्षकों ने ही 31 अक्टूबर 1984 को इन्दिरा गांधी की हत्या कर दी। इस हत्या का दुष्परिणाम यह हुआ कि देश भर में सिख विरोधी दंगे भड़क उठे।

इन्दिरा गाँधी के पश्चात् उनके बड़े पुत्र राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बने। राजीव गाँधी के काल को भ्रष्टाचार का काल माना जाता है, क्योंकि इनके शासन-काल मे बोफोर्स तोप, पनडुब्बी, एयर बसों आदि की खरीद में ली गयी दलाली के रहस्यों ने भ्रष्टाचार की चरमसीमा को उद्घाटित कर दिया। आतंकवादी गतिविधियां भी बढ़ी। सन् 1989 के आम-चुनाव में जनादेश कांग्रेस के पक्ष में नहीं रहा। राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार बनी, जिसके नेता विश्वनाथ प्रताप सिंह चुने गये। सन् 1990 में भारतीय जनता पार्टी ने सरकार से समर्थन वापस ले लिया, जिसके परिणाम स्वरूप वी0पी0सिंह को त्यागपत्र देना पड़ा और चन्द्रशेखर के नेतृत्व में मंत्रिमंडल का गठन किया गया। 1991 में मध्यावधि चुनाव हुए। चुनावों के दौरान राजीव गांधी की हत्या कर दी गयी। कांग्रेस को सहानुभूति-मत मिले, जिसके कारण केन्द्र में नरसिंह राव के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार बनी।

नरसिंह राव ने अपनी अल्पमत सरकार को बहुमत में बदलने के लिये रिश्वत देकर सांसदों को तोड़ा, जिसका मुकद्दमा भी चला। नरसिंह राव का मंत्रिमंडल पूरे पाँच वर्ष चला। सन् 1996 में हुए आम-चुनाव में किसी दल को बहुमत नहीं मिल सका। सर्वप्रथम अटलबिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में मंत्रिमंडल का गठन किया गया। किन्तु 13 दिन के पश्चात् ही बहुमत के अभाव में वाजपेयी जी को त्यागपत्र देना पड़ा। एच0डी0देवगौड़ा के नेतृत्व में जनता दल की सरकार बनी, किन्तु 1997 में कांग्रेस द्वारा समर्थन वापस लेने पर आई0के0गुजराल के नेतृत्व में मंत्रिमंडल का गठन किया गया। सन् 1998 में पुनः चुनाव हुये। अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सांझा सरकार की स्थापना हुई। 3 महीने वाजपेयी की सरकार चली। जयललिता द्वारा समर्थन वापस लेने पर सरकार का पतन हुआ।

इसी समय श्रीमती सोनिया गांधी कांग्रेस की अध्यक्षा बनी। उन्होंने सरकार बनाने का प्रयास किया किन्तु समर्थन के अभाव में उनकी सरकार नहीं बन सकी। पुनः चुनाव

हुआ और भारतीय जनता पार्टी ने राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न क्षेत्रीय दलों के साथ मिलकर एक गठबन्धन बनाया। चुनाव के पश्चात् अटलबिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में इसी गठबन्धन के मंत्रिमंडल ने शपथ ग्रहण की और आज तक इसी गठबन्धन की सरकार चल रही है।

राष्ट्रीय राजनीति पर ध्यान दिया जाये तो विघटन की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। जातिवाद समीकरण प्रबल हो रहे हैं। पिछड़ी जातियों के नेता अपनी-अपनी जाति के मतों के आधार पर राजनीति कर रहे हैं, जिससे राजनैतिक विघटन को बल मिल रहा है। सामाजिक विघटन भी हो रहा है। राजनैतिक मूल्य समाप्त हो चले हैं तथा सत्ता की प्राप्ति के लिए कोई भी तरीका अपनाने से किसी प्रकार की हिचक नहीं रह गयी है। साठोत्तरी भारत की राजनीति का मूल केन्द्र-बिन्दु सत्ता की राजनीति भर है और इससे कोई भी दल अछूता नहीं रह गया है। दलगत सिद्धान्त भी बिखर चले हैं, इसलिए किसी दल में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। अन्तर है तो केवल नेता के व्यक्तितत्व का।

सामाजिक परिस्थितियाँ

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जन-मानस ने कल्पना की थी कि भारत की सामाजिक व्यवस्था सुदृढ़ होगी और उसमें समानता की स्थिति उत्पन्न होगी, किन्तु आशा के विपरीत सामाजिक विघटन अधिक तीव्र हो गया। सामंतकालीन जातिभेद को मिटा देने की आवश्यकता थी, किन्तु 'वोट' की राजनीति ने जातिवाद को प्रश्रय ही अधिक दिया। अस्पृश्यता को समाप्त नहीं किया जा सका। दलित और पिछड़े वर्गों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना का उदय हुआ, जिसने जातिवादी संघर्ष को जन्म दिया। बेलछी, अरवल, पिपरिया, जहानाबाद, कंझावाला आदि अनेक स्थानों पर जातीय संघर्ष हुए।

विश्वनाथ प्रताप सिंह मंत्रिमंडल ने पिछड़ी जातियों को आरक्षण प्रदान करके जातीय संघर्ष को और अधिक तीव्र किया। आरक्षण विरोधी आन्दोलन ने राष्ट्र को हिलाकर रख दिया। यदि मंडल आयोग की सिफारिशों को भी सामाजिक चेतना के द्वारा लागू किया जाता तो, जातीय संघर्ष से बचा जा सकता था। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। पिछड़ी जातियों की राजनीति करने के उद्देश्य से मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू किया गया था, जिसका दुष्परिणाम जातीय संघर्ष के रूप में सामने आया।

शिक्षा के विकास के कारण अधिकारों के प्रति चेतना का उदय तो हो रहा है, किन्तु बेकारी, मंहगाई और भ्रष्टाचार के कारण कुंठा और असंतोष ही व्याप्त हो रहा है। भौतिक मूल्यों के प्रति आकर्षण ने नैतिक मूल्यों को खंडित किया है, जिसके परिणाम-स्वरूप सामाजिक विघटन में अभिवृद्धि हुई है। सामूहिक परिवार टूटने की प्रक्रिया तो पहले ही आरम्भ हो चुकी थी, अब तो इकाई परिवार भी टूट रहे हैं। पति-पत्नी के मध्य भी प्रेम की स्थिति नहीं रह गयी है। अधिक से अधिक धन कमाकर ऐश्वर्य और समृद्धि की कामना ही चर्मोत्कर्ष पर हैं।

भारतीय समाज में नारी आज भी दलित है। शिक्षा के क्षेत्र में नारी ने पुरूष वर्ग को पीछे छोड़ दिया है। वह आज शिक्षा, विज्ञान, राजनीति आदि क्षेत्रों में अग्रगन्य हो रही है, किन्तु उसको मध्यकालीन रूढ़ियों से मुक्ति भी नहीं मिल पा रही है। आज भी सैकड़ों नारियों को प्रति वर्ष दहेज की बलिबेदी पर चढ़ाया जाता है। सती होने पर आज भी उसे महिमा-मंडित किया जा रहा है। दिवराला का रूपकंवर सती कांड इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। दूसरी और मुस्लिम सम्प्रदाय में शाहबानों प्रकरण भी ऐसा ही एक उदाहरण है। शाहबानों के सुप्रीम कोर्ट में जीत जाने के पश्चात् भी कठमुल्लाओं और अवसरवादी राजनीतिज्ञों के कारण उसे कोई लाभ नहीं मिल पाया।

भारतीय समाज में आज भी अनेक प्रकार के अंधविश्वास और रूढ़ियाँ प्रचलित हैं। नाना प्रकार के विरोधाभासों ने सामाजिक प्रगति में बाधाएं उत्पन्न की हैं। समाज का हित सर्वोपरि कहीं नहीं दिखाई देता है। वैयक्तिक मूल्य बढ़ रहे हैं और सामाजिक मूल्यों की उपेक्षा हो रही है। टेलीविजन के विभिन्न चैनलों ने सामाजिक विघटन को और अधिक तीव्र किया है। नव शिक्षित समुदाय में मुक्त यौन-सम्बन्धों के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। और यौन-सम्बन्धों की नैतिकता, जो भारतीय समाज का केन्द्र बिन्दु थी, नष्ट हो रही है।

आर्थिक परिस्थितियाँ

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस सरकार ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति अपनायी सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक उद्योग स्थापित किये। किन्तु कर्मचारियों की अकर्मण्यता और अरूचि के कारण वे उद्योग लाभ अर्जित नहीं कर सके और बीमार हो

गये। सार्वजनिक क्षेत्र की बीमारी का एक प्रमुख कारण पूंजीपतियों की साँठगाँठ को भी माना जा सकता है। जवाहरलाल नेहरू द्वारा समाजवादी दृष्टिकोण को प्रश्रय देने के लिये स्थापित इस सार्वजनिक क्षेत्र में श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा बैंकों का राष्ट्रीयकरण करना एक अलग कदम माना गया किन्तु बैंकों के राष्ट्रीयकरण का कोई लाभ नहीं मिल सका। लगभग दो दशकों के पश्चात् यह तथ्य स्पष्ट हो गया,इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र में कमी करने के उपाय ढूंढ़े जाने लगे।

देश के विकास की गति कुछ इस प्रकार की हुई कि पूंजीपति तो और अधिक धनी होता चला गया और निर्धन और अधिक निर्धन। सन् 1951 में आरम्भ की गयी पंचवर्षीय योजनाओं को पूरी तरह सफल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनके क्रियान्वयन का दायित्व नौकरशाही पर था और नौकरशाही में भ्रष्ट आचरण की गति बढ़ती ही चली गयी। एक अन्य प्रमुख तथ्य यह भी रहा कि सन् 1962 में चीन युद्ध तथा 1965 एवं 1971 के पाकिस्तान युद्धों ने भी आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न कीं।

कृषि के क्षेत्र में हरित-क्रान्ति ने देश को आत्म-निर्भर अवश्य बनाया, किन्तु बड़े किसानों को ही अधिक लाभ प्राप्त हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों में भूपतियों और कृषि-श्रमिकों के मध्य अन्तर्विरोध भी उभरते रहे हैं। वैधानिक रूप से देश में जमींदारी प्रथा समाप्त हो गयी है, किन्तु विभिन्न नामों से जमीन की व्यवस्था करके आज भी बड़े-बड़े भूपति स्थापित हैं। छोटे किसानों की भूमि से बेदखली के समाचार आते रहते हैं। साधनों की दृष्टि से भी बड़ा किसान ही लाभ की स्थिति में रहा है। ट्रेक्टर तथा अन्य नए साधनों, उपकरणों, उर्बरकों आदि का लाभ उठाकर बड़ा किसान ही हरित क्रान्ति में सफल हुआ है। छोटे किसान की स्थिति तो और भी अधिक दयनीय हो गयी है। ट्रेक्टर किस्तों पर लेने के लिए उसे इधर से उधर भटकना पड़ता है, प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

इस समय देश का समाज उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्मवर्गों में विभाजित है। पूंजीपति, जमीदर, नेता,अभिनेता और बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी उच्चवर्ग में सम्मिलित हैं। यह वर्ग अपने हितों और स्वार्थों के प्रति सर्वाधिक जागरूक है। विशेष रूप से पूँजीपति और उद्योगपति भारत के पूंजीपति और उद्योगपति अपना कार्य सम्पन्न कराने के लिए किसी भी सीमा तक जाने को तैयार होते हैं। रिश्वत देकर काम कराने में उन्हें कोई

हिचक नहीं होती। भ्रष्टाचार फैलाने में सर्वाधिक योगदान इसी वर्ग का है। इनकी प्रवृत्ति शोषक-प्रवृत्ति होती है। निम्नवर्ग का शोषण करके ही वे अपना धन और पूंजी बढ़ाते रहते हैं।

मध्यम वर्ग में डॉक्टर,प्राध्यापक, इंजीनियर, सरकारी अफसर, जज आदि आते हैं। छोटे व्यापारी भी इसी वर्ग में सम्मलित किये जाते हैं। यह वर्ग उच्चवर्ग की नकल करना चाहता है, इसलिए वह भी भ्रष्टाचार में सहयोगी बन जाता है। महत्वाकांक्षा और अवसरवादिता के कारण यह वर्ग समझौते करता है। मँहगाई-वृद्धि के कारण यह वर्ग असंतुष्ट भी रहता है। व्यक्तिवादिता को सबसे अधिक बढ़ावा मध्यवर्ग ने ही दिया है।

श्रमिक तथा निम्न जातियों के अधिकांश लोग निम्नवर्ग में आते हैं। यह वर्ग गरीब तो है ही, किन्तु करोड़ों लोग गरीबी की रेखा से नीचे भी हैं 1-3-1988 को तत्कालीन प्रधानमंत्री वी0पी0सिंह ने लोकसभा में बताया था कि 23 करोड़ 24 लाख लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं।

भारत की अर्थव्यवस्था के बिगड़ने का एक कारण यह भी हुआ कि विदेशी कर्जे निरन्तर बढ़ते ही गये। केन्द्रीय सरकार पर विदेशी दबाब बने, जिसके परिणामस्वरूप उसे अपनी आर्थिक नीतियों में परिवर्तन करने को बाध्य होना पड़ा। नरसिंहराव की सरकार में वित्त मंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह ने सर्वप्रथम उदारवादी नीति अपनायी और विदेशी निवेशकों को आमंत्रित किया। वही नीति आज तक चली आ रही है। सरकारें बदलती रहीं, वित्त- मंत्री बदलते रहे किन्तु नीति वही रही।

देश की बिगड़ती आर्थिक स्थिति ने सामाजिक विघटन को तीव्र ही किया है। व्यक्तिगत मूल्यों के प्रति आकर्षण बढ़ा है नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। भौतिकवादी दृष्टिकोण ही पनप रहा है। विदेशी निवेशकों ने सारे देश को मात्र उपभोक्ता बनाया है। विदेशी निवेशकों के आने से भी कोई विशेष लाभ होने की स्थिति नहीं बन सकती, ऐसी आशंका है।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

भारत एक समृद्ध संस्कृति का देश है, किन्तु साठोत्तरी भारत की संस्कृति का निरन्तर क्षय होता रहा है। यहां का निवासी आनन्दवादी था, इसलिए विशेष पर्व, त्यौहार, मेले

आदि के आयोजन पर वह बहुत प्रसन्न होता था, किन्तु मँहगाई-वृद्धि और आधुनिक शिक्षा ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी, कि अब पर्व रूढ़ि बन कर रह गये। मेले आदि में भी उत्साह का अभाव देखा जा सकता है।

प्राचीन संस्कारों के प्रति निष्ठा का अभाव देखने को मिलता है। धनाभाव, समय की कमी और वैयक्तिक मूल्यों के प्रति आकर्षण ने सांस्कृतिक विघटन की स्थिति उत्पन्न कर दी है। जन्म, विवाह और मृत्यु के संस्कारों को भी शीघ्रता से निपटाने की भावना रहती है।

धर्म भी संस्कृति का अंग है। भारत, धर्म बहुल राष्ट्र है। इसमें अनेक धर्मावलम्बी रहते हैं, जिसमें प्रमुख है- हिन्दु, सिख, मुसलमान, इसाई, बौद्ध, जैन आदि। स्वतन्त्रता प्राप्ति पर भारत को धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया था। किन्तु हिन्दु-मुसलमान, हिन्दु-सिक्ख, हिन्दु-ईसाई आदि के संघर्षो ने अलगाव की भावना को बढ़ाया ही है। हिन्दु और सिख सैकड़ों वर्षो से भाईचारे से रहते थे। उनका पारस्परिक सम्बन्ध रोटी और बेटी का रहा, किन्तु खालिस्तान की मांग ने उनके सम्बन्धों में खटास घोलकर उन्हें संकटग्रस्त बना दिया। पंजाब में अनेक लोगों की हत्याएं की गयीं। परिणामः आपरेशन 'ब्लू स्टार' नाम से स्वर्ण मन्दिर में सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी, जिसका परिणामतः यह हुआ कि दो सिरफिरे सिख अंगरक्षकों ने तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या कर दी। इन्दिरा गांधी की हत्या के कारण पूरे देश में सिखों का कत्ल किया गया, उनके घर लूटे गये और जलाये गये।

कश्मीर की स्थिति और भी दयनीय हो गई। पाकिस्तान से सहायता प्राप्त उग्रवादियों ने पूरी घाटी से ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि वहाँ एक भी हिन्दु नहीं रह पा रहा है। कश्मीर में अलगावादी दृष्टिकोण को आराम्भ से ही वहां के राजनेताओं ने बढ़ावा दिया है और आज भी दे रहे हैं। कश्मीर की विधानसभा में स्वायत्तता का प्रस्ताव पारित करवाना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

मुसलमानों में शिया-सुन्नी का संघर्ष देखने को मिलता है। लखनऊ में लगभग प्रत्येक वर्ष ही यह संघर्ष होता रहा है।

मुसलमानों के उग्रवादी संगठनों का परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं में भी उसकी प्रतिक्रिया हुई। शिव सेना, बजरंग दल, विश्व हिन्दु परिषद, हिन्दू महासभा, शिव-शक्ति दल आदि संगठन धार्मिक असहिष्णुता को बढ़ा रहे हैं। अयोध्या में विवादास्पद ढांचा का ढहाया जाना इसी प्रकार की एक घटना कही जा सकती है। इस पर भी इस तथ्य से दृष्टि नहीं हटाई जा सकती, कि इस्लामी उग्रवाद के समान हिन्दु उग्रवाद नहीं है। अल्लाह टाइगर्स, जिया टाईगर्स, जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रंट, हिजबुल मुजाहिदीन आदि जिस प्रकार खुले आम कत्तेआम कर के अराजकता फैलाते हैं, उस प्रकार का कार्य हिन्दुओं के द्वारा नहीं होता।

इस प्रकार एक ओर प्राचीन धर्म के प्रति अनास्था का भाव उत्पन्न हो रहा है, तो दूसरी ओर विभिन्न आतंकवादी शाक्तियाँ धर्मोन्माद उत्पन्न करने का प्रयास कर रही हैं। सभी धर्मो का केन्द्र-बिन्दु मानव था, किन्तु अब मानवता का ही विनाश हो रहा है। धर्माचार्य भी वैभव-ग्रस्त जीवन जी रहे हैं और उनका मूल उद्देश्य भी अधिक से अधिक धनोपार्जन हो गया है। ऐसी स्थिति में सांस्कृतिक विघटन होना स्वाभाविक हो गया है।

निष्कर्ष

'विघटन' वह स्थिति है जिसमें संगठन के एक-एक अंग को अलग करने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। और व्यवस्था के निर्वाचक अंगों की एकता भंग होने लगती है। विघटन को स्पष्ट करने के पश्चात् हम कह सकते है कि सामाजिक विघटन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके कारण समूह के अंगों में शिथिलता आती है अथवा उनके सम्बन्ध पूर्णतः टूट जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उसके अंग शत-प्रतिशत कार्य नहीं कर पाते और समाज में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है; परिणामतः समाज के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती।

सामाजिक विघटन के अनेक लक्षण सम्भावित हैं, किन्तु हमने प्रमुख छः लक्षणों को स्वीकार किया जो इस प्रकार हैं:

(1) रूढ़ियों और संस्थाओं का संघर्ष,
(2) किसी समिति के कार्यो का हस्तान्तरण,
(3) व्यक्तिवादी भावना,
(4) एकमत का अभाव,
(5) नियंत्रण का प्रभावहीन हो जाना तथा
(6) सामाजिक परिवर्तन की तीव्र गति।

विघटन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्कालीन परिस्थितियाँ होती हैं, इसलिए हमने परिस्थितियों पर विचार किया है। आलोच्य युग में राजनैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। सभी राजनैतिक दल किसी न किसी प्रकार सत्ता-प्राप्ति के लिए लालायित हैं और नेता सत्ता-लोलुप हैं, जिसके कारण राजनैतिक दलों में कोई आदर्श नहीं रह गया है। राजनीति जातिवाद के निम्नतम स्तर पर उतर आई है। वैयक्तिक मूल्यों तथा भौतिक मूल्यों के आकर्षण ने सामाजिक मूल्यों का विघटन किया है। जातीय संघर्ष बड़े हैं। सामूहिक परिवारों का विघटन तो पहले ही आरम्भ हो चुका था, किन्तु इस युग में पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव अधिक बढ़ा है। नारी ने विभिन्न क्षेत्रों में आशातीत प्रगति की है। किन्तु मूलतः आज भी वह दलित है। समाज में अन्धविश्वासों और रूढ़ियों का प्रचलन समाप्त नहीं हो सका है। नवशिक्षित युवाजन मुक्त यौन-सम्बन्धों के प्रति आकर्षित हैं। आलोच्य युगीन स्थिति ठीक नहीं है। धनी और अधिक धनी होता चला गया और निर्धन और अधिक निर्धन। गरीबी की रेखा से नीचे के लोगों की संख्या में अभिवृद्धि हुई है। प्राचीन संस्कारों के प्रति अनास्था उत्पन्न हो रही है। किन्तु धार्मिक असहिष्णुता को बढ़ावा मिला है। धार्मिक उग्रवाद ने राष्ट्र की धर्म निरपेक्षता को धूमिल किया है।

द्वितीय अध्याय

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक विघटन

- भारतीय एवं पाश्चात्य परिवार का स्वरूप एवं तुलना
- विघटन में स्त्री की भूमिका
- विघटन में पुरुष की भूमिका
- पारिवारिक विघटन के अन्य घटक

द्वितीय अध्याय

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक विघटन

भारतीय एवं पाश्चात्य परिवार का स्वरूप एवं तुलना

किसी भी सामाजिक संगठन का मूल आधार परिवार को माना जाता है। भारतीय परिवार संयुक्त परिवार था जिसे आर्थिक व्यवस्थाजन्य सामाजिक संगठन की संज्ञा भी दी जाती है।[1] संयुक्त परिवार में पिता अथवा सबसे बडे पुरूष का साम्राज्य होता है। वह परिवार का मुखिया होता था। उसके पश्चात् परिवार की सबसे बड़ी महिला का क्रम आता था। परिवार के सभी प्रमुख निर्णय मुखिया के द्वारा ही किये जाते थे। किन्तु अन्तरंग निर्णय प्रमुख महिला ही करती थी। परिवार की सबसे बड़े पुत्र और सबसे बड़ी पुत्रवधू को भी विशेष सम्मान प्राप्त होता था। परिवार की संख्या की कोई सीमा निधारित नहीं होती थी। सभी एक निवास-स्थल पर रहते, उनका भोजन एक ही रसोई में पकता तथा उनके बीच सहज स्वाभाविक संबंध रहता था। क्षमा गोस्वमी ने इस स्थिति को मूर्त एंव अमूर्त दो रूपों में माना है:

'पारिवारिक संरचना का मूर्त पक्ष उसके जैविक तथा मौलिक तत्वों को निर्दिष्ट करता है। इस दृष्टि से दाम्पत्य परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त परिवार के अन्य सदस्यों की संख्या, सम्मिलित निवास-स्थान, सम्मिलित रसोई तथा सम्पत्ति आदि की व्यवस्था संयुक्त परिवार के जैविक तथा मौलिक तत्व कहे जाएंगे। परिवारिक संरचना का अमूर्त पक्ष उसके सदस्यों के पारस्परिक संबधों को निर्दिष्ट करता है। परिवार के सदस्यों के मध्य प्रमुख तथा कर्तव्य का बंटवारा, परस्पर औपचारिकता तथा आभार - प्रदर्शन परिवारिक संरचना के अमूर्त तत्व कहे जाएंगे। परिवारिक संरचना का मूर्त पक्ष तो उसका मात्र शारीरिक ढाँचा है। अमूर्त पक्ष उस ढाँचे को क्रियाशील बनाने के लिए रक्त प्रवाहिनी अनेक शिराओं के समान है। परिवार की क्रियाशीलता उसके अमूर्त पक्ष में ही परखी जा सकती है''[2]

1- डॉ0 हेमेन्द्र कुमार पनेरी, स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास: मूल्य संक्रमण, संधी प्रकाश, जयपुर, 1974, पृ0 56

2- नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास, जय श्री प्रकाशन, दिल्ली, 1981, पृ0 66-67

भारतीय सामूहिक परिवार की सबसे बडी विशेषता उसके भावनात्मक सम्बन्ध थे। माता-पिता को परमात्मा के तुल्य ही समझा जाता था। तीन प्रमुख ऋणों में एक पितृ ऋण माना जाता था। प्रातः ही माता-पिता के चरण-स्पर्श कर प्रत्येक दिन का आशीर्वाद लेकर ही दिन भर के कार्य किये जाते थे। पुत्र के बिना स्वर्ग मिल ही नहीं सकता। वंश-वृद्धि के लिए पुत्र अनिवार्य माना जाता था। सहोदर तो हाथ ही माने जाते थे। जितने भाई होते थे, उतनी ही शक्ति मानी जाती थी। भाईयों के प्रति भावात्मक लगाव होता था। बढ़ा भाई पिता तुल्य माना जाता था तो छोटा भाई पुत्र समान। पुत्री लक्ष्मी मानी जाती थी तो पुत्र-वधू गृह-लक्ष्मी। किसी भी वधू को इतनी स्वतंत्रता नहीं होती थी कि वह दिन में अपने पति से बात भी कर सकें। भाभियों और देवर के सम्बन्ध मधुर और परिहास-जनक होते थें देवरों की इच्छा को भाभी ही समझती थीं। और वही अपनी सास के माध्यम से ससुर तक उनकी इच्छाओं को पहुँचाकर उनकी पूर्ति का प्रयास करती थी। नन्दें अवश्य भाभी को तंग करती थीं। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में भारतीय परिवार का चित्रण किया गया है। उपन्यास के नायक प्रमोद के पिता सामूहिक परिवार में रहते हैं। उसके पिता के छोटे भाई का देहांत हो जाने पर उस परिवार को उसके पिता ने ही सम्हाला और अब तक एक परिवार का ही अंग बनाये रखाः

''गोरखपुर से पंद्रह मील दूर एक देहात में उसका अपना गाँव है, उसके पास बीस पच्चीस एकड़ खेत है। वह अपने पिता की एकलौती संतान है। उसके पिता दो भाई थे। चाचा का बहुत पहले देहांत हो गया, उनके दो बच्चों को भी पिता जी ने पुत्र की तरह ही पाला। पिता जी पहले प्राईमरी, फिर मिडिल स्कूल में मास्टर रहे और उसे तथा चाचा के बड़े लड़के श्याम को अपने साथ ही रखकर पढ़ाते रहे। श्याम की प्रतिभा अच्छीं नहीं थी, किसी तरह लोटते-पीटते बी0ए0पास हो गया और गाँव के पास के ही स्कूल में मास्टर हो गया है। श्याम का छोटा भाई तो निरा बोंदा निकला बहुत धक्का देने पर भी वह दर्जा छः से आगे नहीं बढ़ सका, परूआ बैल की तरह सात में लोटा तो उठा ही नहीं। उसे खेती-बारी में लगा दिया गया, लेकिन वह गाँव के हिसाब-किताब में बहुत तेज है, एकदम दुनियादार।''[1]

1- अपने लोग, नेशनल पब्लिकेशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1989 (द्वितीय संस्करण), पृ0 8

'अपने लोग' में पूरब की महिलाओं की स्थिति का चित्रण भी किया गया है। पूरब की महिलाओं में अभी चेतना नहीं आयी है। वे पुरानी परिपाटी से ही घूँघट में रहने वाली शुद्ध भारतीय नारियाँ है:

"पूरब के पढ़े-लिखे लोग भी उन्हें घर में पर्दे की रानी बनाकर रखते हैं तो वे क्या करें? दिल्ली तक में ये पूरब के लोग इन्हें गुड़िया ही बनाकर रखते है। दूसरे प्रदेशों की स्त्रियाँ पुरूष का आधा काम बँटाकर जीवन-यात्रा को सुखद तो बनाती ही हैं, अपने व्यक्तित्व का विकास भी करती है। वहाँ पूर्वी यू0पी0 और बिहार की मध्यवर्गीय स्त्रियाँ गुड़िया बनकर भार बन जाती हैं और खाना बनाने, बर्तन माँजने तथा गलचौर करने तक इनकी जिंदगी सीमित रह जाती है।"[1]

प्रमोद की पत्नी भी परम्परावादी भारतीय नारी है। प्रमोद के खाने तक वह भूखी रहती है गाँव में जाती है तो घूँघट डाल लेती है:

"प्रमोद चुपचाप बैठा रहा और सोचता रहा यह औरत भी अजीब है। बी0ए0 पास और दिल्ली जैसे महानगर में इतने दिनों रही है किन्तु गाँव जायेगी तो घूँघट काढ़ लेगी, घर के बड़े-बूढ़े यहाँ भी आयेंगे तो सिर ढक्कर दुल्हन बन जायेगी, मुझे खिलाये बिना खायेगी नहीं, चाहे मुझे कितनी ही देर क्यों न हो जाये? कितनी बार समझाया कि बाला तुम समय से खा लिया करो, मैं बाहर किसी काम में फँसा होता हूँ तो काम करते-करते सोचता रहता हूँ कि तुम घर पर बिना खाये-पिये झख मार रही होगी और मैं अपना काम भी ठीक से नहीं कर पाता। लेकिन संज्ञा हर बार हँसकर टाल देती है और कहती है आप नाहक मेरे सुख की चिन्ता में परेशान होते हैं। आप निश्चित अपना काम किया कीजिए।"[2]

प्रमोद के चचेरे भाई श्याम और रमेश दोनों के ही परिवार उसके यहाँ आ जाते हैं तो प्रमोद भी मन ही मन झल्लाने लगता है किन्तु उसकी पत्नी संज्ञा अकेले घर का सारा काम समेटते हुए भी प्रसन्न ही रहती है। यही भारतीय नारी का सच्चा स्वरूप है।

1- अपने लोग, पृ0 14-15
2- अपने लोग, पृ0 91

"संज्ञा ने मुड़कर देखा उसके चेहरे पर पसीना था। चेहरा आँच से तमतमा आया था लेकिन वह हँस रही थी। पसीने और आँच की तमतमाहट के बीच से उभरती हुई उसकी मुस्कान बड़ी आकर्षक लग रही थी किसी से कोई गिला-शिकवा नहीं बस जैसे यह तो उसका धर्म है। उस धर्म को आस्था के साथ निभाये जा रही है प्रमोद भी हँसकर बाथरूम की ओर बढ़ गया और सोचने लगा कि कितनी बड़ी है यह औरत। आखिर चीजों को झेलते तो हम लोग भी है लेकिन झल्लाकर, एक असहाय अनुमूर्ति बनाकर किन्तु संज्ञा हर चीज को पूरी आस्था के साथ झेल लेती है। जैसे हर चीज में एक रस हो और वह उस चीज को रस के बिन्दु पर ही पकड़ती है और उस रस में जीती हुई उस चीज को अपने भीतर बसा लेती है।"[1]

भारतीय नारी का वास्तविक स्वरूप पुरूष का साथ देना है। पुरूष जूझता है तो नारी भी जूझती है संज्ञा, प्रमोद से यही बात स्पष्ट शब्दों में करती है:

"देखिए, इस परिवार को लेकर सारा संकट आपके मन का है मैं तो उसका विस्तार मात्र हूँ। आप जूझेगें तो मै भी साथ दूँगी, आप हाथ खींच लेगें तो मैं भी हाथ खींच लूँगी।"[2]

पाश्चात्य परिवार का स्वरूप :-

पाश्चात्य परिवारों में भावनात्मक सम्बन्धों का अभाव रहा। पिता भी पुत्र की जिम्मेदारी 18 वर्ष तक ही निभाता है और पुत्र वृद्ध पिता के प्रति कोई भावनात्मक सम्बन्ध नहीं रखाता, इसलिए पश्चिम में बृद्धों के लिए अलग से आवासादि की व्यवस्था की जाती है। पिता-पुत्र के सम्बन्धों में ही भावात्मक सम्बन्धों का निर्वाह नहीं तो शेष सम्बन्धों में भावनात्मकता का तो प्रश्न ही नहीं उठता। बौद्धिकता और इकाई परिवार ही पश्चिम की विशेषता है। पति-पत्नी के सम्बन्धों में भी स्थिरता नहीं है। एक व्यक्ति के कई-कई बार तलाक और विवाह होते हैं। छोटी-छोटी बातों पर तलाक हो जाना, कोई बड़ी बात नहीं मानी जाती। सैक्स की नैतिकता के अभाव ने स्थिति को और भी अधिक जटिल बना दिया है।

1- अपने लोग, पृष्ठ 162
2- उपरिवत्, पृष्ठ 176

पाश्चात्य संस्कृति की चर्चा राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' में की गई है। इसमें पाश्चात्य परिवारों के सम्बन्ध में तो कुछ विशेष नहीं है किन्तु पाश्चात्य संस्कृति के अंग-उपांगों की एक सूची प्रस्तुत की गई है। कल्याणी अमेरिका में डॉक्टरी पढ़ने जाती, किन्तु आर्थिक कारणों से वह पढ़ाई नहीं कर पाती। भारत लौटने के स्थान पर वह अमेरिका के स्वतन्त्र जीवन को जीना चाहती है। उस समय उसने अमरीका संस्कृति के अंग-उपांगों की सूची बनाई थी जिसे उसने दीवार के एक कोने में लटका रखा है:

"सांप्रतिक अमरीकी संस्कृति के कुछ प्रमुख अंगों-उपांगों की एक लिस्ट कल्याणी ने बनाई है। सुन्दर और साफ अक्षरों में लिखकर उसने यह लिस्ट दीवार पर एक कोने में लटका रखी है:

1. नीली फिल्में
2. 'जैज' - संगीत और नीग्रो लड़कियाँ
3. डेककार्नेगी
4. टेनेसी विलियम्स के नाटक
5. पीली अखबार नवीसी
6. मेरेलिन मनरो
7. 'पब' और गंदे कहवाघर
8. कम्युनिजम का 'मय', और
9. 'स्काई-स्क्रेपर्स,"[1]

महानगरों में पाश्चात्य प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पड़ रहा है। नारी की चेतन-शक्ति उसे अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देती है। बिना प्रेम के विवाह करने की बाधा अथवा बिना विवाह के किसी विवाहित पुरुष से यौन सम्बन्ध स्थापित करना इसी प्रकार के बिन्दु हैं जो आज के उपन्यासों के विषय बन रहे हैं निरूपमा सेवती का उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें' ऐसा ही उपन्यास है जिसमें नारी की

1- मछली मरी हुई, पृ0 52-53

ऐसी विवशताओं का चित्रण किया गया। उपन्यास की नायिका अनुभा ऐसी ही नारी है जिसे अपना प्रेम-पात्र प्राप्त नहीं होता। चाहे जिस पुरूष से विवाह करना उसे स्वीकार नहीं। मानसिक धरातल पर तृप्ति धीरेन से मिलती है। सी0के0उसे अपना पी.सी. बनाना चाहते हैं। पी0एस0 को बड़ा वेतन मिलता है; बड़ी सुविधाएं मिलती हैं। किन्तु वह उसके साथ यौन सम्बन्ध बनाना चाहता है। अनुभा उसके बताये समय पर नहीं पहुंचती किन्तु धीरेन को फोन करती है। अपनी असुरक्षा से बचाव के लिए वह धीरेन से मिलती है। वह कहती है:

"………. मैंने भी इसी तरह जीने की कोशिश की। दिनभर के काम और फिर गला पकड़ देने वाले घर के माहौल से छुटकारा मुझे तुममें मिला, धीरेन-सिर्फ तुममें।………. वे भयानक रातें मानों आज भी दिल पर खुदी हैं। बीमारी से त्रसित घर ……… असुरक्षा के प्रेतों से भरा घर …….. और अकेलेपन की रिक्तताओं से छिलते दिल का घर और सबसे बड़ी खूंखार माँग थी शरीर में कैद भरभराते यौवन की। शरीर की यह माँग अकेली रातों में रौंद-रौंद जाती थी।…….. ये सारी तकलीफें एक साथ सहना बड़ी नारकीय यातना है"[1]

वह और धीरेन बदत्तम होते हैं। वह घर छोड़कर हॉस्टल में रहने चली जाती है। धीरेन उसे बहुत चाहता है। अनुभा सुनील को इस सम्बन्ध में बताते हुए कहती है:

" अब हालत यहाँ तक पहुँच गयी है कि चाहूँ तो इसे अपनी फैमिली छोड़ने पर भी मजबूर कर सकती हूँ पर यह भी जानती हूँ यह आदमी इस कदर जुड़ा है अपने घर से, रिश्तदारों से कि उन्हें छोड़ यह एकदम उखाड़ जायेगा, टूट जायेगा। मैं यह भी नहीं सह सकती ….।"[2]

धीरेन नया मकान लेने के लिये आर्थिक सहायता देने को तैयार है, वह उसे परिवार के साथ रहने का परामर्श भी देता है किन्तु उसका उत्तर है:

"धीरेन, मैं बड़ी खुश हूँ। इसी सिच्युएशन में तुम्हारे साथ में। बाकी बातों में कुछ नहीं रखा अब। कुछ नहीं ………" [3]

1- पतझड़ की आवाज़ें पृ0 -135
2- उपरोक्त, पृ0 -146-147
3- उपरोक्त, पृ0 171

प्रस्तुत उपन्यास का दुसरा पात्र उषा है। वह 'सैक्स' के सम्बन्ध में पूर्णतः यथार्थवादी दृष्टिकोण रखती है। वह अनुभा से कहती है कि सुखाड़िया उससे केवल सैक्स चाहता था:

"मै तो ऐसों को लिफ्ट नहीं देती कभी भी। अनुभा, तुम भी सुन लो इस मर्दजात के साथ तभी सोओ अगर माल हासिल हो या पोजीशन हासिल होती हो या फिर शादी करता हो, साला वरना मजे के लिये तो क्या, प्यार की खातिर भी सो जाओ तो ये लोग समझते क्या हैं? रंडी ही। रंडी नहीं समझेंगे, उससे तो डर भी जाएंगे कभी। पर .... "[1]

उषा अपने दृष्टिकोण के कारण सी0के0की पर्सनल सेक्रेट्री बनने में सफल हो जाती है। अच्छा पद और वेतन मिलने के कारण उससे विवाह कर लेता है।

भारतीय एवं पाश्चात्य परिवारों के स्वरूप की तुलना :

जैसा कि हम विवेचन कर चुके है कि भारतीय परिवार सम्मिलित परिवार थे अब भी कुछ हैं किन्तु पाश्चात्य परिवार ईकाई परिवार हैं, इसलिए दोनों में मूलभूत अंतर है। भारतीय परिवारों में आज भी सम्बन्धों की भावनात्मकता एक सीमा तक बनी हुई है। पुत्र के अलग हो जाने पर भी पिता-पुत्र के मध्य एक दूसरे के प्रति भावनात्मकता बनी रहती है किन्तु पश्चिम में ऐसी स्थिति नहीं है। पति-पत्नी के सम्बन्धों में इतनी भावनात्मकता है कि वे सरलता पूर्वक नहीं टूटते। पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ने के बाद भी तलाक सामान्य नहीं हो सके हैं। तलाकशुदा महिला का पुनर्विवाह भी उतना सरल नहीं है जितना पश्चिम में। पाश्चात्य ईकाई परिवारों में तलाक को विशेष महत्व प्रदान नहीं किया जाता। तलाकशुदा महिला या पुरूष पुनः अपने लिये पति अथवा पत्नी खोज लेते हैं। भारत में आज भी पुत्र-पुत्री का विवाह सम्बन्ध माता-पिता ही कराते हैं।

वस्तुतः पारिवारिक स्वरूपों के अन्तर का कारण यह है कि भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में ही मूलभूत अंतर है। नरेश मेहता ने अपने उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में इन्दु दीदी के माध्यम से इस अंतर को प्रस्तुत किया है:

1- पतझड़ की आवाज़ें पृ0 -95

''दीदी का तर्क था कि पश्चिमी सभ्यता, नगर सभ्यता है और भारतीय सभ्यता, आरण्यक सभ्यता है। पश्चिम के लिये जीवन भोग है लेकिन भारत के लिये त्याग है।''[1]

भोग और त्याग के इस अंतर के माध्यम से ही हम भारतीय एवं पाश्चात्य परिवारों के स्वरूप के अंतर को समझ सकते हैं। पाश्चात्य इकाई परिवार भोग के वैयक्तिक मूल्यों के कारण ही बने तथा भारतीय सामूहिक परिवार त्याग की भावना के कारण ही सफल रहे। परिवार का मुखिया सबसे अधिक त्याग करता था। सबके लिये वस्त्र खरीदे जाने के पाश्चात् ही वह अपने वस्त्र बनवा पाता था। यह त्याग का एक उदाहरण मात्र है।

यशपाल ने 'बारह घंटे' शीर्षक उपन्यास में प्रेम, सहानुभूति और करूणा को आधार बनाकर भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण के अन्तर को अस्वीकार करने का प्रयास किया है। बिन्नी का पति रोमी नैनीताल की झील में तैरते हुये डूबकर मर जाता है। रोमी की मृत्यु के पश्चात् बिन्नी सूखकर कांटा बन जाती है। वह उसकी समाधि पर फूल चढ़ाने जाती है। समाधि पर वह बार-बार विव्हल हो जाती है। वहाँ उसे फेंटम मिलता है, जिसकी पत्नी सैली नैनीताल के सेनेटोरियम में क्षय रोग से मृत्यु की गोद में चली गयी थी।वह एक अध्यापक था किन्तु अपनी नौकरी पर न जाकर वह नित्य आँधी-तूफान में भी सैली की समाधि पर जाता है। बिन्नी को फेंटम के रूप में एक सच्चा सहानुभूति देने वाला व्यक्ति मिलता है। बिन्नी के मन में भी उसके प्रति सहानुभूति जाग्रत होती है:

''उसकी अपनी व्यथा में भी सूक्ष्म सी कौंध अनुभव हो जाती .... ऐसे आँधी-पानी, ओले-बर्फ में .... नित्य पत्नी की समाधि पर आने वाला ......। कल्पना में दिखने लगता .... समाधि की शिला के नीचे गहराई में लेटा रोमी .... । दूसरे क्षण कल्पना करवट लेती .... वह स्वयं कफन में लेटी हुई है .... शोक विजड़ित रोमी समाधि पर खड़ा है..........। समीप बैठे हुये प्रौढ़ जैसा चेहरा .... उदास, शोक से स्तब्ध ....।''[2]

1- यह पथ बन्धु था, पृ0 139
2- बारह घण्टे, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1966, पृ0 171

बिन्नी की यह सहानुभूति उसे तुरन्त अपनी मौसेरी बहिन जेनी के पास वापस लौटने नहीं देती। वह फेंटम के साथ पहले वेलेरिमो रेस्टोरेन्ट चली जाती है और उसकी करूण कहानी सुनती है तथा अपनी करूण कहानी सुनाती है। बाद में फेंटम के घर चली जाती है, और बारह घण्टे बाद अपनी बहिन के पास सन्देश भेजती है कि:

''मुझे सेक्रेट्री में मि0 फेंटम मिल गये थे। वह ऐसे अधीर और असहाय अवस्था में है कि उन्हें अकेले छोड़ कर आ सकना बिल्कुल संभव नहीं। इस समय उन्हीं के मकान पर हूँ।

"मैं यहाँ बिल्कुल सुरक्षित हूँ और अपने उत्तरदायित्व को समझती हूँ चिन्ता का कोई कारण नही है ''.........[1]

उक्त पत्र की प्राप्ति के पश्चात जेनी जो अपनी बहन के 12 घंटे से लापता होने से आशंकित थी प्रतिक्रियास्वरूप बिन्नी को 'कुतिया' और 'डायन' जैसी संज्ञाओं से आमंत्रित करती है। लारेंस उसकी प्रतिक्रिया को उचित नहीं बताता। पामर स्पष्ट शब्दों में कहता है:

''नहीं-नहीं, यह सब पश्चिम की बातें है, हम इंडियन हैं विवाह और प्रेम के सम्बन्ध में हम लोग पश्चिम की तरह छिछले और अस्थिर नहीं हो सकते .... झगड़ा हुआ, तलाक हो गया, नयी शादी हो गई एक हफ्ते विधुर हुए, दूसरे हफ्ते नयी शादी कर ली जैसे एक नौकरी छूटी दूसरी कर ली, गेम में पार्टनर बदल लिया। यह भी कोई आदर्श है?''[2]

जेनी अपने पति पामर का समर्थन करते हुए भारतीय नारी के आर्दश की स्थापना करती है:

''निश्चय, प्रेम सम्बन्ध में निष्ठा भारतीय नारी का करेक्टर है।''[3]

लारेंस सावित्री और सत्यवान की कथाओं की पार्थिवता को केन्द्र-बिन्दु मानता है वह कहता है:

1- बारह घंटे, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1966, पृ0-93
2- वही, पृ0-105
3- वही पृ0-105

"तुम्हें याद नहीं सावित्री ने यम से वर माँगा था। यह न हो कि कल-परसों मेरे प्रेमी को फिर उठा ले जाओ। सावित्री ने सत्यवान से अपने प्रेम की निष्ठा पूरी कर सकने के लिए यम से आग्रह किया इसमें ऐसे प्राण डाल दो कि सौ पुत्र उत्पन्न कर सकने तक जवान बना रहे।"[1]

यशपाल बिन्नी को किसी प्रकार से दोषी नहीं ठहराना चाहते, इसलिये उपन्यास की भूमिका में वे पाठकों से आग्रह करते हैं कि वे मानव में व्याप्त प्रेम की प्राकृतिक आवश्यकता के रूप में भी देखें:

"पाठकों से अनुरोध है कि बिन्नी को प्रेम अथवा दाम्पत्य निष्ठा निवाह न सकने का कलंक देने का निर्णय करते समय, बिन्नी के व्यवहार को केवल परम्परागत धारणाओं और संस्कारों से ही न देखें। उसके व्यवहार को नर-नारी के व्यक्तिगत जीवन की आवश्यकता और पूर्ति की समस्या के रूप में तर्क तथा अनुभूति के दृष्टिकोण से, मानव में व्याप्त प्रेम की प्राकृतिक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में भी देखें। क्या नर-नारी के परस्पर आकर्षण अथवा दाम्पत्य सम्बन्ध को केवल सामाजिक कर्तव्य के रूप में ही देखना अनिवार्य है? क्या इस समस्या को व्यक्तिगत जीवन की आवश्यकता और तृप्ति के दृष्टिकोण से भी देख सकना सम्भव नहीं?"[2]

विधवा और विधुर के प्रेम को वे जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास मानते हैं। यशपाल ने उपन्यास के 'समपर्ण' में यही व्यक्त किया है:

"नर-नारियों के जीवन को सार्थक, सफल और उत्साहपूर्ण बनाने वाली जीवन की प्रवृत्ति और उसे चरितार्थ कर सकने के प्रयत्नों के प्रति सहानुभूति में - यशपाल"[3]

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि यशपाल विधवा और विधुर के विवाह को आवश्यक मानते हैं और इस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य परिवारों के अन्तर को मिटा देना चाहते हैं।

वस्तुतः हिन्दी के उपन्यासकारों ने भारतीय एवं पाश्चात्य परिवारों की तुलना बहुत

1- बारह घंटे, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, पृ0-106
2- उपरोक्त, पृ0-61
3- उपरिवत्, पृ0-41

कम की है किन्तु जहाँ भी अवसर मिला है, उन्होंने दोनों की जीवन-पद्धतियों पर अवश्य ही प्रभाव डाला हैं। आज की भौतिकवादी सभ्यता के कुपरिणाम पश्चिम सभ्यता की ही देन है कुछ उपन्यासकारों ने उसका वर्णन पाश्चात्य देशों और भारत के उच्च वर्गीय व्यक्तियों के जीवन के सन्दर्भ में किया है। राजकमल चौधरी के बहुचर्चित उपन्यास 'मछली मरी हुई' में विघटन के जो शब्द-चित्र प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें जीवन पद्धति के कुछ अंश भी हैं। उपन्यास की नायिका कल्याणी डॉक्टरी पढ़ने अमेरिका जाती है। घर से रूपये आने बन्द हो जाते हैं, पढाई रूक जाती है, माँ उसे वापस बुलाने के लिये पत्र लिखती है, तार देती हैं किन्तु कल्याणी वापस लौटने के स्थान पर अमेरिका के विभिन्न नगरों के कहवाघरों और नाचघरों के चक्कर काटती है। क्योंकि उसकी आत्मा 'इस नई आजाद दुनिया के नए और आजाद आसमान में रम गई है।'

"यह दुनियाँ जंगलों और अखबारों की दुनियाँ है, जहाँ आदमी अपने बारे में सुनी गई अफवाहों और कहानियों में जिंदा रहता है। लोग जहाँ चाहते हैं नंगे हो जाते हैं। नंगापन बुरी बात नहीं है। न्यूयार्क-पुल से कूदकर मर जाना भी बुरी बात नहीं है मैनहट्टन की बस्तियों में अंधेरा है। धुँधली रोशनी और सिगरेट के धुँए से भरे हुए, छोटे-छोटे शराबगाहों में लोग तिपाहियों पर बैठे हैं .... भारतीय सन्यासियों और चीनी होटलों की बातें कर रहें हैं ... .. कोई औरत अपना गिलास टेबुल पर पटकती है और अपने स्कर्ट की बाहें और सीना उतारकर ऊपर उठती है .... ड्रम और आर्केडियन की बहशी धुन पर नाचने लगती है। सिल्वाना मैनगानों और सोफिया लारेन की तरह! मम्बे, नीग्रो संगीत .... स्पेनी जिप्सियों का संगीत ! ...... रा-रा-रम्, रा-रा-रम्-रम्-रा-रम्,रा-रा-रम्,रा-रा-रम्!" शेरॉम वाक् रम्, हाई आलमो! शेरॉय वाक् रम्! (ऐ मेरी माशूक तूने शेरॉय की बनी हुयी, तेज शराब पी ही नहीं फिर तू क्या करेगी?) .... रा-रा-रम्, रा-रा-रम्।"[1]

पश्चिम का उत्तेजक संगीत, नृत्य, मदिरा-पान और मुक्त यौन सम्बंध ही कल्याणी को आजाद दुनिया लगते हैं। इस सबका प्रभाव भारतीय महानगरों पर पड़ रहा है। कलकत्ता में रहने वाली शीरी अठारह उन्नीस वर्ष की है। वह बड़ी बहन के लाख

1- मछली मरी हुई, पृ0 49-50

समझाने के बाद भी अपनी सीनियर कैंब्रिज की पढ़ाई छोड़कर रेस्तराँ में गाने लगती है। उसकी बड़ी बहन के पास जब किसी पुरूष के फोन आने लगते हैं तो वह और भी उत्तेजक गीत गाती है:

"शीरीं ने रेस्तराँ के स्टेज पर जाकर और भी 'गर्म' और जंगली गाने शुरू किये। लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। कंधों पर झूलते बालों को झटका देकर, बाँहें फैलाकर, होठों पर वहशी मुस्कराहटें और आँखों में जंगली चमक पैदा करके शीरीं सेल्सबर्ग गाने लगी-

"द ब्वायज ऑफ कैलकटा
ओह, ओह,
द ब्वायज ऑफ कैलकटा
नो रियली नो, हाउ टु किस
दे नो हाउ, टु ....
ओह, ओह
द ब्वायज ऑफ कैलकटा
दे नो हाउ टु नेट ए फिश
दे रियली नो ...."[1]

1- मछली मरी हुई, पृ0 85-86

विघटन में स्त्री की भूमिका :

भारतीय सामूहिक परिवारों के विषय में स्त्री की भूमिका सर्वोपरि होती है। पारिवारिक विघटन बींसवी शताब्दी के आरम्भिक दो दशकों से शुरू हो गया था। नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' स्वतन्त्रता से पूर्व के काल पर आधारित है। प्रस्तुत उपन्यास में पारिवारिक विघटन का चित्रण यथार्थपरक दृष्टिकोण से किया जाता गया है। उपन्यास में स्पष्ट किया गया है। कि विघटन के लिये मूलतः नारी ही उत्तरदायी होती है। शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर का पत्र आता है, जिसमें श्रीधर से अपने इतिहास - ग्रन्थ में श्रीमन्त सरकार तथा उसके पूर्वजों के लिए उचित राजकीय सम्बोधनों एवं पदवियों का प्रयोग करने के लिए कहा जाता है। श्रीधर द्वारा विद्रोही तेवर अपनाये जाने पर हेडमास्टर गाडगिल श्रीधर के बड़े भाई श्री मोहन ठाकुर को यह दायित्व सौंपते हैं कि वे श्रीधर को समझायें। पति की बात सुनकर श्री मोहन की पत्नी उन्हें ऐसा गरजती है कि उनका साहस ही नहीं होता। वह उसी समय पारिवारिक विघटन के लिये भी श्रीमोहन को उसकाती है:

"तुम्हें क्या करना है? जाने कैसी किताब लिखी। न लिखते समय, न सरकार की चिट्ठी आई, उस समय, जब हमसे पूछा ही नहीं, तब हम अब बीच में क्यों पड़ें? सरकारी मामला है। तुम बीच में मत पड़ना। अपनी नौकरी और बाल - बच्चे भी तो देखने हैं। अरे देवर जी की नौकरी क्या है, मास्टरी की न? न होगा दूसरी कर लेंगे। और मान लो न करें कुछ, हमें किसी से क्या? मैं तो रोज ही कहती हूँ कि अभी मौका है। ये सामने वाले हलवाई का मकान बिकाऊ है। जल्दी से कीचड़ से अलग हो जाएं तो भर पायें। दिन भर दूसरों के लिये खपो और .... "[1]

यह प्रसंग पूर्णतः स्पष्ट कर देता है कि श्रीधर को इंस्पेक्टर का पत्र मिलते ही श्रीमोहन की पत्नी दूसरा मकान क्रय करने और सामूहिक परिवार विघटन करने के लिये श्रीमोहन को उकसाती है। श्रीमोहन अपनी पत्नी के कारण श्रीधर को समझाना तो दूर उससे उस प्रसंग में बात तक नहीं करता। श्रीधर का छोटा भाई

1- यह पथ बन्धु था, पृ0 -71

श्रीबल्लभ सम्मिलित परिवार से अलग होने के लिये अपने तबादले की अर्जी देता है। यह समाचार सुनकर श्रीधर की माता की जो प्रतिक्रिया होती है, वह निश्चित ही बहुओं को जिम्मेदार ठहराती है:

"अब दुनिया भर के ये सब छल - प्रपंच मेरी तो समझ में नहीं आते। होगा, जिसे रहना हो रहे। नाक - भौं सिकोड़ कर, भाई किसी को रहने की जरूरत नहीं। जहाँ सींग समायें वहीं जाएं। किसी को यह घर पंसद नहीं, किसी को यहाँ देहात जैसा लगता है। एक महारानी जी को बिना नौकरों के नहीं चलता, तो दूसरी को कुछ चाहिए। ठीक है भाई, जब तक हमसे बन पड़ा, किया। अब सब अपना-अपना सम्हालो।"[1]

यहाँ स्पष्ट ही 'महारानी' शब्द द्वारा अपनी पुत्र - बधुओं को जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। पारिवारिक विघटन में नारी का ही विशेष हाथ होता है। श्रीनाथ ठाकुर भी श्रीमोहन की पत्नी को ही विघटन की स्थिति उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदार समझते हैं। श्रीमोहन ने अपनी पुत्री को पढ़ने के लिए उसके ननिहाल भेज दिया। अपनी पुत्री का विवाह भी वह अपनी ससुराल में करा रहा है और इसके लिए उसने अपने माता - पिता से कोई परामर्श नहीं लिया। श्रीमोहन अपने रहने के लिए मकान बनवा रहा है। उससे श्रीनाथ ठाकुर भी कुछ नहीं कह सकते और उसकी पत्नी से तो कहा ही क्या जा सकता है:

"उसकी पत्नी से भी कुछ नहीं कह सकता है। क्योंकि श्रीमोहन को ऐसा बनाने में उसी का हाथ है, वह मुँहजोर भी है और घमण्डी भी। उसने सास तक से कान्ता के ब्याह की कोई चर्चा करना उचित नहीं समझा। भला ऐसी स्त्री से कोई क्या कह सकता है?"[2]

श्रीमोहन की पत्नी सावित्री श्रीधर के परिवार के लिए तो कालस्वरूप ही बन जाती है। उसे गुनी का एक अच्छे परिवार में ब्याह किया जाना रूचिकर नहीं लगता। इससे पहले भी वह एक सम्बन्ध तुड़वा चुकी थी, किन्तु रावल जी के और श्रीनाथ ठाकुर के सम्बन्धों को देखते हुए श्रीमोहन ने सावित्री को इस बात के लिए रोक दिया था कि वह किसी प्रकार की बुराई न करे किन्तु विवाह के पश्चात् सावित्री ने गुनी की सास पर यह

1- यह पथ बन्धु था, पृ0-71
2- तदैव, पृ0-335

समाचार भिजवा दिया था कि वह थोड़ा जोर डाले तो उसे दहेज और मिल सकता है। दूसरी ओर उसने अपनी बहन को अपनी पुत्री का सम्बन्ध रावल जी के पुत्र बालकृष्ण से करने को तैयार कर लिया था इस प्रकार रावल जी के परिवार का विघटन करने की उत्तरदायी भी सावित्री ही थीः

"वैसे श्रीमोहन को सावित्री ने कानों कान खबर नहीं होने दी थी और गुनी की सास तक यह खबर पहुँचा दी गयी थी कि वे लोग ठगे गये। अगर थोड़ा जोर डालें तो आज भी उन्हें दस हजार गुनी के घरवालों से मिल सकता है। भला जाति में बालकृष्ण के बारबर कौन पढ़ा है? उसका सम्बन्ध तो दस हजार क्या कितने ही हजार का आज हो सकता है। उधर सावित्री ने इन्दौर में अपनी बहन को लिखा कि क्यों नहीं वह अपनी बड़ी लड़की के लिये बालकृष्ण की माँ को तैयार करती? गुनी से ज्यादा पढ़ी-लिखी भी है, लड़का भी बैरिस्टर हो ही जायेगा, दो - एक हजार देकर बात पक्की कर लो। भगवान ने चाहा तो गुनी या तो अपने घर लौट आएगी नहीं तो उसकी सास कई रास्ते जानती है कि कैसे रास्ते का काँटा दूर किया जाता है। और मान लो अगर यह सब कुछ नहीं हुआ तो हमारी लड़की को सब बता ही दिया जाएगा कि सौत के साथ क्या किया जाना चाहिए।"[1]

गुनी की सौत ने रावल परिवार की स्थिति इतनी दयनीय बनायी कि उसकी सास को कूएं में कूदकर आत्महत्या करनी पड़ी और ससुर पानी की दो बूँद को भी तरसता है।

"गुनी की सौत ने अपनी सास को इतना परेशान किया कि वे बहू के माथे पर अपयश का टीका लगाने के लिए कुँए में फाँदकर डूब मरीं। रावल-परिवार को इस मामले में पुलिस से पिण्ड छुड़ाने में हजारों रूपये खर्च करने पड़े। सुना कि सौत ने अपने ससुर की बड़ी बुरी हालत कर रखी है। वह नामांकित वकील अब घर के पीछे दालान में बोरी के एक टुकड़े पर रोगी बना 'पानी-पानी' चिल्लाता रहता है और बहू के डर के मारे किसी की मजाल नहीं जो उसे कुछ दे दे।"[2]

1- यह पथ बन्धु था, पृ0 - 468
2- उपरोक्त, पृ0-527

संयुक्त परिवारों के विघटन में तो सर्वाधिक महत्व नारी का ही माना जाता है किन्तु आज के इकाई परिवारों के विघटन में भी उसकी भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं है। नारी सुरक्षा के लिए सशक्त पुरूष की कामना करती हैं और यदि उसे अपना पति सशक्त प्रतीत नहीं होता तो उसे छोड़ने मे उसे कोई दुख नहीं होता। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' की शीरीं इसी प्रकार का चरित्र है।

शीरी मेहता कलकत्ता के पूँजीपति विश्वजीत मेहता की पत्नी है। मेहता साहब अठारह कंपनियों के डायरेक्टर हैं। सिटिजेंस क्लब की बैठक में निर्मल पद्मावत को बुलाया जाता है। मिस्टर मेहता वहाँ कल्याणी का प्रसंग उठाता है और उसे 'प्रॉस्टीच्यूट' कहता है। निर्मल दाँए हाथ से मेहता की टाई और कॉलर पकड़कर खींचता है और बाएँ हाथ से एक तगड़ा घूँसा उसके चेहरे पर जमा देता है। शीरीं पर इस घटना का इतना प्रभाव पड़ता है कि वह मेहता - हाउस छोड़कर निर्मल पद्मावत के पास पहुँच जाती है वह निर्मल से कहती है:

''निर्मल डियर, मुझे तुमसे नहीं, मेहता से नफरत हो गई है तुमने उसे इन्सल्ट किया फिर भी वह तुम्हारें सामने झुककर खड़ा हो गया। फिर भी उसने मुझसे कहा कि मैं तुम्हारे साथ डॉस करूँ ....।''[1]

'मछली मरी हुई' का नायक निर्मल पदमावत है और उसके जीवन की मूल धुरी है उसके पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी माँ एक ड्राइवर के साथ भाग जाती है:

''निर्मल उत्तर बिहार के एक छोटे-से गाँव में पैदा हुआ था। पिता के मरने के बाद उसकी माँ ने पहले मकान बेच डाला और एक लॉरी वाले ड्राइवर के साथ भाग गई वह कुल दस साल का लड़का था''[2]

इसी प्रकार मिसेज सान्याल ने अपने पति से तलाक ले लिया। मिस्टर सान्याल की नौकरी चले जाने पर वे उनसे तलाक ले लेती है:

1- मछली मरी हुई, पृ0-93
2- उपरोक्त, पृ0-41

"मिसेज सान्याल 'आर्टिस्ट' है अपने चित्रों की प्रदर्शनी करने के लिए पेरिस जा रही है। वहाँ उन्हें काफी रूपये चाहिए। वे शीतलदास कॉलेज में डाक्टर रघुवंश की छात्रा थी। होम डिपार्टमेन्ट के ऊँचे अफसर से विवाह करके 'आर्टिस्ट' बन गई। अब अकेली रहती है। गोविन्दवल्लभ पंत की होम मिनिस्ट्री ने घूस लेने के अपराध में मिस्टर सान्याल को बर्खास्त कर दिया। मिसेज सान्याल भी अपने गहने-जेवर और तलाक के रूपये लेकर अपने पति से अलग हो गई"[1]

परिवार की एक नारी यदि अस्वस्थ रहने का बहाना बना लेती है अथवा दूसरे पर बोझ बन जाती है, तब भी विघटन की स्थिति आ पहुँचती है। 'अपने लोग' उपन्यास में प्रमोद के चचरे भाई रमेश की पत्नी अपना इलाज कराने के लिए प्रमोद के घर आती है वह स्वस्थ हो जाने पर भी बीमारी का बहाना बनाकर पड़ी रहती है और घर के कार्य में प्रमोद की पत्नी संज्ञा का हाथ नहीं बटाती। इसी का प्रभाव प्रमोद पर पड़ता है, वह आक्रोश में भरकर अपनी पत्नी संज्ञा से कहता है:

"यह भी एक अच्छी-खासी मुसीबत आ गयी। दवा के नाम पर सैकड़ों की बरबादी और यह औरत ऐसी निकम्मी है कि दिनभर टाँग पसारकर बैठी रहती है, अपने बच्चे तक नहीं सम्भाल सकती, और नहीं तो हमारे बच्चों का खाना-पीना, उठना-बैठना असह्य आंखों से देखती रहती है। सबेरे का समय इतना व्यस्त समय होता है कि संज्ञा उसमें बिखर और टूट जाती है और उफ तक नहीं करती। किन्तु यह औरत कुछ करना तो दूर रहा अपने बच्चे तक नहीं सम्भाल सकती। जैसे सन्निपात में पकड़कर अशक्त हो गयी हो।"[2]

नारी यदि पतिता हो जाये तो परिवार पूरी तरह विघटित हो जाता है। प्यारे लाल मुख्तार ने जब दूसरा विवाह किया तो उसका दण्ड उन्हें मिला। मुख्तार साहब की पत्नी उनके मुवक्किलों को ही फँसा लेती थी। परिणामतः मुख्तार साहब ने आत्महत्या कर ली। विधवा होने के पश्चात् तो उसे और भी खुलकर खेलने का अवसर मिल गया। उसने अपने सौतेले बेटे पर इतने अत्याचार किये कि उसका व्यक्तित्व ही समाप्त हो गया। उसका पुत्र

1- मछली मरी हुई, पृ0-31
2- अपने लोग, पृ0-114

ब्रिज लाल ईसाई बन गया और उसने अपना नाम बी0 लाल रख लिया। बी0 लाल अपनी माता के इतिहास को जानता है। वह आवारा भी माँ के कारण ही बना और उसका विवाह भी माँ के इतिहास के कारण नहीं हो पाता, इसलिए वह अपनी माँ से स्पष्ट शब्दों में कहता है:

"मै तो पैदा होते मर ही गया हूँ माँ। मै जिंदा हूँ? तुमने इस खानदान को जिंदा ही गाड़ दिया और अब मुझे शराफत का उपदेश पिला रही हो। साला शहर का हर ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा मुझ पर हँसता है और थूकता है।"[1]

कलावती स्वयं भी पश्चाताप करती है उसे प्रतीत होता है कि उसने अपने पति की हत्या की है:

"भीतर और बाहर के अकेलेपन के बीच रंगी हुई कलावती खिड़की से बाहर देख रही थी। किन्तु अनजाने ही उसके भीतर एक गुजरी हुई दुनिया खुलती और बंद होती जा रही थी, जिसका अक्स वह कोरे कागज की तरह फैली दोपहरी पर देख रही थी। कितने लोग आये और गये, तब उसकी भरी जवानी के दिन थे। पंडित जी उसे दिख जाते हैं। अच्छा हुआ ब्रजलाल ने वह पुराना मकान तुड़वाकर नया बनवा दिया, नहीं तो वे हमेशा अपने कमरे में बैठे हुए पुरानी दीवारों के ऊपर रेंगते हुए, पूजाघर में पूजा करते हुए, रसोईघर में खाना खाते हुए दिखाई पड़ जाते थे। उसने उनकी हत्या की है हत्या-हत्या-हत्या"[2]

कलावती ने अपने सोतेले पुत्र किशनलाल पर अनेक अत्याचार किये थे। किशनलाल बौडम बन गया। लेकिन वह कलावती को माँ की तरह ही आदर और सम्मान देता है। कलावती को इस बात पर भी दुःख होता है:

"किशनलाल खाना खाने लगा और कलावती पास बैठी उसे निहारती रही। फिर एकाएक उदास हो आयी 'कितनी तकलीफ दी है इस बौडम को उसने, लेकिन जिस अपने पूत पर इतना लाड-प्यार निछावर किया, वह उसका दुश्मन बना हुआ है और जिसे नफरत

1- अपने लोग, पृ0-68
2- तदैव, पृ0-200

करती रही, कुत्ते की तरह दुत्कारती रही वह बौडम उसे कितना चाहता है। काश यह बौडम न हुआ होता और उसके पेट से पैदा हुआ होता तो ....''[1]

मंजरी एक नर्स है और बी0 लाल उससे प्रेम करता है। मंजरी भी धीरे-धीरे उससे प्रेम करने लगती है। किन्तु मंजरी की माँ के कारण दोनों का विवाह नहीं हो पाता। मंजरी की माँ बी0 लाल के समक्ष यह प्रस्ताव रखती है कि अपनी जायदाद में से 5 फ्लैट और 5 दुकानें मंजरी के नाम लिखवा दे, तो वह मंजरी से उसका विवाह करा देगी। बी0 लाल अपने बौडम भाई किशनलाल को भंग पिलाकर उससे चार फ्लैट और तीन बीघे जमीन के कागजों पर हस्ताक्षर करा लेता है और उस जायदाद की रजिस्ट्री मंजरी के नाम करा देता है किन्तु बी0 लाल की माँ कलावती को जब यह पता चलता है तो वह किशनलाल से आपत्ति दर्ज करा देती है। विवाह से दो दिन पूर्व उस आपत्ति से सम्बन्धित कागज मंजरी की माता को मिलता है तो वह विवाह कराने के इंकार कर देती है। वह बी0 लाल से स्पष्ट शब्दों में कहती है:

''नहीं बी0लाल, मैंने दुनिया का बहुत जहर पिया है। मैं अपनी बेटी को असुरक्षित रूप से किसी के हवाले नहीं छोड़ सकती। मुझे दुनिया का विश्वास नहीं रह गया है। हाँ मुझे इस बात की तकलीफ जरूर है कि तुम्हारी बात में आकर शादी से पहले मंजरी ने अस्पताल की नौकरी छोड़ दी।''[2]

मंजरी की माँ बदनाम डाक्टर सूर्य प्रकाश के यहाँ उसे नर्स रखवाने का प्रस्ताव रखती है और मंजरी से कहती है कि बी0 लाल की रखैल बनने से अच्छा है नौकरी करना :

''मैं जानती हूँ बेटी, तुम क्या कहना चाहती हो, लेकिन वे तुम्हारे पिता तुल्य है। खराब आदमी भी कहीं-न-कहीं पवित्रता बरतता है औरतुम स्वयं अपने को रिजर्व रखने की कोशिश करना। बी0लाल की औरत के रूप में रखैल बनकर रहने से अच्छा है, किसी की नौकरी करना। रखैल बनने की अपेक्षा नौकरी में ज्यादा आजादी होती है। जब बी0लाल सही ढंग से तुम्हारे नाम जायदाद लिख देगा तब शादी हो जायेगी।''[3]

1- अपने लोग, पृ0-202
2- उपरोक्त, पृ0-302
3- उपरोक्त, पृ0-303

श्री रामदरश मिश्र ने अपने दूसरे उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में पारिवारिक विघटन के लिए स्त्री की भूमिका को ही महत्वपूर्ण माना है। बनवारी अपने बड़े भाई धनपाल का बहुत सम्मान करता है। किन्तु धनपाल की स्त्री अत्यधिक कुटिल स्वभाव की है:

"धनपाल की ही तरह धनपाल की औरत भी बड़ी नामाकुल थी। वह नम्बरी कर्कशा थी। धनपाल स्वभाव से कुटिल होकर भी गम्भीर थे, कम बोलते थे, किन्तु उनकी औरत बड़ी मुंहजोर थी, बात-बात में कुमार की माँ की बेइज्जती कर देती। जेठानी होने का उसे गौरव प्राप्त था, उस गौरव को किसी भी क्षण वह विस्मृत नहीं कर पाती। कुमार की माँ यदि किसी बात पर विरोध करती, तो उसे झोटा पकड़ कर पीट देती।"[1]

धनपाल का बेटा बंसी पढ़ाई में ध्यान नहीं देता था और बनवारी का पुत्र कुमार पढ़ाई में तेज था। स्कूल में कुमार ने बंसी को नकल नहीं कराई और अध्यापक ने बंसी की पिटाई कर दी तो बंसी की मां कुमार को ही गालियाँ बकती है:

"जैसी माँ है, वैसा ही बेटा। दोनों नम्बरी चीज। हाय-हाय देखो तो मेरे लाल की पीठ में मरकीनवना मास्टर के डंडों की साठ पड़ गयी है। उसको ताडन ले जा, उसकी सात बहिन सीतला भइया उठा ले जा और इस दहिजरा को तो देखो, खड़ा-खड़ा भाई को पिटवाता है, यह नहीं कि नकल करा दे, देखने में ही छोटा है, पर है मरचाई की तरह तीता। जा कभी भला नहीं होगा, मेरे लाल का अनभल चाहने वालों का"[2]

सर्दी में बंसी के पास कम्बल होते हुए भी उसके लिए नए कम्बल ही खरीदें जाते है कुमार एक पुरानी सूती दोहरी से ही काम चलाता है। कुमार की माँ इस प्रश्न को उठाती है, तो बंसी की माँ कह देती कि ये तो उसने अपने पैसे से खरीदे हैं:

"तो तू भी बनवा ले, तुझे मना कौन करता है? बाप के घर से रूपया लाई हो; तो खोल दे गाँठ से। बंसी के कपड़े लत्ते तो मैंने अपने पैसे से बनवाये है। क्या कोई इस घर की कमाई से ये तैयार हुए हैं? बड़ा सुख दिया है इस घर ने हम लोगों को। तेरी आँख फट जाए जो मेरे बच्चे का इस तरह खाना-पहनना निहारती है चुड़ैल कहीं की।"[3]

1- जल टूटता हुआ, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, प्रथम संस्करण, पृष्ठ -58
2- तदैव, पृ-60
3- तदैव, पृ0-63

'जल टूटता हुआ' उपन्यास के उतरार्द्ध में बंसी और अर्जुन का बँटवारा होता है। इसका दायित्व तो पूर्णतः अर्जुन की पत्नी का ही है। अर्जुन अपने भाई बंसी का बहुत सम्मान करता है। जिस घर में खाने के लाले पड़ गये थे, उसमें अर्जुन के कारण स्थिति सुधर गयी थी। किन्तु उसकी पत्नी स्वार्थी थी, इसलिए घर से अलग होना चाहती थीः

"घर कुछ मजे में चलने लगा था लेकिन उसकी औरत बड़े-कड़े और स्वार्थी मिजाज की थी। उसे लगता था कि उसका मर्द कमाता है और घर भर खाता है। बात-बात में सलोने से झगड़ा करती, काम करने में तोर-मोर करती। उसे लगता कि वह अलग रहे तो अधिक सुखी रह सकती है।"[1]

इस प्रकार अर्जुन और बंसी का बँटवारा करने में अर्जुन की पत्नी को सफलता मिल जाती है। क्योंकि बंसी और उसकी पत्नी को रोज-रोज का झगड़ा सहन नहीं रह गया था।

महानगरीय संवेदना के उपन्यास में इकाई परिवार का विघटन चित्रित किया जा रहा है मन्नू भण्डारी के उपन्यास 'आपका बंटी' में शकुन अपने को मिटा नहीं सकी। उसकी चेतना और उसका अहं पारिवारिक विघटन के लिए जिम्मेदार बन गया। वकील चाचा ने उससे कहा थाः

"तुम जानती हो, अजय बहुत इगोइस्ट भी है और बहुत पजेसिव भी। अपने-आपको पूरी तरह समाप्त करके ही तुम उसे पा सको तो पा सको, अपने को बचाये रखकर तो उसे खोना ही पड़ेगा।"[2]

निरूपमा सेवती के उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें' में सुनीला की चेतना और उसका अहं ही तो उसे अपने पति से अलग होने के लिए विवश करता है। वह स्पष्ठ कहती है, 'अनु आई कैन नॉट स्टैंड दिस फुलिस टिपीकल ईगो ऑफ मैन' टिपीकल ईगो उसके इस कथन से स्पष्ट होता हैः

"अरे यार, अब साफ ही कहूँ। सुनीला उठकर बैठ गयी थी और अनुभा की बाँह पर धौल जमाते बोली थी 'पुरूष अपनी मर्जी से ही हमेशा जिस्म पर हक जमाते हैं हर रात और

1- जल टूटता हुआ, पृ0 537
2- आपका आपका बंटी, पृ0-110

कभी-कभी तो हर सुबह भीं हर रात का यह चक्कर इतना-इतना बुरा है कि मुझे लगने लगा था कि मैं 'वह' होती जा रही हूँ। एज इफ आई एम ए कैप्ट वूमन।[1]

यहाँ महिला की चेतना और उसका स्वतन्त्र अस्तित्व लुप्त प्रायः प्रतीत होता है और इसी कारण वह अपने पति को छोड़कर चली आती है।

गाँव में भाभी यही नहीं चाहती कि उसके देवर का विवाह हो क्योंकि विवाह होने के पश्चात् वह या तो अलग हो जायेगा अथवा उसके बच्चों को पालने के लिए धन नहीं देगा। जगदीश चन्द्र के उपन्यास 'धरती धन न अपना' में सन्तसिंह का विवाह इन्हीं स्थितियों में नहीं हो पाता। वह बताता है कि:

"भाभी चाहती तो अपनी छोटी बहन का रिश्ता मेरे लिए ला सकती थी। लेकिन उसे डर था कि मेरी शादी हो गयी मैं अलग हो जाऊँगा या अगर साथ भी रहा तो उसके बच्चों की पलटन को पालने-पोसने के लिए अपनी कमाई खर्च नहीं करूँगा। इसलिए वह हमेशा टालमटोल करती रही। लेकिन जब से वह शहर गयी है, उसने मेरे ब्याह का जिक्र तक करना छोड़ दिया है। जब मैं मकान की मरम्मत के बारे में बात करने गया था तो मुझे कहने लगी कि उसके बड़े और छोटी लड़की को गोद ले लूँ। इससे तुम्हारा कुल भी चलता रहेगा। मैंने उसे जबाब दिया था कि पराये तेल से कुल का दीप नहीं जल सकता।"[2]

गाँव में यदि खेती की जमीन न हो तो नगर पहुँच जाने पर स्त्री अपने पति के गाँव से सम्बन्ध ही समाप्त करा देती है। सन्तसिंह अपने भाई और भाभी के बारे में बताते हुए कहता है:

"भाभी ने तो उसे इस तरह बस में कर लिया है कि वह बाकी सब रिश्ते भूल गया है। अब तो उसने गाँव से नाता ही तोड़ दिया है। मैंने पिछले साल उसे चिट्ठी लिखी थी कि मकान की छत खराब हो गयी है। अगर कुछ मदद दो तो शहतीर और कड़ियाँ बदल दूँ। उसने मेरी चिट्ठी का जवाब तक नहीं दिया। मैं उनके पास शहर गया और बात शुरू की तो

1- पतझड़ की आवाजें, पृ0-155
2- धरती धन न अपना, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 1996, पृ0-106

वह फिर भी चुप रहा। लेकिन भाभी ने कोरा जवाब देते हुए कहा कि जिसे गाँव के मकान में रहना है वही इसकी मरम्मत कर लें।''[1]

सामूहिक परिवार में स्त्री ही सर्वप्रथम विघटन का बीज डालती है। हिमांशु जोशी के उपन्यास 'सु-राज' में छोटी बहू की भूमिका यही है। देवा, गांगि काका से कहता है कि अब तक वह वही करता रहा है जो उन्होंने कहा है किन्तु छोटी बहू अपने और उसके बच्चों के बीच समान व्यवहार नहीं करती:

''अपने बच्चों को तो छोटी बहू कनक के फुल्के देती है और हमारे बच्चों को मंडुवे की बकोड-जैसी (पेड़ की छाल-सी) काली रोटियाँ।''[2]

यह व्यवहार केवल बच्चो को भोजन परोसने में ही नहीं है अपितु बच्चे झगड़ पड़ें तो यह नहीं देखा जाता कि गलती किस की है, पिटाई उसी के बच्चों की होती है। देवा काका से कहता है:

''गलती किसी की हो, मगर मार हमारे बच्चों को ही पड़ती है। आपकी इज्जत के डर से कुछ नहीं कहते, नहीं तो कब का भता भंग हो गया होता, इस घर का ....। लौकि की माँ मै के मेंही रहने की बात करती है। हमारे अलावा वहाँ है ही कौन, उनको पानी औड़ कर पिलाने वाला।''[3]

स्त्रियों को झगड़े के लिए एक मुद्दा चाहिए, उसमें औचित्य हो अथवा नहीं। बड़ी बहू विधवा है। उसके पीहर से उसके लिए कपड़े भेजे गये। इन कपड़ों में किसी के हिस्से का प्रश्न नहीं उठना चाहिए था। किन्तु छोटी बहू उन कपड़ों में से भी अपना हिस्सा माँगती है। देवा काका से कहता है:

''कुल बाज्यू-(बड़ी भाभी) के मैके वालों ने कपड़े भेजे हैं। परसों पिपलाटी का मथुरिया दे गया था। छोटी कहती है उसका भी भाग होना चाहिए। आज यह महाभारत उसी वजह से मचा है।''[4]

1- धरती धन न अपना, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 1996, 105-106
2- सु-राज, भारतीय प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1994, पृ0-12
3- उपरोक्त पृ0 - 12
4- उपरोक्त, पृ0- 12

काका पहले स्पष्ट शब्दों में कहते है कि बड़ी बहू तो बेचारी विधवा है। उससे किसी का डाह क्या हो सकता है? उसके भाई ने अपना पेट काटकर उसके लिए कुछ कपड़े भेजे तो उनमें से हिस्सा माँगना तो पाप ही है। किन्तु पारिवारिक कलह मिटाने के लिए बड़ी बहू से ही कहते हैं:

''बहू तू सबसे बड़ी है न गांगि' का ने शून्य में जैसे कुछ टटोलते हुए कहा, ''इसलिए तुम्हें इस सबसे अधिक सहना चाहिए। छोटी कपड़े के लिए रार मचा रही है तो दे दे। तेरे लिए मैं और सिलवा दूँगा।'' उनका स्वर उदास हो गया, 'घर में तू सबसे सयानी है न। जिठानी ही नहीं इनकी सास की ठौर पर भी हैं ....। यह बच्ची है नादान। इसे अकल ही होती तो ऐसा कुपचित करती .....?''[1]

बड़ी बहू नये सिले कपड़ों की गठरी काका के हाथ में रख देती है। काका के जाने के पश्चात बड़ी बहू और छोटी बहू में कुछ कहन सुनन होती है और छोटी बहू कपड़ों की गठरी को जला डालती है। देवा काका को बताता है।:

''ढुल बोज्यू से छोटी की कुछ कहा-सुनी हो गई थी। गुस्से में आकर छोटी ने वे कपड़े आग में झोंक दिये। ढुल बोज्यू रोते-रोते बेहोश हो गई हैं। अभी एक घड़ी पहले होश आया''[2]

काका कुछ दिन के लिये घर से चले जाते हैं तो उनके पीछे बँटवारा हो जाता है और विधवा बड़ी बहू को कुछ नहीं दिया जाता है। लौटने पर काका और बड़ी बहू के बीच वार्तालाप होता है जिससे ज्ञात होता है कि बँटवारे के लिए छोटी बहू ने ही जिद की थी:

''माल-भामर जाते बखत नन्दू बतला गया था कि घर के बाँट-बँटवारे हो गये हैं।' वह बोरी पर बैठते हुए बोले।

'हाँ छोटी ने जिद की तो वे विचारे भी क्या करते?'

'तेरा तीसरा भाग तुझे दिया?' गांगि' का ने पूँछा।

बड़ी बहू चुप रही।''[3]

1- सु-राज, भारतीय प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1994, पृ0 13
2- उपरोक्त, पृ0-13-14
3- उपरोक्त, पृ0-29

विघटन में पुरूष की भूमिका :

यद्यपि यह कटु सत्य है कि पारिवारिक विघटन में नारी का ही विशेष उत्तरदायित्व होता है किन्तु पुरूष की सहमति के बिना वह सम्भव नहीं हो पाता। पुरूष की अक्षमता भी एक ऐसा प्रमुख कारण बनती है कि वह उस विघटन को रोक पाने में असमर्थ होता है। 'वह पथ बन्धु था' में श्रीनाथ ठाकुर परिवार के मुखिया का कर्त्तव्य वे ठीक से नहीं निभा सके। इसका पछतावा उन्हें बाद में होता है:

''लेकिन आज नाराज होने से क्या लाभ? और इस सारी गड़बड़ी के कारण, क्या वे स्वयं नहीं हैं? उन्होंने क्या शुरू से सारे बच्चों की गतिविधि नहीं देखी थी? श्रीमोहन की बहू को यदि कड़ककर शुरू में ही बरज दिया गया होता तो उसकी यह हिम्मत हुई होती कि वह उसकी पोती के ब्याह में उन्हें दूध की मक्खी की भाँति अलग कर दे?''[1]

श्रीनाथ ठाकुर की पत्नी का दृष्टिकोण भी यही है कि यदि उसके पति आरम्भ से ही घर के मुखिया की तरह व्यवहार करते होते तो आज परिवार का विघटन नहीं होता:

''क्या ही अच्छा होता कि यदि वे इस तरह तटस्थ देखते रहने के साथ-साथ कहीं बागडोर थामें रहते तो आज यह तीन-तेरह की नौबत तो न आती।''[2]

श्रीनाथ ठाकुर को अन्ततः अपने पुत्रों पर ही खीझ आती है क्योंकि उनकी दृष्टि में वे ही इस सबके लिये उत्तरदायी हो सकते हैं:

''श्रीधर की माँ! तीनों अपने-अपने तरीके से पराये है, इसी दिन के लिए घर की ये चार दीवारें खड़ी की थीं कि इनकी नींव में छेदकर ये तीनों पानी के रेले चले जाएँ? एक हमें अपमानित कर गया है, दूसरा हमसे दुखी होकर गया है और तीसरा ऐसे गया मानो उसे गोद लिया था, और अब हमें छोड़ गया है।''[3]

1- यह पथ बन्धु था, पृ0-336
2- उपर्युक्त, पृ0- 336
3- उपर्युक्त

छोटा श्रीबल्लभ पशुओं का डाक्टर है, वह स्वयं तबादला लेकर चला जाता है और इस प्रकार परिवार के दायित्वों से मुक्ति पाता है। बड़ा पुत्र श्रीमोहन अपनी पत्नी की बात मानता है और अलग हो जाता है। इस प्रकार श्रीमोहन और श्री बल्लभ संयुक्त परिवार का विघटन कराने वाले बनते हैं। यदि वे दोनों संयुक्त परिवार में रहना चाहते और अपनी-अपनी पत्नियों को डाँटते तो परिवार का विघटन नहीं होता।

आज इकाई परिवार टूट रहें हैं, उसमें तो पुरूष की भूमिका महत्वपूर्ण होती जाती है। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' में विश्वजीत मेहता अपनी पहली पत्नी को तलाक दे देता है। तलाक के लिए वह उस पर चरित्रहीनता का लांछन लगाते हैं:

''जब उन्होंने अपनी पत्नी को तलाक दे दिया! इल्जाम लगाया कि उनके तीन बच्चों की माँ अपने ड्राईवर के साथ दो हफ्ते एक होटल में चोरी-चोरी रह चुकी हैं।''[1]

यह लाछंन सत्य था, अथवा नहीं यह भी स्पष्ट नहीं है। उपन्यासकार ने मेहता साहब के अठारह कंपनियों के मालिक बनने का जो विवरण दिया है कि उससे तथा ड्राइवर के गायब हो जाने के ढंग से प्रतीत होता कि मेहता साहब ने शीरीं के साथ विवाह करने के उद्देश्य से ही यह सब कृत्य किया।

''ड्राइवर को अदालत में हाजिर नहीं किया जा सका। पता नहीं, देश के किस अँधेरे कोने में वह गायब हो गया। होटल के बैरों ने गवाही दी। मैनेजर ने गवाही दी। पुलिस ने सबूत पेश किये। विश्वजीत मेहता की पत्नी अपने बच्चों के साथ मेहता-हाउस से चली गयी।''[2]

एक अन्य तथ्य से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। विश्वजीत मेहता शीरी के सौन्दर्य से प्रभावित थे। उससे विवाह करने के लिए वे व्याकुल हो उठे और वार्ता के लिये वे शीरीं की बड़ी बहन से मिलते हैं। उसके पश्चात् वे वकील को आदेश देते है कि तलाक की प्रक्रिया शुरू कर दी जायें।

1- मछली मरी हुई, पृ0- 83
2- उपर्युक्त, पृ0- 83-84

"जिस दिन पहली बार मेहता साहब शीरी की बड़ी बहन के कमरे में आए, उसी दिन उन्होंने अपने वकील को बुलाकर कहा, "अब वक्त आ गया है। डाइवोर्स-सूट की तैयारी शुरू कर दो।"[1]

यहीं नहीं शीरीं से विवाह के पूर्व ही उसे मेहता-इंडस्ट्रीज का डाइरेक्टर बना दिया जाता है। इस प्रकार पुरूष जब चाहता है, तब वह अपनी पत्नी को तलाक दे देता है, बशर्ते उसके पास धन की शक्ति हो। धन के द्वारा वह अपने गवाह तैयार कर सकता है और किसी भी लाँछन को प्रमाणित करा सकता है।

विघटन की प्रक्रिया का आरम्भ तो उसी समय होता है जब एक पुरूष किसी अन्य पक्ष का शोषण करता है। रामदरश मिश्र के 'अपने लोग' शीर्षक उपन्यास का मूल बिन्दू भी यही शोषण है। प्रमोद अपने पिता के कहने पर दिल्ली की नौकरी छोड़कर गोरखपुर के कालेज में नौकरी कर लेता है। उसके चचेरे भाई उसका शोषण आरम्भ कर देते हैं। सबसे पहले रमेश अपनी पत्नी को गोरखपुर भिजवाता है ओर सबसे मँहगे डाक्टर सूर्यप्रकाश से इलाज करवाने की बात भी कह देता है। प्रमोद के पिताजी बहू को लेकर आते हैं और उनकी मनः स्थिति को समझकर वे उसे स्थिति से परिचित कराते हैं:

गाँव की सारी औरतों की दवा क्या शहर में ही होती है? लेकिन रमेश हमारी जान खा गया। मैंनें समझाया भी कि कुछ खास नहीं है वैद्य जी को दिखा दो, दवा देगें, ठीक हो जायेगी। लेकिन वह भनु-भनु-भनु-भनु करता रहा और गाँव के लोगों से कहना शुरू किया कि 'घर के ही लोग शहर में रहते हैं, लेकिन मेरी बीबी बीमार है, कोई ख्याल ही नहीं करता। मैं चचेरा भाई और किसान जो ठहरा।' मै सुनते-सुनते तंग आ गया। अच्छा। सोचा-कुछ हो-हवा गया तो बड़ी बदनामी होगी। मैंने उससे कहा, 'अच्छा भाई, बहू को गोरखपुर छोड़ आओं।' लेकिन वह खुद आने को तैयार नहीं हुआ। कहा, 'मैं जाऊँगा तो गृहस्थी का अकाज होगा। आप छोड़ आइए। और हाँ इसे डॉ0 सूर्यकुमार की दवा करवा दीजिएगा।' अब करता क्या? लाना पड़ा।"[2]

1- मछली मरी हई, पृ0-86
2- अपने लोग, पृ-79

दीपावली की छुट्टियों में प्रमोद का दूसरा चचेरा भाई श्याम अपने सारे परिवार को लेकर आ जाता है। रमेश बैल खरीदने के लिये पैसे माँगने प्रमोद के पास आता है। प्रमोद को खेतों में उत्पन्न अनाजों में से कोई हिस्सा नहीं देता। प्रमोद पर प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है, इसलिये वह अपनी पत्नी संज्ञा से कहता है कि:

"खैर, बोलो, क्या किया जाय? श्याम का परिवार आया है और कई दिनों तक रहेगा। रमेश की बीबी जाना नहीं चाहती और रमेश जी आये है बैल खरीदने के लिय रूपये मांगने। इस कमीने के मारे तो मेरा जीना मुश्किल हो गया है। सबके हिस्से का खेत भोग रहा है, पैसा इक्ट्ठा कर रहा है और एक छटाँक किसी का देना न लेना और बैल बीमा का पैसा मुझसे माँगने चला आता है। कहता है, कि पिताजी ने भेजा है।"[1]

प्रमोद रमेश से कहता है कि बैलों के लिए श्याम से पैसे माँगे तो उसका उत्तर होता है कि उसके भाई तो स्कूल टीचर है उनके पास पैसे कहाँ से आये। अपने परिवार को ले जाने से इंकार करते हुए बहाना बनाता है कि पहले वह मामा के यहाँ जायेगा इसलिए सीधा गाँव नहीं जायेगा। प्रमोद सोचने को विवश हो जाता है। वह सोचता है:

"सोते-सोते प्रमोद सोचने लगा कि कितने चालाक हैं ये सब। सगे भाई से पैसे नहीं माँगेगा क्योंकि मुझ से पैसे मिल सकते हैं। सगे भाई साहब घर से राशन भी उठवा-उठवा ले जायेंगे, पैसे भी नहीं देगें और सम्मान भी पायेंगे। नहीं, वह ये बदतमीजियाँ बर्दाशत नहीं कर पायेगा। 'रमेश जी मामा के यहाँ जायेंगे , जैसे वह जानता नहीं इनके मामा की औकात मामा के यहाँ जा रहे हैं, इसलिए कि उनकी देवी जी को महीना-भर और फल खाने का अवसर मिल जाये।"[2]

प्रमोद के फुफेरे भाई के चचेरे भाई सज्जन भी रूपया माँगने की इच्छा से आते हैं। एक ओर प्रमोद छात्र द्वारा घायल कर दिया गया है और दूसरी ओर सज्जन जैसे व्यक्ति उससे रूपया लेना चाहते हैं इसलिए वह अपने पिता जी से कहता है:

1- अपने लोग, पृ0 - 175
2- उपरोक्त, पृ0- 178

"पिताजी, आप ठीक कह रहे हैं, लेकिन खतरे से कहाँ-कहाँ बचा जायेगा? बाहर का आदमी तो ईंट-पत्थर ही मार सकता है। लेकिन अपने लोग जो अपने बनकर गोंच की तरह दिन-रात खून-चूसा करते हैं उनका क्या इलाज है? अब देखिए, सज्जन भइया मुझे देखने के बहाने इस हालत में भी रूपये माँगने आये थे। इसी तरह जब से आया हूँ तब से पता नहीं कितने संबंधी और गाँव-गिराव के आदमी खाने-पीने के वक्त आ धमकते हैं और कर-कचहरी के लिए पैसे घटे होते हैं तो वो भी माँगते हैं। यहाँ जब से आया हूँ घर धर्मशाला बना हुआ है।"[1]

रमेश का परिवार जाता है तो श्याम अपनी समस्या लेकर उपस्थित होता है। उसे स्कूल से मुअत्तिल कर दिया गया है। वह प्रमोद के पास रहकर मैनेजिंग कमेटी से मुकद्दमा लड़ना चाहता है। मुकद्दमे का खर्चा प्रमोद को ही उठाना पड़ेगा। श्याम सारी कार्यवाही का भार प्रमोद पर छोड़कर चला जाता है, तो रमेश का पुत्र अपने कान का इलाज कराने आ जाता है। रमेश आकर अपने पुत्र के बारे में तथा अपने भाई श्याम के मुकद्दमे के बारे में जानना चाहता है। इसके अतिरिक्त मालगुजारी जमा करने के तीस रूपये कम पड़ रहे हैं। वह कहता है:

"मैं चाहता हूँ मालगुजारी जमा करके घर वापस हो जाना, इसलिए यह भी बता दीजिए कि श्याम भइया का मुकद्दमा कहाँ तक पहुँचा और जिस दिन कहिए, मैं आ जाऊँ, उस जमीन के लिए चार-पाँच सौ रूपये कम पड़ रहे हैं।"[2]

इतनी बातें सुनकर प्रमोद के मन में जमा आक्रोश फूट पड़ता है। वह स्पष्ट शब्दों में बता देता है कि अब संयुक्त परिवार नहीं चलने का। बँटवारे के लिए कहकर वह पारिवारिक विघटन की स्थिति को ले आता है। क्योंकि उसके चचेरे भाईयों द्वारा किया जा रहा शोषण अब चरम सीमा पर पहुँच गया है। वह रमेश से कहता है :

"हूँ, तो सुनो-तुम्हारे लड़के का कान अभी ठीक नहीं हुआ है। लेकिन उसे लेते जानाऔर यह दवा खरीदकर कान में डालते रहना। तुम्हारे श्याम भइया का मुकद्दमा

1- अपने लोग, पृ0-232
2- उपरोक्त, पृ0- 348

शुरू नहीं हुआ है। और न होगा, उन्हें मुकद्दमा करना हो तो खेत बेचकर रूपया इकट्ठा करें और गोरखपुर के धर्मशाला में आकर ठहरें और मुकद्दमा लड़ें। मालगुजारी तुम अपने पैसे से अदा करोगे। क्योंकि खेत का एक अन्न भी मुझे मयस्सर नहीं होता और पड़ोस वाली जमीन के बारे में, मैं तुम्हें पहले ही कह चुका था। बार - बार मुझे तंग करने की आवश्यकता नहीं। और गाँव आऊँगा। तुम्हें जब अनुकूलता हो, मैं गाँव आ आऊँ और जायदाद का बँटवारा कर लूँ। ठीक है न?''[1]

रामदरश मिश्र ने अपने अन्य उपन्यास 'जल टूटता हुआ' मैं पुरूष की भूमिका को अधिक सशक्त ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। धनपाल जवार पुराने किस्म के वैध है, आवश्यकता पड़ने पर पंडिताई भी कर लेते हैं तथा फसल भी अच्छी आती है। किन्तु अपने छोटे भाई बनवारी को जान बूझकर आवारा बनने देते हैं। बनवारी इसी बात के कारण अपने बड़े भाई का बहुत सम्मान करता है। धनपाल का दृष्टिकोण भिन्न था। वह बनवारी को निकम्मा इसलिए बनाता है जिससे घर की आय के सम्बंध में उसे कुछ ज्ञान न रह पाये: ''बनवारी धनपाल के लिये जान देता, क्योंकि धनपाल ने बनवारी को आवारागर्दी के लिए काफी छूट दे रखी थी। बनवारी उस छूट को भाई का असीम प्यार समझता। लेकिन धनपाल ने भाई को छूट देकर उसे निकम्मा बना देना चाहा था, घर की वास्तविकताओं से एकदम बेखबर। धनपाल अच्छी खेती करता। गल्ला बेचकर रूपये बाटोरता, रूपये कर्ज देता - छोटी-छोटी जातियों के लोगों से, सूद बटोरता, वैदकी से भी कुछ न कुछ मिल जाता, उसे बटोरता, बस बटोरता, बस बटोरता-बटोरता और कुछ नहीं। बनवारी को मालूम भी न होता कि घर कैसे चलता है।''[2]

बनवारी के पुत्र कुमार के लिए कम्बल नहीं मंगाया गया। कुमार को निमोनिया हो गया। बनवारी को पहली बार आभास हुआ कि उसके पुत्र के साथ उसका बड़ा भाई न्याय नहीं करता। धनपाल बनवारी से जब भी कुछ कहता था, वह उसे स्वीकार कर लेता था और अपनी पत्नी की पिटाई भी कर देता था। इस बार भी धनपाल ने बनवारी को भड़काना चाहा :

1- अपने लोग, पृ0 348
2- जल टूटता हुआ, पृ0 58-59

"कि सर्दी का मौसम है कौन नहीं बीमार पड़ता है, देह ही तो है कभी नरम कभी गरम। यह बीमारी नहीं होती तो इन वैद्यों की क्या जरूरत होती? मगर घर के लोग हैं जो मुझे बदनाम करने के लिए एक-एक वजह ढूँढ लेते हैं। कुमार बीमार पड़ गया क्योंकि इसके पास कपड़ा लत्ता नहीं है, यह तो घर फोड़ने और तोड़ने के लक्षण हैं।"[1]

बनवारी के यह कहने पर 'ठीक ही तो है' धनपाल चीखाकर कहता है कि वह भी इस षड्यन्त्र में सम्मिलित हो गया है। पहली बार बनवारी अपने भाई को उत्तर देता है :

"माफ करें भाई साहब, यह षड़यन्त्र नहीं, सच्चाई है। सभी लोग कह रहें है कि कुमार को ठण्डक लग गई है क्योंकि उसके पास इस ठण्डक में भी ओढ़ने के लिए सूती दोहर के अलावा कुछ नहीं था"[2]

धनपाल को लज्जा नहीं आती अपितु वह उल्टे बनवारी को ही दोषी ठहराने पर आमादा हो जाता है। बनवारी के यह कहने पर कि यदि बंसी के लिए कम्बल आया था तो कुमार के लिए भी आ सकता था, धनपाल कहता है :

"तो बंसी तुम्हारी आँख में गड़ रहा है, मैं तो तुम्हें ऐसा नहीं समझता था। बंसी के लिए तो उसकी माँ ने कम्बल मँगाया है, मुझे तो खबर भी नहीं। लेकिन मैं तो तुम्हें साँप का पोआ नहीं समझता था। दिन-रात मर कर गृहस्थी का काम सँभालता हूँ, और तूम घूम-घूम कर आवारागर्दी करते हो। तब तो नहीं आते हो बराबरी करने और बंसी के लिए एक कम्बल आ गया, तो मानो प्रलय उतर आया। लानत है तुम्हारी बेवफाई पर।"[3]

परिणामतः दैनिक टकराव बढ़ गया। पहले बनवारी अपनी पत्नी की पिटाई कर देता था किन्तु अब ऐसा नहीं होता, जिसके कारण स्वयं धनपाल को ही कहना पड़ा कि 'अलग हो जाओ और मरो' जिसे बनवारी ने स्वीकार कर लिया।

पति-पत्नी के मध्य तनाव और फिर तलाक लेने की स्थिति में पुरूष की जिम्मेदारी भी कम नहीं आंकी जा सकती 'आपका बंटी' अजय अपने ईगो के समक्ष नारी को कुछ भी

1- जल टूटता हुआ, पृ0-65-66
2- उपर्युक्त, पृ0-66
3- उपर्युक्त, पृ0-66

महत्व नहीं देता। वह उसे सदैव पराजित ही देखना चाहता है, इसलिये तलाक की स्थिति आ पहुँचती है। इसी प्रकार निरूपमा सेवती के उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें', में सुनीला का पति सुधांशु अपनी पत्नी को समय ही नहीं दे पाता। उसके सुख-दुख की बातें करने का उसके पास समय ही नहीं है। सुनीला की आत्महत्या के पश्चात् वह अनुभा से पूछना चाहता है कि अन्तिम समय में सुनीला क्या कह रही थी और वह उससे बहुत प्यार करता है तो अनुभा स्पष्ट शब्दों में कहती है:

"आप प्यार करते होंगे। उसका कोई महत्व नहीं। महत्व है दूसरे की केयर करने पर। तो परवाह कितनी करते थे उसकी? जरा एक बार फिर सोच कर देखें।"[1]

पति-पत्नी के मध्य तो 'केयर' अत्यन्त आवश्यक है किन्तु भाईयों के बीच विघटन तभी होता है जब एक दूसरे की 'केयर' का भाव नहीं रहता। पारस्परिक कलह और समान आदतें न होने पर विघटन का आरम्भ हो ही जाता है। श्री लाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' में कुसहर प्रसाद के परिवार से अलग होने के पीछे यही महत्वपूर्ण कारक था। उपन्यासकार ने पहले परिवार की स्थिति और फिर दैनिक 'कॉव-कॉव' का चित्रण किया है:

"कुसहर प्रसाद के दो भाई थे। एक बड़कऊ और छोटकऊ। बड़कऊ और छोटकऊ शान्तिप्रिय और निरस्त्रीकरण के उपासक थे। उमर-भर उन्होंने कभी कुत्ते तक पर लाठी नहीं उठाई। बिल्लियाँ स्वछन्दता पूर्वक उनका रास्ता काट जाती थीं। और उन्होंने कभी उन्हें ढेला तक नहीं मारा। पर उन्होंने अपने बाप से गाली देने की कला सीख ली थी और उसके सहारे रोज शाम को सभी पारिवारिक झगड़ों को बिना किसी मारपीट के सुलझाया करते थे। रोज शाम को दोनों भाइयों और उनकी औरतों में कॉव-कॉव शुरू होता ओर बैठक रात के दस बजे तक चलती। इस प्रकार से इन बैठकों का महत्व सुरक्षा-समिति की बैठकों का सा था। जहाँ लोग कॉव-कॉव करके युद्ध की स्थिति को काफी हद तक टालने में मदद करते हैं।"[2]

1- पतझड़ की आवाजें, पृ0-169
2- राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973, पृ0-119

पिता की मृत्यु के पश्चात् कुसहर प्रसाद ने लाठी के बल पर अपने दोनों भाइयों को घर से बाहर निकाल दिया। कुसहर प्रसाद की लाठी में शक्ति थी और भाई शक्तिहीन थे, इसलिए उन्हें यह सफलता मिल गयी:

"छोटे पहलवान के पिता कुसहर प्रसाद अपने भाइयों के वाग्विलास को न समझ पाते थे। जैसा बताया गया, वे कम बोलने वाले कर्मशील आदमी थे। रह-रहकर चुपचाप किसी को मार बैठना उनके स्वाभाव की अपनी विशेषता थी, जो इन आदमियों के जीवन-दर्शन से मेल नहीं खाती थी। इसलिये अपने बाप गंगादयाल के मरने पर कुछ साल बाद वे अपने भाइयों से अलग हो गए; अर्थात बिना बोले हुए, लाठी के जोर से उन्होंने अपने भाइयों को घर से बाहर खदेड़ा। उन्हें एक बाग में झोपड़ी डालकर, वानप्रस्थ आश्रम में रहने के लिए ढकेल दिया और खुद अपने नौजवान लड़के के साथ अपने पैतृक घर में पूरी पैतृक परम्पराओं के साथ गृहस्थी चलाने लगे।"[1]

इसी प्रकार पुत्र और पिता में जब विचार मतैक्य समाप्त हो जाता है और खुलकर उसकी विरोधी शक्तियों का साथ देने लगता है तो पुत्र को उसके अधिकारों से बंचित किया ही जाता है। 'राग दरबारी' में शिवपाल गंज कस्बे में वैद्य जी और उनके छोटे पुत्र रूप्पन बाबू के बीच यही स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वैद्य जी कोऑप्रेटिव यूनियन और छंगामल विद्यालय इंटरमीडियट कॉलेज के मैनेजर थे। रूप्पन बाबू गत तीन वर्षो से हाईस्कूल की परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते रहे और अभी भी उसी कक्षा के छात्र हैं। प्रिंसिपल साहब वैद्य जी के व्यक्ति हैं, और खन्ना मास्टर प्रिंसिपल सहाब के विरोधी गुट के प्रमुख हैं। खन्ना मास्टर वाइस प्रिंसिपल बनना चाहते हैं। रूप्पन बाबू को प्रतीत होता है कि खन्ना मास्टर के साथ न्याय नहीं हो रहा, इसलिये वे खन्ना मास्टर का साथ देने के लिये वाध्य होते हैं। खन्ना मास्टर डिप्टीडाइरेक्टर के यहाँ शिकायत करते हैं। डिप्टीडाइरेक्टर का कॉलेज आना निश्चित होता है और एक तिथि निश्चित भी कर दी जाती है। रूप्पन बाबू आसपास के गाँवों का दौरा करके आते हैं। और खन्ना मास्टर तथा रंगनाथ को स्थिति से परिचित कराते हुए कहते हैं:

1- राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973, पृ0-120

"नहीं दादा, मुझे एक मिनट भी नहीं रुकना है। मैं तो सिर्फ इतना बताने आया था कि मैं आसपास के गाँवों में सब ठीक करा आया हूँ। इस कॉलिज की बाबत पूरे इलाके के लोग डटकर सच्ची बात कहेंगे। सारी जनता हमारे साथ है।"

"वे जोश में थे। कहते गये, 'पिताजी यही चाहते थे, तो सही हो ले। वह भी देख लें कि सच्चाई छिप नहीं सकती बनावट के उसूलों से"[1]

जाँच वाले दिन स्कूल में दो खेमे बनते हैं। एक ओर प्रिन्सिपल साहब के पक्ष का शामियाना लगा है जिसमें वैद्य जी के बड़े पुत्र बद्री पहलवान और उनके शिष्य हैं और दूसरी ओर के शामियाने में खन्ना मास्टर, उनके साथी और वैद्य जी के छोटे पुत्र रुप्पन बाबू हैं:

"डाक बंगले के दो छोरों पर, पेड़ों की छाँह से मिले हुए दो छोटे शामियाने लगा दिये थे। फर्श पर दरियाँ और कालीन बिछ गये थे। इन दोनों खेमों में एक प्रिन्सिपल साहब और उनके साथियों का था, दूसरा खन्ना मास्टर के गुट का। प्रिन्सिपल साहब के खेमे में इस वक्त उनके और बद्री पहलवान के अलावा लगभग साठ आदमी थे। उनमें छोटे पहलवान भी थे जो एक पेड़ के तने से सटे हुए, ललित त्रिभंगी मुद्रा में खड़े होकर डिप्टीडाइरेक्टर के आचरण पर अपनी राय जाहिर कर रहे थे। दूसरी ओर शामियाने में खन्ना मास्टर और रुप्पन बाबू, उनके साथ के कुछ मास्टर रामधीन भीखमखेड़वी के कुछ चेले-चपाटी थे।"[2]

डिप्टीडाइरेक्टर साहब संध्या तक नहीं आते। पता चलता है कि वे कहीं दौरे पर चले गये हैं और तीन-चार दिन तक नहीं आयेंगे। वैद्य जी एक संक्षिप्त भाषण देकर खन्ना जी और मालवीय जी से त्यागपत्र देने की बात करते हैं। रुप्पन बाबू खड़े होकर विरोध करते हैं। वैद्य जी रुप्पन को मूर्ख, नीच, पशु, पतित और विश्वासघाती आदि शब्दों से 'अलंकृत' करते हुए कहते हैं:

"आशा की थी कि वृद्धावस्था शान्ति से बीतेगी। गाँव-सभा का झगडा समाप्त कर चुका हूँ। सरकारी संघ था, वह बद्री को दे चुका हूँ। सोचा था, इस कॉलिज का भार तुझे

1- राग दरबारी, पृ0- 403
2- उपरवित्, पृ0- 411

देता जाऊँगा। देने के लिए इनके अतिरिक्त अब मेरे पास बचा ही क्या था? पर नीच तू विश्वासघाती निकला। जा, अब तुझे कुछ नहीं मिलेगा।''[1]

बात यहां तक समाप्त नहीं होती। उनका गला रूंध जाता है। क्रोध और कुण्ठा के कारण उनके नेत्रों में आँसू छलक आते हैं, किन्तु वे घोषणा करते हैं किः ''जा, तुझे मैं अपने उत्तराधिकार से बंचित करता हूँ। सब लोग सुन लें। मेरे बाद बद्री ही इस कॉलिज के मैनेजर होंगे। यही मेरा अंतिम निर्णय है। रूप्पन को कुछ नहीं मिलेगा।''[2]

स्त्री की भूमिका विघटन में कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हो किन्तु वह पुरूष के बिना अपनी पूर्णतः पर नहीं पहुँचती। हिमांशु जोशी के उपन्यास 'सु-राज' में गांगि' का ने परमानन्द पंडित की बात मानकर अंग्रेजी राज्य के विरूद्ध संघर्ष किया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् परमानन्द पंडित ने उनसे घर जाने के लिए कहा। घर पहुंचकर पता चला कि उनके बूढ़े माँ-बाप मर चुके हैं। लोगों ने उनसे विवाह करने के लिये कहा किन्तु उन्होंने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। दूर के रिश्ते की दिवंगता भाभी के तीन अनाथ बच्चों को अपने पास बुला लिया। उन्हें पढ़ाया-लिखाया बड़ा किया और उनके विवाह किये। बड़े आनन्द की मृत्यु हुई तो उसकी विधावा को अपने घर पर ही रखा। उनके इस त्याग का दोनों पुत्र पर कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। सबसे छोटे नन्दू पर तो तनिक भी नहीं उसकी पत्नी घर में झगड़ा करती तो वह अपनी पत्नी का ही समर्थन करता। बड़ी बहू के भाई ने कुछ कपड़े भिजवाये तो छोटी ने उनमें से अपना हिस्सा मांगा। गांगि' का को उसकी यह माँग अनुचित लगी फिर भी उन्होंने बड़ी बहू से छोटी को कपड़े देने के लिए कहा। बड़ी बहू ने कपड़ों की पोटली का को पकड़ा दी, उसके पश्चात् नन्दू गांगि' का व्यवहार पारिवारिक विघटन के बीच सिंचित करने वाला प्रतीत होता हैः

''गांगि 'का छोटी बहू की ओर कपड़े बढ़ा ही रहे थे कि नन्दू बाज की तरह झपटा, 'हम मंगते नहीं काका। भीख नहीं चाहिए हमें ....।''

1- राग-दरबारी, पृ0-419
2- उपरोक्त, पृ0-419

'क्या कहा -?'तनिक अचरज से गांगि' का ने चेहरे की ओर देखा, 'घर में भीख होती है पगले।'

''हाँ, हाँ होती है। होती है।' नन्दू ने गठरी हवा में उछालकर दूर कोने में फेंक दी।''[1]

काका के पीछे बँटवारा हो जाता है। बँटवारे में विधवा भाभी को कुछ नहीं दिया जाता। पिपलाटी जाते हुए काका गाँव आते हैं तो बड़ी बहू उन्हें मिलती है। वे बँटवारे के बारे में उससे बात करते हैं:

''सुना था कि नदिया ने तीन बराबर-बराबर भाग नहीं होने दिए। देवा ने कुछ कहा तो उस पर हाथ उठाया।' बूढ़े दाँतों से सूखी छाल जैसी सख्त रोटियाँ चबाते हुए गांगि' का ने पूछा।

परन्तु बड़ी बहू चुप रही। बोल कुछ भी न पाई।

'वे सब तो करने धरने वाले हैं- समरथ। रोटी का बंदोबस्त कैसे-न-कैसे कर ही लेंगे, पर बहू तेरा क्या होगा?' गांगि' का स्वर लड़खड़ा आया, 'इतनी लम्बी पहाड़ जैसी जिन्दगी पड़ी है, इसे तू कैसे गुजारेगी इन भूतों के बीच? ..... वहाँ से लिखाकर ही नहीं लाई मुला, तो यहाँ कोई क्या करे ....?'

बड़ी बहू ने आँचल का छोर आँखों पर रख लिया। 'तलाऊँ खेत भी तुम्हें नहीं

दिये होंगे ...... । खुमानी-सेब के पेड़ों में भी तुम्हारा हिस्सा नहीं किया होगा ....। हाँ तुम्हारे गहने-पत्ते तो तुम्हें दे दिए न?' 'ना।'बड़ी बहू सिसककर रो पड़ी।

'ऐसे हिरदयहीन खबीस निकलेंगे ये, ऐसा तो मैंने कभी सोचा भी न था।'' काका जैसे कराह उठे, 'दुनिया-भर में न्याय के लिए झगड़ता फिरता हूँ और मेरे अपने ही घर ऐसा अंधेर। काका की धुँधली, बुझी आँखों में रक्त छलक आया।

'माल-भाभर से उन्हें आने दे, मैं सारा बँटवारा फिर कराऊँगा। भाभी माँ के बराबर होती है इतने जने होकर एक तुझे नहीं पाल सकते?' गांगि' का से फिर रोटी निगली न

1- सु-राज, पृ0-13

गई। वैसे ही हाथ धोकर मुँह पोंछकर वह आग के पास बैठ गये।''[1]

काका पुनः गाँव आते हैं किन्तु नया बँटवारा कराना तो दूर उन्हें पता चलता कि बड़ी बहू के पास जो कुछ भी बचा था नन्दू ने वह सब छीन लिया। किसी ने उन्हें बताया:

''जो भी बचा-खुचा इसके पास था, नन्दू ने वह सब भी छीन-झपट लिया है। बड़ी बहू ने प्रतिरोध किया तो निठोर गाय हाँकने वाली लोद की लाठी से बेशुमार मारने लगा। लोग बीच-बचाव नहीं करते तो जाने क्या हो पड़ता। .... बड़ी बहू को दूसरों के खेतों में मेहनत-मजूरी करके भी एक बखत की रोटी नसीब नहीं हो पा रही है। कभी-कभी थोड़ी बहुत सहायता देवा न करता तो न जाने कब फाँसी लगा कर यह मर चुकी होती ......।[2]''

काका ने बड़ी बहू के लिए अपनी पेन्शन में से रूपये भिजवाये थे। वे भी उसे नहीं दिये गये। उन्हें भी नन्दू ने हड़प लिये। काका ने नन्दू को बुलाया:

''मेरे जीते जी नदिया, बहू इस तरह अनाथ हो गई तो मेरे मरने के बाद क्या नहीं होगा?' काका का स्वर भींग आया। आक्रोश भरी लड़खड़ाती आवाज में बोले, ''कहाँ तो दुखयारी को सबसे बड़ा भाग देते, कहाँ इसका हक ही तुम लोगों ने

गिद्धों की तरह झपट लिया है। अपने ही घर में ऐसा अनर्थ करके कहाँ जाओगे? .. .... किसी नरक में भी ठौर न मिलेगा।

इसके लिए पेशंन के कुछ रूपये भिजवाए थे, वे भी तुमने हड़प लिये।''[3]

''काका नन्दू से कहकर ही चुप नहीं रहते। वे देवा से भी कहते हैं।:

''अगर आज तुम्हारी माँ होती तो क्या उसे सड़क पर भीख माँगने के लिए छोड़ देते? यदि कल मेरे हाथ-पाँव न चल सकें तो क्या मेरी परवरिश नहीं करोगे? अगर तुम्हारी कोई बहन होती, अभागन विधवा हो जाती, तो क्या उसके साथ ऐसा कठोर व्यवहार करते? हमारा आनन्द आज जिन्दा होता और किसी पर ऐसी बीतती, न जाने

1- सु-राज, पृ0 30
2- वही, पृष्ठ-76
3- वही, पृ0-34

क्या-क्या नहीं कर डालता? अभागे ने खुद न पढ़कर तुम्हें पढ़ाया। दो आँख वाला बनाया और तुम लोगों ने इस अभागन की ऐसी दुरगत कर दी। यह दो-दो दिन तक भूखी रहे और तुम इसी के सामने बैठकर चौके में रोटी कैसे निगल लेते हो? सचमुच तुम राक्षस हो राक्षस .....।''[1]

वस्तुतः काका के त्याग और बलिदान का कोई प्रभाव नन्दू पर नहीं था। उसके सामने तो उसका व्यक्तिगत स्वार्थ था। देवा ने भी उनकी शिक्षा को हृदयंगम नहीं किया अन्यथा वह भी अपनी भाभी को साथ रखकर उसके भोजन की व्यवस्था कर सकता था। परिणाम यह हुआ कि भूख ने उनकी जिजीविषा को ही खा लिया और एक रात्रि को वह दुल्ल के पेड़ पर लटक कर फाँसी लगा लेती है। पारिवारिक विघटन में हृदय को कम्पित कर देने वाली यह घटना है।

घ-- पारिवारिक विघटन के अन्य घटक :

पारिवारिक के अन्य घटकों में वैयक्तिक मूल्यों के प्रति आकर्षण नियंत्रण का प्रभाव कम होना, पद और आर्थिक स्थिति में अन्तर होना आदि को माना जा सकता है। 'यह पथ बन्धु था' में श्रीमोहन और श्रीवल्लभ का वैयक्तिक स्वार्थ ही प्रमुख हो जाता है। श्रीधर अपनी बात से स्पष्ट कहता है कि घर का मालिक वही होता है जिसके पास ज्यादा पैसा होता है। श्रीनाथ ठाकुर नाम के ही घर के मालिक हैं, पैसा तो श्रीमोहन के पास हैः

''यही तुम भूलती हो माँ। जिसके पास पैसा होता है वही घर का मालिक होता है''[2]

श्रीनाथ ठाकुर अपने परिवार पर सही नियंत्रण भी नहीं रख सके। नियन्त्रण के अभाव में भी विघटन होता है। श्रीधर सोचता है किः

''रान्नीघर में इतनी रात बरतन मलती सरस्वती की विवशता भी वे बूझ-रहे थे तथा यह भी कि भाभी अपने कमरे में क्यों छप्पर पलंग पर बैठी दाल-चावल का हिसाब लिखती रहती है, और वे परेशानी का नाटक आये दिन करती रहती है। फिर भी न पति, न

1- सु-राज, पृ0-34-35
2- यह पथ बन्धु था, पृ0-44

सास, ससुर, किसी की हिम्मत क्यों नहीं पड़ती यह कहने की, कि अकेली सरस्वती सवेरे से देर रात तक खटती रहती है और तुम भी बहू हो, लेकिन चाबियों का गुच्छा हिलाये रहने के अलावा और क्या करती हो?''[1]

घर-परिवार के नियंत्रण के अभाव का मूल कारण आर्थिक विवशता है। स्वयं श्रीधर इस विवशता को समझता है:

''विवशता सम्भवतः आर्थिक है। चूँकि उन दोनों की आर्थिक स्थिति श्रीधर बाबू से कहीं अच्छी है इसलिए इस बात का प्रभाव इन दोनों की पत्नियों के व्यवहार में भी दिखलाई देता है। उनकी पत्नी को रोज सवेरे से साँझ तक इस बात का सामना करना पड़ता है लेकिन कभी-कभी माँ तक से भाभी अपमानजनक व्यवहार कर बैठती है। अजीब परिस्थिति है कि कोई कुछ विशेष नहीं कह पाता है।''[2]

आर्थिक कारणों से विघटन तो होता ही है। 'मछली मरी हुई' की मिसेज सान्याल अपने पति के बर्खास्त हो जाने पर उसे तलाक दे देती हैं। तलाक के लिए जो कारण प्रस्तुत किया जाता है, वह महत्वपूर्ण है। कोई भी कलाकार नारी किसी रिश्वत लेने वाले अफसर के साथ नहीं रह सकती।

''गोविन्द वल्लभ पंत की होम मिनेस्ट्री ने घूस लेने के अपराध में मिस्टर सान्याल को बर्खास्त कर दिया, मिसेज सान्याल भी अपने गहने-जेवर और तलाक के रूपये लेकर अपने पति से अलग हो गई। कोई भी ईमानदार आर्टिस्ट किसी भी घूसखोर अफसर के साथ नहीं रह सकती है ....''[3]

पुरूष के लिए नारी-सौन्दर्य का आकर्षण भी विशेष महत्वपूर्ण होता है। 'मछली मरी हुई' का मेहता शीरीं के रूप-लावण्य से प्रभावित होता है और जब उसे विवाह का आश्वासन मिल जाता है तो वह अपनी पहली पत्नी पर चरित्रहीनता का आरोप लगाता है और उसे तलाक दे देता है। नारी भी शक्तिशाली पुरूष को ही चाहती है। शीरीं को मेहता

1- यह पथ बन्धु था, पृ0-45
2- उपरोक्त, पृ0-84
3- मछली मरी हुई, पृ0-31

साहब से अधिक शक्तिशाली निर्मल पदमावत लगता है, इसलिए वह मेहता-हाउस को छोड़कर निर्मल पदमावत के फ्लैट में पहुँच जाती है। वह निर्मल पदमावत से स्पष्ट शब्दों में कहती है :

"मैं आ गई हूँ, क्योंकि मैं मेहता की तरह बुजदिल नहीं हूँ। मैं ताकतवर इंसान को प्यार करती हूँ, बुजदिल को कभी नहीं।"[1]

पारिवारिक विघटन के अन्य महत्वपूर्ण घटकों में शोषण तथा कलह महत्वपूर्ण हैं। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में इन दोनों घटकों को ही विघटन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। धनपाल अपने छोटे भाई बनवारी का शोषण करता है, उसे जान-बूझकर आवारा बनने देता है। बँटवारे के समय भी वह न्याय नहीं करता:

"धनपाल ने मनमाना बंटवारा कर दिया। बनवारी को जगह जायदाद की कुछ जानकारी नहीं थी; जिस ढंग से धनपाल ने बाँट दिया, बनवारी ने स्वीकार कर लिया। घर को आधा-आधा बाँटने के स्थान पर यह पंसद किया कि इस घर में धनपाल का खानदान रहे और पश्चिम टोले में धनपाल ने जो पट्टीदारी की मरी हुई विधवा का पुराना मकान तिकड़म से ले लिया है, उसमें बनवारी का परिवार जाये।"[2]

इसी उपन्यास में बंसी और अर्जुन का बँटवारा चित्रित है जिसका प्रमुख कारण कलह है। अर्जुन की पत्नी अलग होना चाहती है, इसलिए वह कलह करती है। अर्जुन भाई का बहुत सम्मान करता है किन्तु बंसी स्थिति को समझता है, इसलिए वह अर्जुन से अलग हो जाने के लिए कहता है:

"भाई मैंने घर का हाल देख लिया। यह बीमारी किसी के मान की नहीं। तुम मेरे बहुत प्यारे हो, और तुम मेरा बहुत आदर करते हो लेकिन देख रहा हूँ कि तुम्हारी यह औरत ईश्वर के भी मान की नहीं है। यह घर में आग ही लगाती जाएगी। इसलिए अच्छा हो इसी का मन पूरा किया जाए बँटवारा कर दिया जाए।"[3]

1- मछली मरी हुई, पृ0- 93
2- जल टूटता हुआ, पृ0 -69
3- उपर्युक्त, पृ0- 537- 538

आधुनिक युग के शिक्षित, और धनार्जन करने वाले पति-पत्नी के मध्य तनाव, बिछोह और फिर तलाक के पीछे मूल कारण दोनों के अहं का टकराव होता है। मन्नू भंडारी के उपन्यास 'आपका बंटी' में इसी समस्या का प्रस्तुतीकरण हुआ है। अजय और शकुन दोनों की यही सम्स्या है। शकुन एक सामान्य नारी की तरह अजय के समक्ष कभी आत्मसमपर्ण नहीं कर सकी। वकील चाचा ने एक बार उससे स्पष्ट शब्दों में कहा था:

"तुम जानती हो, अजय बहुत इगोइस्ट भी है और बहुत पजेसिव भी। अपने-आपको पूरी तरह सामाप्त करके ही तुम उसे पा सको तो पा सको, अपने को बचाये रखकर तो उसे खोना ही पड़ेगा।"[1]

शकुन के व्यवहार से अजय के मन में आक्रोश उत्पन्न होता था और वह उसके बहुत स्वतन्त्र होने तथा 'डामिनेटिंग' होने की शिकायत करता था।[2] पुरूष का ईगो पत्नी की अति स्वतन्त्रता और 'डामिनेटिंग' रूप को सहन नहीं कर सकता। यही कारण है कि समझौते का प्रयत्न भी सही दिशा में नहीं हो पाता था। एक-दूसरे को पराजित करने और झुकाने की आकांक्षा ही अधिक प्रबल रहती थी:

"शुरू के दिनों में ही एक गलत निर्णय ले डालने का एहसास दोनों के मन में बहुत साफ होकर उभर आया था, जिस पर हर दिन और हर घटना ने केवल सान ही चढ़ाई थीं समझौते का प्रयत्न भी दोनों में एक अण्डरस्टैन्डिंग पैदा करने की इच्छा से नहीं होता था वरन् एक-दूसरे को पराजित करके अपने अनुकूल बना लेने की आकांक्षा से। तर्कों और बहसों में दिन बीतते थे और ठंडी लाशों की तरह लेटे-लेटे दूसरे को दुखी, बैचैन और छटपटाते हुए देखने की आकांक्षा में रातें।"[3]

दोनों ही पक्ष एक-दूसरे के झुक जाने पर क्षमा करके अपने आपको महत्वपूर्ण बनाकर समझौता करना चाहते थे। दोनों पक्षों में से किसी ने भी कोई मध्यम मार्ग अपनाने का प्रयास भी नहीं किया। दोनों पक्ष इस प्रतीक्षा में रहते थे कि कब सामने वाले की

1- आपका बंटी, राधा कृष्ण प्रकाशन, 1997, पृ0-110
2- उपर्युक्त, पृ0-107
3- उपर्युक्त, पृ0- 35

संघर्ष-शक्ति चुक जाये और वह अपनी पराजय स्वीकार कर ले। उसके पश्चात् उसे क्षमादान किया जाये:

"भीतर ही भीतर चलने वाली एक अजीब ही लड़ाई थी वह भी, जिसमें दम साधकर दोनों ने हर दिन प्रतीक्षा की थी कि कब सामने वाले की साँस उखड़ जाती है और वह घुटने टेक देता है, जिससे कि फिर वह बड़ी उदारता और क्षमाशीलता के साथ उसके सारे गुनाह माफ करके उसे स्वीकार कर ले, उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को निरे एक शून्य में बदलकर।"[1]

जब एक पक्ष दूसरे पक्ष के किसी भी कार्य को केवल एक दाँव समझता है, तब समझौते की सारी संभावनाएं समाप्त हो जाती हैं, यहाँ तक कि प्रेम की अभिव्यक्ति को भी पराजित करने का दाँव माना जाने लगे तो फिर ऐसा ईगो विछोह के अतिरिक्त कोई मार्ग छोड़ता ही नहीं। सामान्यतः संतान पति-पत्नी के मध्य सेतु बन जाती है किन्तु ऐसी परिस्थितियों में वह भी सेतु का कार्य नहीं कर सकती। अजय और शकुन के बीच ऐसा ही कुछ हुआ जिसके कारण बंटी सेतु नहीं बन सका:

"और इस स्थिति को लाने के लिए सभी तरह के दाँव-पेंच खेले गये थे- कभी कोमलता के, कभी कठोरता के। कभी लुटा देने वाली उदारता के, तो कभी कुछ समेट लेने की कृपणता के। प्रेम के नाटक भी हुए थे और तन-मन को डूबो देने वाले विभोर क्षणों के अभिनय भी। पता नहीं, उन क्षणों में कभी भावुकता, आवेश या उत्तेजना रही भी हो, पर शायद उन दोनों के ही दयालु मनों ने कभी उन्हें उस रूप में ग्रहण ही नहीं किया। दोनों ही एक दूसरे की हर बात, हर व्यवहार और हर अदा को एक नया दाँव समझने को मजबूर थे और इस मजबूरी ने दोनों के बीच की दूरी को इतना बढ़ाया कि फिर बंटी भी उस खाई को पाटने के लिए सेतू नहीं बन सका, नहीं बना।"[2]

शकुन ने भी अलग रहने के प्रस्ताव को इसलिए स्वीकार किया कि उसे उसमें भी उसे संभावनाएं दिखीं कि सम्भवतः अलग होकर ही अजय को आभास हो कि उसने कुछ

1- आपका बंटी, राधा कृष्ण प्रकाशन, 1997, पृ0-36
2 आपका बंटी, पृ0-36

खो दिया है। अलग होने के संन्यास को भी वह उन्हीं सम्भावनाओं के कारण झेलती रही:

"साथ रहने की यन्त्रणा भी बड़ी विकट थी और अलगाव का त्रास भी। अलग रहकर भी वह भी वह ठंडा युद्ध कुछ समय तक जारी ही नहीं रहा बल्कि अनजाने ही अपनी जीत की सम्भावनाओं को एक नया सम्बल मिल गया था कि अलग रहकर ही शायद सही तरीके से महसूस होगा कि सामने वाले को खोकर क्या कुछ अमूल्य खो दिया है। और वकील चाचा की हर खबर, हर बात इन सम्भावनाओं को बनाती-बिगाड़ती रही थी।"[1]

अजय शकुन से तटस्थ होकर अपना नया जीवन आरम्भ करता है। उसके जीवन में मीरा का प्रवेश होता है। अजय के साथ मीरा के सम्बन्धों की सूचना शकुन को मिलती है तो वह तिलमिला जाती है क्योंकि अभी तक उसके मन में सम्भावनाएं थीं, वह अजय से तटस्थ होकर अपना नया जीवन आरम्भ नहीं कर पाई थी। पहली बार उसके मन में अकेलेपन का तीखा और कटु भाव जागता है:

"अजय के किसी के साथ सम्बन्ध बढ़ने की सूचना और फिर उसके साथ सैटल हो जाने की सूचना ने उसे कितना तिलमिला दिया था। अकेले रहने के बावजूद तब एक बार फिर नये सिरे से अकेलेपन का भाव जागा था, बहुत तीखा और कटु होकर। अपमान की भावना ने उस दंश को बहुत ज्यादा बढ़ा दिया था।"[2]

वकील चाचा तलाक के कागजों पर शकुन से हस्ताक्षर कराने आते हैं क्योंकि मीरा को गर्भ ठहर गया हैं। शकुन को दंश यही है कि वह अजय को हरा न पाई और किसी अन्य ने अजय से वह सब कुछ प्राप्त कर लिया जो उसका प्राप्य था:

"नहीं अजय से कुछ न पा सकने का दंश यह नहीं है बल्कि दंश शायद इस बात का है कि वह सब कुछ तोड़-तोड़कर निकलती और अजय उसके लिए दुखी होता, छटपटाता। साथ नहीं, नहीं रह सकते थे, इसलिए साथ नहीं रह रहे हैं, स्थिति तब वैसी ही रहती, पर फिर भी कितना कुछ बदल गया होता। यदि अजय के साथ मीरा न होती बल्कि उसके

1- आपका बंटी, पृ0-36
2- उपर्युक्त, पृ0-35

अपने साथ कोई होता......... सच पूछा जाये तो अजय के साथ न रह पाने का दंश नहीं है यह, वरन् अजय को हरा न पाने की चुभन है, यह जो उसे उठते-बैठते सालती रहती है।''[1]

वकील चाचा कहते हैं कि अब कोई 'उम्मीद' शेष नहीं रह गयी किन्तु शकुन का 'ईगो' कितना भी प्रबल रहा हो, वह अजय को पराजित करने की आकांक्षा मन में लिये रही हो। किन्तु उसे उम्मीद तो कभी नहीं थी। उसने हर तरह से विचार करके देख लिया है और सदैव उसका निष्कर्ष यही रहा है। कि दोनों एक-दूसरे से कभी प्रेम करते ही नहीं थे:

''फिर से साथ रहने की चाहत उसके मन में नहीं थी। उसने कई बार अपने और अजय के सम्बन्धों के रेशे-रेशे उधेड़े हैं-

सारी स्थिति में बहुत लिप्त होकर भी और सारी स्थिति में बहुत तटस्थ होकर भी, पर निष्कर्ष हमेशा एक ही निकला है कि दोनों ने एक-दूसरे को कभी प्यार किया ही नहीं।''[2]

शकुन के 'ईगो'- ने अजय से उसे दूर ही नहीं किया अपितु उसे पराजित भी किया। उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व और पति पर हावी रहने की कामना ही उसे पराजित कर गयी। अजय तो उस स्थिति से तटस्थ होकर मुक्त हो गया किन्तु वह उसी स्थिति में बनी रही क्योंकि उसने जो कुछ सोचा वह सब अजय की पराजय के लिए, अपने नये जीवन के लिए नहीं:

''सामने वाले को पराजित करने के लिए जैसा सायास और सन्नद्ध जीवन उसे जीना पड़ा उसने उसे खुद ही पराजित कर दिया। सामने वाला व्यक्ति तो पता नहीं कब परिदृश्य से हट भी गया और वह आज तक उसी मुद्रा में, उसी स्थिति में खड़ी है - साँस रोकें, दम साधें, घुटी-घुटी और कृत्रिम।''[3]

अलग होने से पूर्व वकील चाचा ने शकुन को समझाया था कि एडजस्ट करने के लिए कुछ तो अपने को मारना ही पड़ता है। और शकुन ने उनकी बात नहीं मानी तो उन्होंने सम्बन्ध को ही खत्म कर देने का परामर्श दिया था:

1- आपका बंटी, -37
2- उपरिवत्, पृ-35
3- उपरिवत्, पृ-36

"दो जने साथ रहते हैं तो एडजस्ट तो करना ही पड़ता है शकुन, अपने को कुछ तो मारना ही पड़ता है, और जब उनकेसारे हथियार चुक गये थे तो बड़े हताश स्वर में बोले थे, 'यदि ऐसा ही है तो फिर अच्छा हो कि तुम दोनों अलग हो जाओ। सम्बन्ध को निभाने की खातिर अपने को खत्म कर देने से अच्छा कि सम्बन्ध को खत्म कर दो।"

शकुन ने अपने को झुकाने अथवा मारने के स्थान पर सम्बन्ध को ही समाप्त करना उचित माना। इसी प्रकार तलाक के कागजों पर हस्ताक्षर करने में भी उसने कोई आनाकानी नहीं की किन्तु वकील चाचा के जाने के पश्चात् वह सोचती है किः

"कुछ नहीं, वे केवल हस्ताक्षर करवाने आये थे ...... कहीं वह अड़ ही जाती तो अजय के लिए एक संकट पैदा हो सकता था। 'मीरा इज एक्सपेक्टिंग' चाचा के शब्द उभरे। तो इसीलिए यह सारा जाल रचा गया था। यह बात तो अजय भी लिख सकता था, पर शायद इसीलिए चाचा को भेजा गया कि कोई रास्ता बाकी न रह जाये शकुन के बच निकलने के लिए। तारीख भी जल्दी ही डलवानी है, बच्चा होने से पहले रास्ता साफ कर ही लेना है।

"वह फिर छली गयी, वह फिर बेवकूफ बनायी गई। उसका रोम-रोम जैसे सुलगने लगा।"[1]

शकुन के इस आक्रोश और अजय को पराजित करने, उससे बदला लेने और यातना देने की भावना का परिणाम यह होता है कि वह अपने पुत्र बंटी को ही अजय बना लेती है। अलग होने के साथ ही उसने बंटी को बहुत अधिक लाड़-प्यार दिया जिसके पीछे उसके मन में कहीं यह भाव था कि बंटी उसके और अजय के बीच सेतु बन सकता है। यही कारण है कि वह बंटी को ऐसी कहानियाँ सुनाती है जिसमें या तो बेटा अपनी माँ के लिए सात समुद्र पार करके अपनी निष्ठा को प्रमाणित करता है अथवा ऐसी कहानी जिसमें सोनल रानी रूप बदलकर अपने ही पुत्रों को खा जाती है। सोनल रानी का पुत्रों को खा जाने के पीछे का निष्कर्ष भी बंटी को अपने पक्ष में करने का ही है। राजा को अपने पुत्रों की मृत्यु का ज्ञान क्यों नहीं होता रहा, इस प्रश्न के उत्तर में शकुन जो कुछ कहती है, वह हमारे कथन की पुष्टि करता हैः

1- आपका बंटी, पृ0-43-44

"हाँ होता है ऐसा। पापा कोई ऐसा-वैसा आदमी था? राजा था। उसके पास राज्य के बहुत सारे काम थे .... बच्चों का ख्याल ही नहीं रहा। पापा लोग ऐसे ही होते हैं। उन्हें बच्चों का खयाल कभी रहता ही नहीं। यह तो माँ ही होती है जो ...."[1]

वकील चाचा शकुन को हर प्रकार से समझाते हैं कि वह बंटी को अब हॉस्टल भेज दे। सर्वप्रथम वे सामान्य तर्क प्रस्तुत करते हैं कि शकुन के घर में रहते हुए बंटी का व्यक्तित्व पुरूषोचित रूप में विकसित नहीं हो पायेगा :

"तुम भी जानती हो मैं बहुत साफ और दो टूक बात कहने वाला आदमी हूँ। जरा सोचो, स्कूल के अलावा बंटी सारे दिन तुम्हारे साथ रहता है या तुम्हारी उस फूफी के साथ। तुम्हारे यहाँ अधिकतर महिलायें ही आती होंगी। यानी इसकी क्या कम्पनी है। बहुत हुआ पड़ोस के एक - दो बच्चों के साथ खेल लिया। पर एक आठ-नौ साल के ग्रोइंग बच्चे के लिए तो कोई बात नहीं हुई न। ही शुड ग्रो लाइक ए बॉय, लाइक ए मैन।"[2]

शकुन वकील चाचा के प्रश्नों का एक ही उत्तर देती है। कि वह यदि बंटी को हॉस्टल भेज देती तो वह अकेली रह जायेगी। वकील चाचा उससे स्पष्ट कहते है :

"मुझे डर है शकुन, कहीं तुम अपना अकेलापन खत्म करने के चक्कर में बंटी का भविष्य ही न खत्म कर दो। तुम्हारा यह अतिरिक्त स्नेह उसे बौना ही न छोड़ दे।"।[3]

"वकील चाचा शकुन के समक्ष भयावह भविष्य प्रस्तुत करते हैं। आठ-नौ वर्ष के पश्चात् बंटी युवक होगा। उसकी असंख्यों इच्छाएं होंगी? महत्वाकांक्षाएं होंगी; उस समय बंटी के समक्ष उसका अस्तित्व कितना होगा? वे उस स्थिति के संकट को शकुन के सामने प्रस्तुत करते है :

"और इस स्थिति की दो ही परिणितियाँ हो सकती हैं .... होंगी। या तो तुम उसके स्वतन्त्र अस्तित्व को समाप्त करके उस पर हावी होने की कोशिश करोगी और या फिर अपने को बहुत ही उपेक्षित और अपमानित महसूस करोगी। उस समय तुम्हें यही लगेगा

1-आपका बंटी, पृ0-19
2-उपरोक्त, पृ0-38-39
3-उपरोक्त, पृ0-40

कि जिसके पीछे तुमने अपनी सारी जिन्दगी बरबाद की, वह अब तुम्हें ही भूलकर अपनी जिन्दगी जीने की बात सोच रहा है। उस समय तुम्हें बुरा लगेगा। आज अजय को लेकर तुम्हारे मन में जो कटुता है, हो सकता है कि वही फिर बंटी को लेकर हो....... और आज से दस गुना ज्यादा हो.....''[1]

भारतीय नारियों द्वारा अपने पुत्रों को अधिक ममता देने और उनका अधिक ध्यान रखने को वकील चाचा अच्छा नहीं मानते। वे शकुन को एक अमरीकन के उस कथन की स्मृति कराते हैं जिसने कहा था कि भारतीय माँ-बाप प्यार के नाम पर बच्चे पर अपने को थोपे रहते हैं :

''इस सिलसिले में मुझे एक अमरीकन की बात याद आती है। वह कुछ महीनों यहाँ रहा था और देखने-सुनने के बाद बोला था कि हिन्दुस्तानी लोग बच्चों से प्रेम नहीं करते, उन्हें मोह होता है, अन्धा मोह। सच कहता हूँ तब मुझे बड़ा ताव आ गया था उस पर, पर बाद में सोचा, ठीक ही कहता था। एक आम हिन्दुस्तानी, बच्चे की सही ढंग से परवरिश करना जानता ही नहीं। प्यार और देखभाल के नाम पर माँ-बाप ही अपने को इतना थोपे रहते हैं बच्चे पर कि कभी वह पूरी तरह पनप नहीं पाता।''[2]

शकुन पर वकील चाचा के किसी भी सुझाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि वह बंटी को बंटी के रूप में नहीं देख पाती अपितु उसे वह अजय को यातना देने वाले अस्त्र के रूप में देखती है और इससे उसे एक संतोष मिलता है चाहे उसमें क्रूरता ही क्यों न हो -

''वे बंटी को हॉस्टल भेजना चाहते हैं, शायद उसे भी धीरे-धीरे कब्जे में कर लेना चाहते हैं, पर वह बंटी को कभी भी हॉस्टल नहीं भेजेगी। वह जानती है, अजय बंटी को बहुत प्यार करता है, पर अब से वह बंटी को मिलने भी नहीं देगी। बंटी से न मिल पाने की वजह से अजय को जो यातना होगी, उसकी कल्पना मात्र से उसे एक क्रूर-सा सन्तोष मिलने लगा।''[3]

1- आपका बंटी, पृ0-41
2- उपर्युक्त, पृ0-43
3- उपर्युक्त, पृ0-44

वकील चाचा ने तलाक के कागजों पर हस्ताक्षर कराने के पश्चात् शकुन को दो सुझाव दिये थे : (i) बंटी को हॉस्टल भेज देना चाहिए और (ii)शकुन को अपना जीवन नये सिरे से आरम्भ करना चाहिए और किसी अच्छे पुरूष को ढूँढ़कर उससे विवाह कर लेना चाहिए। प्रथम सुझाव तो उसने अस्वीकार कर दिया किन्तु दूसरे सुझाव पर उसने तुरन्त ही सोचना प्रारम्भ कर दिया। यही स्वार्थ की चरम परिणति है जिसने बंटी को असामान्य बालक बना दिया। वह डॉक्टर जोशी जिन्होंने उसे अपने जीवन में प्रवेश करने का संकेत दिया था, के बारे में सोचने लगी। इस चिन्तन में भी अजय और मीरा से तुलना अनायास आ जाती है। कहा जाता है कि अभी भी अजय का भूत उतरा नहीं:

"चेहरा उभरने के साथ ही पहली बात मन में आई - अजय के मुकाबले में जोशी कैसे हैं? और दूसरी बात आई - मीरा के मुकाबले में कैसे हैं? मीरा को उसने नहीं देखा। बस सुना है उसके बारें में अनेक काल्पनिक चेहरे भी उभरे हैं मन में। पहले वह बहुत स्वाभाविक भी थी। पर जोशी और मीरा के मुकाबले की क्या तुक भला? फिर भी मन है कि बार-बार कुछ तौल-परख रहा है, उसे याद है, पहले भी जब-तब उसने जोशी के बारे में कुछ सोचा था, अनजाने और अनचाहे ही हमेशा अजय आकर उपस्थित हो गया था.......... केवल अजय ही नहीं, कहीं मीरा भी आकर उपस्थित हो जाती थी। उसे साथ लगता था कि जोशी या किसी का भी चुनाव उसे करना है, तो जैसे अपने लिये नहीं करना है। पर जब-जब यह भावना उठी असने स्वयं अपने को बहुत धिक्कारा, अपनी भर्त्सना की। क्यों नहीं वह अपने लिऐ जीती है, अपने को लक्ष्य बनाकर जी पाती।"[1]

शकुन बंटी की असामान्यता को देखती है किन्तु उसे केवल अपने लाड़-प्यार से भरना चाहती है। बंटी दूध-दलिया की कटोरी को उछाल देता है। दूध-दलिया कमरे में बिखर जाता है। शकुन बंटी पर तो अपने मन का स्नेह उँडेलती है और फूफी से कहती है कि कल जब बंटी ने दूध-दलिया को मना कर दिया था तो आज उसके लिए कुछ और बनाना था। फूफी चेतावनी देती है:

1- आपका बंटी, पृ0-45

"मत इतना सिर चढ़ाओ बहू जी, हम अभी से कह देते हैं, नहीं फिर आप ही दुखी होंगी।"[1]

राजकुमारों ने अपनी माँ को प्रसन्न करने के लिए कितने कष्ट झेले थे, कहानी का ये अंश बंटी के बालक मन पर छाया रहता है, इसलिए वह पापा के दिये सारे सामान को ही नहीं अपितु पापा के फोटो को छिपा देता है। शकुन यह सब देखकर बंटी को प्यार करती है और हल्के से मुस्कराती है:

"मम्मी ने खाली रेक देखा और बंटी को देखने लगी। एक टक। वह नीचीं नजरें झुकाये खड़ा रहा। पता नहीं कहीं नाराज ही न हो जायें। पर मम्मी ने उसे पकड़कर अपने पास खींच लिया। फिर प्यार किया। बहुत हल्के मुस्कराई भी, शायद उसकी समझदारी पर।"[2]

बंटी को अपनी मम्मी और उसके बीच आने वाला कोई भी व्यक्ति अच्छा नहीं लगता। डॉक्टर जोशी के आने पर वह मम्मी के पास जाता है और बार-बार अपनी पुस्तकों पर कवर चढ़ाने की बात कहता है। मम्मी के रोकने पर भी वह उसका हाथ पकड़ कर खींचता रहता है। डॉक्टर साहब के चले जाने पर ब्राउन पेपर का अभाव देखकर तो उसे रोने का एक और सहारा मिल जाता है। वह कहता है:

"तुम्हें मेरी बिल्कुल परवाह नहीं रह गयी है। मत करो मेरा कोई भी काम। बस, डॉक्टर साहब के पास बैठकर चाय पियो। तुम्हारा क्या है, सजा तो मुझे मिलेगी। मैं अब स्कूल ही नहीं जाऊँगा, कभी नहीं जाऊँगा, कभी भी ......' और बंटी फूट-फूटकर रोने लगा।"[3]

शकुन बंटी के इस असामान्य व्यवहार पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं कर पाती। वह चुप बैठी रहती है। उसका चुप बैठे रहना ही बंटी पर उल्टा प्रभाव डालता है:

"बंटी रोता रहा, फूफी समझाती रही, और मम्मी चुप-चुप ममी बैठी दोनों को देखती

1- आपका बंटी, पृ0 - 62
2- उपरोक्त, पृ0 - 69
3- उपरोक्त, पृ0 - 87

रही। मम्मी समझा भी सकती थी, पर समझाया नहीं। डाट भी सकती थी पर डांटा भी नहीं। और मम्मी का यों चुप-चुप बैठना ही बंटी को और रूला रहा था।''[1]

शकुन और डॉक्टर एक-दूसरे के बच्चों को मिलाने का कार्यक्रम बनाते हैं। शकुन बंटी से घूमने की बात कहती है। बंटी प्रसन्न होता है। किन्तु डॉक्टर साहब को और फिर उनके बच्चों को देखकर उसकी प्रसन्नता समाप्त हो जाती है। उसने तो कल्पना की थी कि वह और मम्मी ही बस घूमेंगे। कम्पनी बाग में जाकर वह डॉक्टर साहब के बच्चों के साथ नहीं खेलता अपितु बार-बार डॉक्टर साहब के पास बैठी अपनी मम्मी के पास लौट आता है। डॉक्टर साहब शकुन से कहते भी हैं कि, ''इट सीम्स, ही हसबैंड्स यू टू मच।''[2]

डॉक्टर साहब अपने पुत्र और पुत्री के साथ दोपहर के भोजन पर शकुन के यहाँ आते हैं। बंटी को इससे प्रसन्नता नहीं होती। अभि बंटी के खिलौने लेकर खेल रहा है। बंटी उससे खिलौने छीनेने लगता है। शकुन उसे रोकती है, लेकिन वह शकुन के हाथ से छिटककर अभि पर पिल पड़ता है। शकुन उसके गाल पर एक चपत मार देती है। उसके नेत्रों से चिनगारियां निकलने लगमती है। डॉक्टर साहब उसे सांत्वना देने का प्रयास करते हैं और वह छिटककर अलग जा खड़ा होता है। उसके पश्चात् का व्यवहार उसकी असमान्यता का परिचालक है:

'' एक क्षण को सारे कमरे में सन्नाटा छा गया। जो जहाँ था वह जैसे वहीं जम गया। और फिर बंटी ने उठाकर खिलौने फेंकने शुरू किये ...... धड़ाघड़ एक-एक खिलौने कमरे में छितरा गया। किसी ने उसे रोका नहीं, किसी ने उसे कुछ कहा नहीं।

''फिर उसने अपनी बन्दूक उठाई और उसी गुस्से में दौड़ता हुआ बाहर आ गया कुछ नहीं, पेड़ पर खूब-खूब ऊँचे चढ़कर बन्दूक चलायेगा। आकर मना तो करें मम्मी मारने वाली मम्मी की बात सुनेगा अब वह? कभी नहीं सुनेगा। ठाँय-ठाँय बन्दूक की आवाज गूँजती रही। पर भीतर से कोई नहीं आया।''[3]

1- आपका बंटी, पृ0-89
2- वही, पृ0-92
3- वही, पृ0-98

शकुन अब पहली बार बंटी को लेकर चिन्तित होती है और उसे वकील चाचा तथा डॉक्टर साहब के शब्द याद आते हैं। उसने अपना सारा ध्यान बंटी पर केन्द्रित करके गलत मार्ग चुना था। वह सोचती है:

"गर्मियों की छुट्टियों के दो महीने .... दो महीने की खिन्नता और उन के साथ-साथ बंटी का उन दिनों का व्यवहार। उम्र से पहले ही ओढ़ी हुई उसकी समझदारी को कितनी तकलीफ के साथ झेल पाती थी वह। शकुन के हर दुःख को अपना दुःख और उसकी हर कही-अनकही इच्छा को एक आदेश-सा बना लेने की बंटी की मजबूरी ने शकुन को अपनी ही नजरों में अपराधी बनाकर छोड़ दिया था। दिन में दो-चार बार पापा की बात करने वाले बच्चे ने कैसे इस शब्द को काटकर फेंक दिया था .... शब्द को ही नहीं, अजय के भेजे खिलौने, उसकी तस्वीर तक को अलमारी में बन्द कर दिया था। बिना शकुन के चाहे या कहे भी वह उसे प्रसन्न करने का हर भरसक प्रयत्न करता रहा था और शकुन का कष्ट बढ़ते-बढ़ते असहाय-सा हो गया था ......"[1]

शकुन ने डॉक्टर जोशी के साथ विवाह करने के निर्णय में बंटी को भी इसलिए साथ रखने का निर्णय लिया कि इससे बंटी को पिता भी मिल जायेगा और दो बच्चों के साथ रहने से वह नार्मल हो जायेगा। डॉक्टर साहब ने माँ-बेटे के चूमने-चाटने पर आपत्ति की तो उसने अपने व्यवहार में भी परिवर्तन किया था:

"तब से उसने बंटी को अपने से अलग सुलाना शुरू किया था। धीरे-धीरे वह आश्वस्त होने लगी थी कि उसने केवल अपने लिए ही नहीं, बंटी के लिए भी एक सही जिन्दगी की शुरूआत कर दी है। अब बंटी को हर जगह और हर बात में पापा की कमी नहीं अखरेगी .... .. व्यक्ति चाहे बदल जाए पर उस स्थान की पूर्ति तो हो ही जायेगी। अब वह उतना अकेला नहीं रहेगा। दो बच्चों का साथ उसे और अधिक नॉर्मल बनाएगा। ही बिल ग्रो लाइक ऐ बॉय, लाइक ए मैन।"[2]

बंटी के व्यवहार को याद करके वह निर्णय लेती है कि "बंटी उसके और अजय के बीच

1- आपका बंटी, पृ0 - 103
2- उपर्युक्त, पृ0 - 104

सेतु नहीं बन सका तो वह उसे अपने और डॉक्टर के बीच में बाधा भी नहीं बनने देगी।''[1] उसका यह निर्णय ही यह स्थिति उत्पन्न करता है कि बंटी को अपने पिता के साथ जाना पड़ता है। वह बंटी को अब भी एक अस्त्र के रूप में ही प्रयुक्त करना चाहती है। यदि वह दरार ही बने तो फिर अजय और मीरा के बीच क्यों न बनें?

''बंटी को दरार ही बनना है तो मीरा और अजय के बीच में बने। अजय भी तो जाने कि बच्चे को लेकर किस तरह की यातना से गुजरना होता है .... कि पुरानी स्लेट इतनी जल्दी और इतनी आसानी से साफ नहीं होती।''[2]

डॉक्टर साहब बंटी की समस्या के सम्बन्ध में शकुन को समझाते हैं कि वह 'प्रॉब्लम बच्चा' है, वह केवल अपनी माँ के साथ रहते-रहते पजेसिब हो गया है, इसलिए और किसी को वह उसके साथ नहीं देख सकता। डॉक्टर साहब शकुन को समझाते हैं:

''तुम्हें बहुत धीरज से काम लेना चाहिए। जानती हो इस तरह बच्चों के साथ सख्ती करने से वे एकदम चुप्पे हो जाएंगे, बहुत ही सबमिसिव और सहमे हुए और नरमाई से पेश आने से वे उद्दंड हो जाएंगे।''[3]

शकुन को संतुलन रखने की शिक्षा डॉक्टर साहब देते हैं। किन्तु शकुन संतुलन नहीं रख पाती। शकुन की फूफी को उसका विवाह करना अच्छा नहीं लगता। क्योंकि वह बंटी को केन्द्र में रखकर देख रही है। वह बड़े स्पष्ट शब्दों में उत्तर देती हैं:

''जवानी यों ही अन्धी होती है बहू जी, फिर बुढ़ापे में उठी हुई जवानी महासत्यानाशी। साहब ने जो किया तो आपकी मट्टी पलीत हुई और अब जो कर रहीं हैं, इस बच्चे की मट्टी-पलीत होगी। चेहरा देखा है बच्चे का? कैसा निकल आया है, जैसे रात-दिन घुलता रहता हो भीतर ही भीतर।''[4]

बंटी, जोशी नहीं बन सकता, वह अरूप बत्रा है और अरूप बत्रा ही रहना चाहता है। घर में पहुँचकर बंटी स्कूल से आने पर कपड़े बदलवाने के लिए भी प्रतीक्षा करता है और

1- आपका बंटी, पृ0-108
2- उपरोक्त, पृ0-109
3- उपरोक्त, पृ0-110
4- आपका बंटी, पृ0 -116

शकुन से कहने पर ही वह कपड़े बदलवाती है। पहली बार उसे मम्मी से अलग कमरे में सोना पड़ता है। नींद उसे आती नहीं और भय बढ़ता जाता है। वह मम्मी का दरवाजा खटखटाता है। डॉक्टर उठ कर कपड़े पहनते हैं तो डॉक्टर का नंगापन उसके सामने आ जाता है। उसके पश्चात् कपड़े बदलते में मम्मी का नंगा रूप भी वह देख लेता है। स्कूल में पढ़ने में उसका मन नहीं लगता है। रात को वह विस्तर पर पेशाब कर देता है। वह मम्मी की सेंट की शीशी को जादुई शीशी समझकर उसे बाहर ले जाकर उलट देता है और खाली शीशी वहीं रख देता है। वह डॉ जोशी को पापा कहने से इंकार कर देता है। डॉक्टर साहब की अल्मारी उसे दे दी जाती है जिसमें से दवाइयों की बू आती है, वह उसे अपने लिए प्रयोग करने से इंकार कर देता है। बंटी ने अपनी पुस्तकें अभि की मेज पर सजा दी, अभि ने उसकी पुस्तकें फेंक दी तो बंटी ने अभि की पुस्तकें फेंकना आरम्भ कर दिया। दोनों में घूँसे-मुक्के चले। बंटी ने दो थप्पड़ जड़ दिये। तो अभि ने बंटी की बाँह पर काट लिया।

बंटी का पढ़ने में मन नहीं लगता। वह मम्मी से बदला लेना चाहता है, अपने पापा को पत्र लिखने का प्रयास करता है। उसके लिए नई मेज बनकर आती है, वह उस मेज का प्रयोग नहीं करता। डॉक्टर साहब उसे लम्बी ड्राइव पर ले जाने की बात करते हैं किन्तु ले जा नहीं पाते। वह अपने आपको बिल्कुल फालतू समझने लगता है। वह अपने पुराने घर चला जाता है। संध्या तक वहीं रहता है। उसके पापा आते हैं और उससे पूछते है कि वह उनके साथ कलकत्ता चलेगा? वह उत्तर देता है कि अवश्य चलेगा, यहाँ नहीं रहेगा। जाते समय वह मम्मी के लाये हुए सारे पैकिट निकालकर अलग रख देता है।

बंटी के जाने के पश्चात् शकुन को ऐसा प्रतीत होता है कि बंटी उसके जीवन का अभिन्न अंश है। उसके चले जाने का दुःख भी उसका अपना है और उसे भेजकर उसने कोई गलती की है तो वह भी उसकी अपनी है। वह आगे सोचती है:

"अहं और गुस्से से भरे-भरे, शकुन की लाई हुई चीजों को बिना देखे, बिना छुए एक ओर सरका देने, उमड़ते आँसुओं को भीतर ही भीतर रोककर सूखी आँखों से मोटर में बैठकर विदा हो जाने की व्यथा बंटी से कहीं ज्यादा शकुन की अपनी व्यथा है, और ऐसी व्यथा जिसे कोई बँटा नहीं सकता .... आज भी नहीं, आगे भी नहीं।"[1]

1- आपका बंटी, पृ0 - 168

उसकी समझ में आता है कि वे बंटी को मात्र एक साधन समझते रहे। बंटी के सन्दर्भ में तो कभी सोचा ही नहीं-

"सच, हम लोग शायद बंटी को मात्र एक साधन समझते रहे। अपने-अपने अह, अपनी-अपनी महत्वाकांक्षाओं और अपनी-अपनी कुंठाओं के सन्दर्भ में ही सोचते रहे। बंटी के सन्दर्भ में कभी सोचा ही नहीं।"[1]

कलकत्ता पहुँचकर भी बंटी सामान्य नहीं हो पाता। अजय उसे हॉस्टल में दाखिल कराने ले जाता है।

वस्तुतः यह पारिवारिक विघटन पूर्णतः आधुनिक है और इसकी समस्या है- ईगो और महत्वाकांक्षा। पहले पति-पत्नी अलग होते हैं और फिर माँ-बेटा। पुत्र के बारे में सोचा जाता तो यह समस्या उत्पन्न ही नहीं होती। आधुनिक युग की ज्वलंत समस्या है- असामान्य बच्चा (एब्नार्मल चाइल्ड) जिसकी जिम्मेदरी जाती है- माँ - बाप पर।

सुशिक्षित नारी का अहं ही उसे प्रभावित करता है। निरूपमा सेवती के उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें' में सुनीला अपने धनाढ्य पति को छोड़कर चली आती है क्योंकि वह देखती है कि पति के समक्ष उसकी इच्छा अनिच्छा का महत्व नहीं है। वह अपनी सखी अनुभा से कहती है-

"अनु, आई कैन नॉट स्टैंड दिस फुलिस टिपीकल ईगो ऑफ मैन।"[2]

सुनीता को पुरूष द्वारा अधिकार दिखाकर नारी-शरीर से खेलना उसकी चेतना को स्वीकार नहीं। उसके विद्रोह का मूल कारण यही बिन्दु है :

"अरे यार, अब साफ ही कहूँ।' सुनीला उठकर बैठ गयी थी और अनुभा की बाँह पर धौल जमाते बोली थी- 'पुरूष अपनी मर्जी से ही हमेशा जिस्म पर हक जमाते हैं हर रात- और कभी-कभी तो हर सुबह भी। हर रात का यह चक्कर इतना-इतना बुरा है कि मुझे लगने लगा था कि मैं 'वह' होती जा रही हूँ। एज इफ आई एम ए कैप्ट वूमन।"[3]

1- आपका बंटी, पृ0 - 177
2- पतझड़ की आवाजें, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, 1979, पृ0 - 154
3- उपरोक्त, पृ0 - 155

नारी-चेतना और नारी-स्वातन्त्र्य का भाव जब किसी भी महिला में जागता है तो वह पति की इच्छा पर ही शरीर का भोग कराते रहने पर विद्रोह करती है। सुनीला की यही समस्या है। उसे यह प्रतीति होने लगती है जैसे वह पत्नी नहीं अपितु रखैल हो। उसका कारण बताते हुये वह कहती है कि:

"जानती है तब इस शरीर से ही नफरत हो जाती है। जरा बिस्तर का साथ देने से मना कर दो कभी तो ट्रीटमेन्ट यूं मिलता है जैसे घर में पड़ी कोई बेकार चीज रह गई हो औरत तो। हर बात में झगड़ा किया जाता है। खर्चे के पैसे देने तक में भी कड़ापन। ...... तब बोलो, खुद को क्या महसूस किया जा सकता है? वही ना?"[1]

अनुभा अपनी परिस्थितियों पर विचार करके सुनीला से कहती है कि अकेलेपन से तंग आकर वह बिना प्रेम के भी विवाह करेगी और बच्चे उत्पन्न करेगी। सुनीला प्रत्युत्तर में पुनः उसी समस्या को उठा देती है जो नारी-चेतना को झंकझोर देने वाली है-

"बड़ी खुशी की बात है। यही करो जो सब करती हैं। झूठ निबाह लो तो ऊपरी तो सुख मिल ही जाएंगे। कर सको तो मैं तुम्हें कोई डिस्करेज नहीं करने वाली। पर यह तो मानोगी कि बिना मर्जी के जिस्म देने में कितनी सड़ांध है। कोई एक साल में ही इस हालत तक पहुँच जाए, कोई सात-साल में।"[2]

सुनीला का पति आता है और चाहता है कि उसका समझौता हो जाये किन्तु सुनीला को समझौता स्वीकार नहीं। उसने अनुभा से स्पष्ट शब्दों में कहा था :

"हाँ-हाँ मुझे अकेलापन मंजूर है। पर यह पाखंड नहीं। तुम क्या समझती हो सुधांशु मेरे लिए आये थे? न, वह मुझे किसी शर्त पर मना कर पास नहीं बनाए रखना चाहते बल्कि अपनी इज्जत बनाए रखना चाहते हैं। बेकार डरते हैं कि उनकी फैमिली में उनकी भद्द उड़ जाएगी अगर हमारा डाइवोर्स हो गया तो। ...... अनु, और मैं जानती हूँ इस आदमी को मेरी जरूरत नहीं - किसी भी एक अच्छी सी औरत की जरूरत है"[3]

1- पतझड़ की आवाजें, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, 1979, पृ0-155
2- वहीं, पृ0-156
3- वही पृ0-157

पति-पत्नी के सुख के लिए यह आवश्यक है कि पति अपनी पत्नी को कुछ समय दे। उसके सुख-दु:ख की कुछ बातें करे। किन्तु सुनीला का पति मि0 कपूर एक व्यस्त व्यक्ति था और उसके पास अपनी पत्नी के लिए रात्रि के अतिरिक्त और कोई समय नहीं था। सुनीला बताती है कि:

''हाँ, कल चले गये। फुर्सत भी कहाँ है उन्हें ज्यादा। जानती हो, वहाँ उनके साथ रहकर भी उनसे ज्यादा बात करने का कहाँ मौका मिलता था। दिन भर उन्हें काम। फिर शाम को आएं तो फैमिली के सब लोग डिनर इकट्ठा ही लेते थे, फिर छुट्टी के दिन सोशल गेदरिंग तरह-तरह की।''[1]

सुनीला को सम्भवत: विजय और उषा के विवाह का समाचार मिल गया था इसलिए उसने आत्महत्या का निर्णय ले लिया था। अनुभा ने जब थोड़ी-सी झूठी

जिन्दगी जी लेने की इच्छा सी व्यक्त की थी तो सुनीला ने कहा था :

''क्या बात कर रही हो, अनु...... हाँ, शायद तुमने तंग आकर केवल शरीर के लेबल पर ही सोचने की आदत बना ली है। इसके भीतर जो कुछ भी है- वह चेतना, वह समझ, उसका क्या होगा। और जब वह जाग जाती है तो झूठी जिन्दगी किसी भी तरह बर्दाश्त नहीं होती। आज मैं मर जाऊँ जान-बूझकर भी तो यह मरना भय या डरपोकपने की वजह से नहीं पास आएगा। भयानक उदासी की वज़ह से भी नहीं। यह तो मेरा एक चुनाव होगा।''[2]

वह नींद की गोलियाँ अधिक मात्रा में खाकर आत्महत्या कर लेती है। मृत्यु से पूर्व वह एक 'नोट' लिखकर छोड़ जाती है जिसमें अगले जीवन के सुखद होने की कल्पना की गयी है:

''मेरा यह खुद ही मरण को बुलाना कोई पलायन नहीं। स्वतंत्र-संकल्प के प्रयोग का वह चरम रूप भी नहीं जिसकी कई चर्चा करते हैं। यह आर्थिक, समाजिक जंजालों और बिखरे हुए आंतरिक संबंधों से बेजार इंसान का निर्णय है - शायद किसी एक

1- पतझड़ की आवाजें, पृ0-158
2- उपर्युक्त, पृ0-153

बेहतर स्थिति की उम्मीद। किसी बेहतर जन्म की कल्पना। क्योंकि आत्मा के अस्तित्व में, उसकी ऊँचाई की संभावना में मेरा अटल विश्वास है। इसीलिए आत्मा ही दुखी हो जाए जहाँ उस दुनिया में रहने का मैं कोई अर्थ नहीं समझती।''[1]

पुरूष को यदि शराब और पर-नारी की आदत पड़ जाती है तो उसका परिवार नहीं चल सकता।नारी आर्थिक कठिनाइयाँ तो भोग सकती है किन्तु पुरूष का लम्पट होना उसे सहन नहीं होता। जगदीश चन्द्र के उपन्यास 'धरती धन न अपना' में दिलसुख की यही स्थिति बनती है। लाल पहलवान दिलसुख के बारें में बताता है:

''जाट पर जवानी आने से पहले ही उसके पंख निकलने शुरू हो जाते हैं। औरत और शराब उसे अपनी तरफ खींचते हैं। कई तो एक-दो चक्कर खाकर वापस आ जाते हैं। कुछ वहीं के हो रहते हैं। दिलसुख पाँच घुमाऊँ जमीन पहले ही रहन रख चुका है। बाकी आहिस्ता-आहिस्ता रख देगा..... बाप-दादा का अच्छा नाम रोशन कर रहा है। .... दस-बारह दिन हुए मेरे पास आया था। पाँच-सौ रूपये के बदले में घुमाऊँ जमीन रहन रख रहा था। मैंने तो साफ जबाब दे दिया। मेरा दादा और उसका पड़ दादा सगे भाई थे। रिश्ता दूर का सही, खून तो एक ही है।अब हरनाम सिंह और बाबक वाले जगते के पास कोड़ियों के मोल जमीन रहन रख दी है। दुख तो बहुत होता है पर क्या करूँ, लोक-लाज मेरी बाँह पकड़े हुए है। शरीर का मामला है। कल को लोग कहेंगे कि ताया भतीजे की जायदाद खा गया।......मैंने राजे घर में इसकी शादी करायी थी। लड़की का बाप फौज में सूबेदार है। इसका फूल-सा बच्चा है। उस बेचारी को इसने बहुत दुख दिया वह तो रो-पीटकर अपने मैके चली गयी। सौ हीले बहाने करके दिलसुख से आधी जमीन लड़के के नाम करा दी है। सब किस्मत का खेल है। इसके बाप-दादा के वक्त में इसकी हवेली में पंचायत होती थी। अब गाँव का सब लुच्चा-लफंगा वहीं इकट्ठ होता है।''[2]

पारिवारिक विघटन का एक कारण यह भी होता है कि माता-पिता और भाई अधिक धन अर्जित करने की आशा संजोते हैं और वह अधिक धन कमा नहीं पाता तो वे उससे

1- पतझड़ की आवाजें, पृ0- 173
2- धरती धन न अपना, पृ0-133

सम्बन्ध तोड़ देते हैं। काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'अपना मोर्चा' में जवान एक छात्र से बात करता है। वह छात्र अपनी स्थिति समझाते हुए कहता है:

''वह बताता है कि उसने अपने को घर से अलग कर लिया है। उसने क्या कर लिया है, बल्कि घर के लोगों ने ही उसे अलग कर दिया है। तीन-चार साल नौकरी के चक्कर में वह दिल्ली, कलकत्ता और बम्बई घूमता रहा, किसी तरह अपना पेट जिलाता रहा। पिता और भाईयों को इतने से सन्तोष न था। उन्हें चाहिए था काफी धन-इतना धन कि उनकी सारी इच्छाएं पूरी हो जायें, सारा दुख-दर्द दूर हो जाए। रात-दिन मालिकों की गुलामी करके भी वह उन्हें और घर वालें को सन्तुष्ट न कर सका। और अन्त में उसने वहीं एक छोटी-सी नौकरी करते हुए पढ़ने का फैसला कर लिया।''[1]

वस्तुतः माँ-बाप यही सोचते हैं कि उनका पुत्र पढ़-लिखकर उनके सारे दुख-दर्द दूर कर देगा। अच्छा धन कमाने की स्थिति में न आ पाने के कारण तनाव उत्पन्न होता है। और उससे पारिवारिक विघटन की स्थिति आ जाती है। आज की शिक्षा-पद्धति ही दोषपूर्ण है। छात्र आज की शिक्षा पद्धति को विघटनकारी घोषित करता है। इस पद्धति से छात्र धीरे-धीरे और अनायास ही अपने घर-गाँव के विरूद्ध हो जाता है। वह जवान से, आगे कहता है :

''बात यह है कि पढ़ाई के इस ढंग को बदलना पड़ेगा। अब इस पढ़ाई से हो यह रहा है कि हम पढ़ते हैं और अपने माँ-बाप के खिलाफ हो जाते हैं, अपने गाँव-घर के खिलाफ, अपने ही वर्ग के खिलाफ। हमें अपना घर गन्दा और घिनौना लगने लगता है, गाँव बेहूदा और घिसघिस। यह काम इतनी बारीकी और सफाई से होता है कि लड़के को पता तक नहीं चलता। यह पढ़ाई उससे हमारा ही, हमारे ही कुनबे का आदमी छीन लेती है।''[2]

संयुक्त परिवार के विघटन के पीछे एक मूल कारण भावना भी होती है। गुरूदत्त के उपन्यास 'गिरते महल' के बाबा की मान्यता है कि संयुक्त परिवार एक भावना है जिसमें पूर्वजों के नाम की मर्यादा और प्रतिष्ठा का स्वरूप होता है। जब तक पारस्परिक स्नेह, प्रेम

1- अपना मोर्चा, पृ0- 28
2- उपर्युक्त, पृ0- 29

और सहयोग रहता है तब तक संयुक्त परिवार चलता रहता है। अब इन सबका अन्त होने लगा है :

"पारिवारिक बन्धन ढीले हो रहे हैं। परस्पर वह स्नेह नहीं रहा जो पहले हुआ करता था....... यों तो भाई-भाई में सम्पत्ति पर झगड़े पहले भी होते दिखाई देते थे, परन्तु बहिन-भाई, पति-पत्नी में सदा स्नेह का व्यवहार रहता था। साथ ही झगड़ा अपवाद होता था नियम नहीं। अब तो झगड़ा नियम बन गया है और परस्पर स्नेह अपवाद।"[1]

भागीरथ लाल का परिवार टूटती हुई स्थिति में है। बाबू ब्रजलाल उसके सम्बन्ध में अपनी सम्मति देता है :

"परिवार में बँटवारा करके इसे विखण्डित कर दो... इस कारण कि

इस परिवर की आयु समाप्त हो गई है। अब इस बरगद के पेड़ ही शाखाएँ भूमि को छूनेलगी हैं, और अब नये पेड़ों को बनायेंगी। नये परिवार स्थापित होंगे।"[2]

संयुक्त परिवार के विघटन के पीछे मूल कारण पाश्चात्य का प्रभाव है। गुरूदत्त के उपन्यास 'गिरते महल' में संयुक्त परिवार के विघटन के जो मूल कारण प्रस्तुत किये गये हैं, वे हैं- भावना के स्थान पर बौद्धिकता, व्यापकता के स्थान पर संकोच, समष्टि के स्थान पर व्यष्टि, आर्थिक स्वातन्त्र्य, नारी-विद्रोह, धर्म में अनास्था आदि। गुरूदत्त परिवार के भविष्य के बारे में निश्चिंत हैं। उनका प्रमुख पात्र बाबू ब्रजलाल है जो कहता है:

"परिवार तो चलेगा। जहाँ पुरूष और स्त्री इकट्ठे होंगे। वहीं परिवार बन जायेगा और इकट्ठे हुए बिना रहेंगे नहीं, विवाह हो अथवा नहीं। संयोग होगा और परिवार बनेंगे।"[3]

ऐसे परिवारों को वे चिरस्थायी भी नहीं मानते। ये सब अल्पकालीन ही रहेगा। उनके अनुसार:

"वे परिवार मौसमी पौधों की भाँति अल्पकालीन होंगे और अल्प विस्तार वाले होंगे।"[4]

1- गिरते महल, पृ0-102
2- उपरोक्त, पृ0-31
3- उपरोक्त, पृ0-32
4- उपरोक्त, पृ0-32

बाबा भविष्य के परिवार के बारे में कल्पना करते हैं कि अब इकाई परिवार बनने का ही भविष्य है। ऐसा समय भी आयेगा, जब व्यक्ति अकेला ही अपना परिवार होगा:

"शीघ्र ही एक परिवार के बीस परिवार बनेंगे, पति-पत्नी ही का रूप रह जायेगा। बच्चे भी जब तक सज्ञान नहीं हो जाते परिवार में रहेंगे। सज्ञान होते ही वह पृथक् होना चाहेंगे।"[1]

पति-पत्नी ही नहीं, इसका और भी विश्लेषण होकर व्यक्ति स्वंय में एक परिवार बन जायेगा :

"इसका और भी विश्लेषण होकर व्यक्ति स्वयं ही अपना परिवार होगा।"[2]

निष्कर्ष

भारतीय परिवार की विशेषता थी कि वह संयुक्त परिवार था और पाश्चात्य परिवार इकाई परिवार और नगरीय सभ्यता के बढ़ने से बैयक्तिक मूल्यों को महत्व मिला और सामूहिक परिवारों का विघटन होने लगा। सामूहिक परिवारों का विघटन ग्राम से लेकर नगर तक के परिवार के विघटन में पुरूष और नारी दोनों का ही योगदान होता है। वैयक्तिक स्वार्थ, अहं का टकराव, भावना और स्नेह की कमी आदि अन्य घटक भी हैं जो पारिवारिक विघटन के लिए उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। हिन्दी के उपन्यासकारों ने सामूहिक परिवारों का विघटन ग्राम से लेकर नगर तक के परिवारों में चित्रित किया है। शिक्षा के विकास के कारण व्यक्ति अधिक स्वार्थी हुआ है और त्याग की भावना तथा स्नेह की कमी के कारण नारी हो अथवा पुरूष सामूहिक परिवार को विखंडित करने के लिए तत्पर हो जाता है। इससे किसी एक ही पक्ष को दोष नहीं दिया जा सकता। दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। हिन्दी उपन्यासों में चित्रित पारिवारिक विघटन की स्थिति का यही निष्कर्ष है। डॉ0 हेमेन्द्र कुमार पानेरी का निष्कर्ष भी यही है :

"इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर काल के उपन्यासों में परिवार के परंपरागत मूल्यों का परिवर्तित स्वरूप उपलब्ध होता है। संयुक्त परिवार की परम्परागत आस्था अन्तिम साँस ले रही है। वर्तमान अर्थ - व्यवस्था ने आणविक परिवार को उपयुक्त आधार दिया है।"[3]

1- गिरते महल, पृ0-163
2- उपरोक्त, पृ0-162
3- स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास: मूल्य-संक्रमण, पृ0-173

तृतीय अध्याय

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक विघटन

- समाज व राजनीति
- राजनीति व मूल्यहीनता
- चुनाव व राजनीति
- राजनीति में भ्रष्टाचार

तृतीय अध्याय

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक विघटन

(क) सामाजिक और राजनीति

स्वतन्त्रता से पूर्व सामान्य और मध्यमवर्गीय लोग राजनीति से विशेष सम्बन्ध नहीं रखते थे।वे कांग्रेस के लिए चन्दा तो दे देते थे किन्तु उसका स्वयं सेवक बनना पसंद नहीं करते थे। नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बंधु था' में इस स्थिति को स्पष्ट किया गया है :

''लोग चन्दा देने को तैयार हो जाते हैं, सभाओं में आने को तैयार रहते हैं। लेकिन स्वयंसेवक बनने को न तो व्यापारी वर्ग और न नौकरी वर्ग से ही कोई तैयार होता है''[1]

उस समय तो राजनीति को व्यर्थ की वस्तु समझा जाता था। 'यह पथ बन्धु था' में बिशन की मकान मालिकन मिसेज एलजी श्रीधर से कहती है कि वह बिशन को समझाये कि वह राजनीति छोड़ दे :

-''बिशन बाबू कहीं गाम को गोयला है भाई?

- हाँ, नागपुर गए है।

- आजकल तो भोत धूमने को जगेला है न? अरे तुम उसको काय को नेई समजाता कि ईस राजनीति में क्या धरेला है? ओसका मगज फेरेला है।''[2]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् स्थिति में परिवर्तन होता है। गणतन्त्र की स्थापना और चुनावों के कारण सामान्य जन भी राजनीति की चर्चा करने से नहीं हिचकता। डॉ0 हेमेन्द्र कुमार पानेरी इस सम्बन्ध में कहते हैं :

''राजनीति वर्तमान समाज के लिए चर्चा का एक महत्वपूर्ण विषय बन गई है। विश्व-राजनीति विविध वादों और शासन-पद्धतियों के घेरे में उलझ गई है। सत्ता के लिए

1- यह पथ बन्धु था पृ0-236
2- उपरोक्त, पृ0-289

संघर्ष हो रहा है। सैनिक क्रान्तियाँ हो रही हैं और शासन-तन्त्रों को पलटा जा रहा है। राजनीतिक प्रभाव के विस्तार के लिए राष्ट्रों में परस्पर संघर्ष चल रहा है। इन सबने स्वाधीन भारत की चेतना को प्रभावित किया है।''[1]

समाज पर राजनीति का जो प्रभाव पड़ा है, उसके कारण ही समाज में तीव्र गति से परिवर्तन हुआ है। भारतीय समाज के इस परिवर्तन को लक्ष्य करके प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम0एन0 श्रीनिवास कहते हैं :

''स्वाधीनता प्राप्ति के बाद थोड़े समय में देश के अभिजन ने जो परिवर्तन कर दिये हैं, वे कोई विदेशी समूह, चाहे कितना सक्षम और योग्य हो, नहीं कर सकता।''[2]

राजनीति ने समाज को पूरी तरह प्रभावित कर दिया है। समाज में जातिवादी राजनीति घुन की तरह घुस गयी है जो समाज को धीरे-धीरे भीतर ही भीतर खोखला कर रही है। इस राजनीति का भयंकर रूप स्कूल-कॉलेजों में देखने को मिलता है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में इसकी सशक्त अभिव्यक्ति की गयी है। स्कूलों की राजनीति को रामविलास बताता है कि वह भी प्रिन्सिपल की हाँ मिलाने का प्रयास करता है क्योंकि दूसरों के दाँव-पेचों को वह नहीं समझ पाताः

''करता क्यों नहीं हूँ। लेकिन करने तक ही तो प्रश्न नहीं है। दोहरा काम करना होता है न। एक तो हजूरी करो, दूसरे अन्य जी हजूरी करने वालों के दावपेंचों को समझो और उनकी काट करते रहो। मैं तो सीधा आदमी हूँ जी हजूरी तो कर सकता हूँ लेकिन निरंतर सावधान होकर नयी-नयी चालें नहीं चल सकता न औरों की चालों को काट सकता हूँ।''[3]

उपन्यासकार इसे राष्ट्रीय प्रवर्तन की संज्ञा देता है। गोरखपुर से लेकर दिल्ली तक यही स्थिति है। उपन्यास के नायक प्रमोद को भी दिल्ली में कई कालेज बदलने पड़ेः

''यह तो राष्ट्रीय प्रश्न है भाई, हर जगह वह चाहे गोरखपुर हो या दिल्ली हो, इस प्रश्न की चुनौती स्वीकार करनी पड़ती है और हर आदमी अपने-अपने ढंग से इसका

1- स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासः मूल्य संक्रमण, पृ0-132-133
2- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0-99
3- अपने लोग, पृ0-41

उत्तर खोजता है। मैंने भी इस प्रश्न का साक्षात्कार किया है कॉलेज में और जो जहाँ है वहीं कर रहा है। लेकिन मैंने इस प्रश्न का दबाब महसूस नहीं किया। कभी किसी प्रिंसिपल या चेयरमैन ससुरे का कुछ नहीं हतियाया बस पढ़ना और छात्रों को पढ़ाना यही मेरा काम रहा। उसके परिणाम मुझे भोगने पड़े और स्वाभिमानवश कॉलेज भी बदलने पड़े लेकिन मेरी आदत नहीं बदली। यह नहीं कि मैंने किसी विद्रोहवश ऐसा किया हो, यह मेरी आदत है, मेरा संस्कार है।''[1]

स्कूल-कॉलेजों में जातिवादी राजनीति ने अपने पाँव पसार दिये है। गोरखपुर में प्रमोद के कॉलेज में ब्राह्मणों, क्षत्रिय, और कायस्थों के गुट हैं जिनसे जातिवादी राजनीति होती है :

''प्रमोद कॉलेज से लौटते हुए बहुत उदास था। उसने सुन रखा था कि इस कॉलेज में ब्राहाणों और क्षत्रियों के दो दल है। तीसरा कायस्थ के दो दल हैं। तीसरा कायस्थ गुट कभी इधर रहता है, कभी उधर। वही हार-जीत का निर्णायक हो जाता है। मैनेजिंग कमेटी में कभी क्षत्रियों का बहुमत होता है कभी ब्राह्मणों का। मैनेजिंग कमेटी के चेयरमैन हैं पंडित महेन्द्र चन्द्र ओझा जो एक नामी वकील हैं और प्रमुख डोनर हैं बाबू रामकिशोर सिंह। प्रिसिंपल मदन भी ब्राहाण है। नियुक्तियों के सिलसिले में ब्राहाणों ओर क्षत्रियों का संधर्ष चला करता है। उस की नियुक्ति नहीं हुई होती, यदि इस समय पंडित महेन्द्र चंद्र ओझा चेयरमैन न होते होते।''[2] जातिवाद और राजनीति का भयानक रूप निर्धन छात्रों की फीस माफी के समय देखने को मिलता है। निर्धन छात्रों की फीस माफी तो बिना सिफारिश हो ही नहीं पाती :

''आज कॉलेज में फीस माफी की मीटिंग थी। कुछ क्षत्रिय प्राध्यापक कुछ ब्राह्मण प्राध्यापक उस मीटिंग में थे, वह भी एक था। जब वह बैठा तो देखा कि कुछ लड़कों के लिए चेयरमेन की, कुछ के लिए डोनर की, कुछ लिए प्रिंसिपल की, कुछ के लिए मैनेजिंग कमेटी के एक दूसरे प्रभावशाली सदस्य की सिफारिस मौजूद थी। लडके आते गये, सिफारिशी

1- अपने लोग, पृ0-42
2- उपर्युक्त, पृ0-77

कागज देख-देखकर उनकी फीस माफी का फैसला होता गया और उसे देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि फीस माफी पाने वाले अधिकांश छात्र अच्छे खाते-पीते घरों के हैं और लोफर हैं। क्लॉस में या तो आते नहीं या आकर बहुत अनुचित रीति से बैठते हैं। सिफारिशी कोटे से जैसे जगहें बचीं उनके ब्राह्मण और क्षत्रिय प्राध्यापकों में तू-तू मैं-मैं होने लगी।[1]

प्रमोद का भाई देहात के एक स्कूल में मास्टर है। वह बताता है कि उसके स्कूल में बनियों और अबनियों का संघर्ष है :

''अरे भइया, इस देश में उलझनों की कमी है? जो उलझन आप इस शहर में भोग रहे हैं, वही मैं देहात में भोग रहा हूँ। आपके कॉलेज में ब्राह्मण और क्षत्रियवाद का संघर्ष है तो मेरे स्कूल में बनियों और अबनियों का संघर्ष है।''[2]

अध्यापकों के साथ-साथ छात्रों में भी जातिवाद की राजनीति प्रवेश कर गयी है। छात्र संघ का अध्यक्ष जीवन सिंह एक अध्यापक को चपत मारकर उसका अपमान कर देता है। अध्यापकों की बैठक में अनुशासन की बात आने पर जातिवाद बीच में आ जाता है। सदन प्रमोद को स्थिति का ज्ञान कराता है :

''और जब जातीयता के कोढ़ में राजनीति का खाज हो तो फिर विकृति का क्या कहना? बलराम सिंह जनसंघी है, और जीवन सिंह जनसंघी है, इसलिए वह जीवन सिंह का और भी बचाव कर रहा था।''[3]

समाज और राजनीति का पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ने का कार्य कम्युनिस्ट करते हैं। नगरों में श्रमिक वर्ग और गाँवों में खेतिहर मजदूरों के प्रति उनकी सहानुभूति होती है। जगदीश चन्द्र के उपन्यास 'धरती धन न अपना' के डॉक्टर बिशनदास कम्युनिस्ट है और वह प्रोलतारिमा की विजय के लिए आशावादी है। वह काली से कहता है :

''जिस तरह बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है उसी तरह बड़ा तबका छोटे तबके को एक्सपलायट करता है। यानी उसकी मेहनत का फल उसे नहीं खाने देता बल्कि खुद

1- अपने लोग, पृ0-77
2- वही, पृ-253
3- वही, पृ0-154

खा जाता है। इसी से क्लास स्ट्रगल (वर्ग-संघर्ष) पैदा होता है। लेकिन मार्क्सवादी इन्कलाब से यह तबका खत्म हो जायेगा और प्रोलतारिमा का बोल बाला होगा।''[1]

नन्दसिंह को अपने आप का चमार कहलवाने से घृणा थी, इसलिए वह ईसाई हो गया था। चौधरी मुंशी फिर भी उसे चमार कहता है। दोनों के बीच झगड़ा होता है। काली नन्दसिंह को बचाता है तो चौधरी मुंशी उसी से उलझ पड़ता है। अन्य चौधरी भी आ जाते हैं। चौधरी हरनाम सिंह काली को गाँव छोड़ कर चले जाने का आदेश देता है और काली के द्वारा सफाई पेश करने पर वह कह देता है कि गलती हमेशा कमीन की मानी जायेगी :

''आगे से टर-टर करता है। तू कहाँ का धर्म पुत्तर है। कान खोलकर सुन ले; चौधरी के मुकाबले में गलती हमेशा कमीन की होती है। ज्यादा अकड़ और फूँ-फाँ दिखायी तो तेरी लाश तक नहीं मिलेगी।''[2]

संध्या समय डॉक्टर बिशनदास काली को समझाते हुए कहता है कि:

''कालीदास दरअसल सारी खराबी कैपिटिलिस्ट सिस्टम की है। हमारे देश में तो हालत और भी गम्भीर है। यहाँ अभी पूँजीवाद भी पूरी तरह नहीं आया। दुनिया समाजवाद की तरफ बढ़ रही है और हम अभी तक जागीरदारी के चक्कर में फँसे हुए हैं।''

डॉक्टर को आशा बहुत है, इसलिए वह काली से कहता है कि शीघ्र ही इन्कलाब आयेगा:

''काली, यह हालात ज्यादा देर तक नहीं रह सकती। इन्कलाब आयेगा, जरूर आयेगा और पूँजीपतियों, जागीरदारों और उनके एजेन्टों को खत्म कर देगा। उनका नाम-निशान मिटा देगा। फिर हर आदमी आजाद होगा। कोई चौधरी नहीं रहेगा और कोई कामा नही होगा। अमीर और गरीब का फर्क मिट जायेगा। पैदावार के साधन साँझी मलकियत होंगे। हर आदमी अपनी तौफीक के मुताबिक के काम करेगा, और अपने खर्च के मुताबिक पैसे लेगा।''[3]

1- धरती धन न अपना, पृ0-144
2- उपरिवत्, पृ0-201
3- उपरिवत्, पृ0-207

इन्कलाब कैसे आता है और उसमें क्या होता है, यह जिज्ञासा काली की है। डॉक्टर बिशनदास उसकी जिज्ञासा का उत्तर देते हुए कहता है :

"बहुत उथल-पुथल होगी। पूंजीवाद और जागीरदारी सिस्टम इन्कलाब को असफल बनाने की कोशिश करेंगे। अपने एजेन्टों की मारफत इन्कलाबी ताकतों में फूट डालेंगे, उन पर हमले करेंगे। खून-खराबा होगा। खून की नदियाँ बहेंगी और हजारों लोग मरेंगे।"[1]

गाँव में जमींदार और चमारों के बीच संघर्ष उत्पन्न हो गया। बाढ़ के कारण गाँव में पानी भरने लगा था। जिसके कारण गाँव को बचाने के लिए बाँध को काटकर पानी की धार को खेतों की ओर मोड़ दिया गया था। बाढ़ उतर जाने पर गाँव के सभी चमारों को बुलवा कर खेतों में काम कराते हैं। तीन दिन तक काम करने के बाद भी मजदूरी के नाम पर कुछ नहीं मिलता तो चौथे दिन वे अपनी मजदूरी माँगते हैं और मजदूरी लिए बिना काम करने से इन्कार कर देते हैं। चौधरी मजदूरी देने के लिए तैयार नहीं होते। चौधरी लोग चमारों का बाईकाट करने का निर्णय लेते हैं। चमारों की स्त्रियों को गोबर न उठाने देने, खेतों में चमार स्त्री-पुरूषों को घुसने न देने का निर्णय करते है। चमार भी अपने निर्णय पर दृढ़ रहते हैं। डॉक्टर बिशनदास इस घटना को प्रोलतारियों और पूंजीपतियों की टक्कर मानता है। वह संसार भर की सफल और असफल क्रान्तियों का स्मरण करता है:

"उसे याद हो आया कि संसार में सफल और असफल क्रान्तियाँ ऐसी ही छोटी-छोटी घटनाओं से आरम्भ हुई थीं। वहाँ के सफल हो गयी थीं और जहाँ क्रान्तिकारी संगठित न हो सकी थी। जहाँ इन्कलाबी ताकतों को अच्छी लीडरशिप मिल गयी थी वहाँ उनकी हार हो गयी थी।"[2]

डॉक्टर बिशनदास इस घटना से बहुत उत्साहित था। उसे लग रहा था कि यदि घोड़ेवाहा के इन चमारों को संगठित कर दिया जाये तो भारत में भी क्रान्ति आ सकती है। वह काली को उत्साहित करता हुआ कहता है :

1- धरती धन न अपना, पृ0-207
2- उपर्युक्त, पृ0-239

"पूँजीवाद और जमींदार हमेशा से मेहनतकश और प्रोलतारी तबके पर जुल्म करते आये हैं, उसको एक्सपलायट करते रहे हैं। लेकिन जब प्रोलतारी तबके में इन्कलाबी स्प्रिट जाग उठती है तो वह बाढ़ बनकर इन ताकतों को तिनकों की तरह बहा ले जाता है।"[1]

डॉक्टर बिशनदास स्वंय गाँव के चमारों का नेतृत्व करने में हिचकता है और इसके लिए वह कन्धाले के पुराने कामरेड टहल सिंह के पास जाता है। टहल सिंह की चमारों के बारें में धारण अच्छी नहीं होती फिर भी वह डॉक्टर के समझाने पर आता है और काली तथा बन्तू से मिलता है। उन्हें वर्ग-संघर्ष के बारे में समझाता है। डॉक्टर और अटल सिंह में भी बहस छिड़ जाती है क्योंकि इस गाँव में चमार चौधरियों का बाईकाट उसी स्थिति में जारी रख सकते हैं जबकि उन्हें अन्न मिल जाये अन्यथा वे भूख से मर जायेंगे। टहल सिंह इसे प्रोलतारी स्प्रिट के विरूद्ध मानता है :

"इस सारी बहस का कारण यह था कि डॉक्टर काली के इस कथन का समर्थन था कि चमारों को अगर फाके न काटने पड़ें तो वे बहुत दिनों तक जाटों के बाईकाट का मुकाबला कर सकेंगे। परन्तु टहल सिंह का विचार था कि काली यह सोच प्रोलतारी स्प्रिट के विरूद्ध है क्योंकि इससे यह आभास मिलता है कि ये लोग कामचोर हैं। इन्कलाबी स्प्रिट का मतलब यह है कि फाके काटकर, गोलियाँ खाकर और जिन्दगी को हथेली पर रखकर संघर्ष किया जाये।"[2]

काली तथा कुछ अन्य चमारों को आशा थी कि डॉक्टर उनकी कुछ सहायता करेगा किन्तु वह तो अन्न देने के स्थान पर जलसा करना चाहता है। टहल सिंह इस स्थानीय संघर्ष को जनता के व्यापक संघर्ष में बदलने के लिए जलसों को आवश्यक मानता है। वह डॉक्टर से कहता है :

"कामरेड, मैं तुम्हें पहले ही समझा चुका हूँ कि यह बात इन्कलाबी स्प्रिट के खिलाफ है........ मेरे खयाल में हमें प्रोपगण्डे की रफ्तार तेज करनी चाहिए। इस मुकामी (स्थानीय) स्ट्रगल को 'मास मूवमेन्ट' (जनता का व्यापक संघर्ष) बनाना जरूरी

1- धरती धन न अपना, पृ0-241
2- तदैव, पृ0-243

है... कामरेड समय आ गया है कि हम खुलकर मैदान में आ जायें और जलसों का प्रोग्राम शुरू किया जाये। पहला जलसा तुम्हारे गाँव में ही होना चाहिए।''[1]

परिणाम यह होता है कि डॉक्टर बिशनदास की राजनीति विफल हो जाती है और जमींदार तथा खेतिहर मजदूरों के बीच समझौता हो जाता है। चौधरी भी अपना बोझा ढोते-ढोते थक गये थे। और चमार भूख से पीड़ित थे। चौधरी मुंशी सबसे पहले बसन्तमा से पूछता है कि क्या उनके बिना गुजारा सम्भव है? बसन्तमा चौधरी को उत्तर देता है कि :

''चौधरी, हमने कब कहा है कि हमारा तुम्हारा बिना गुजारा है। हम तो सदा यही कहते आये हैं कि तुम हमारे मालिक हो और हम तुम्हारे कामे। हम लोगों ने तो इतनी शिर्फ इतनी फरियाद की थी कि काम करवाकर मजूरी नहीं दोगे तो हम खायेंगे कहाँ से? तुम लोगों ने बाईकाट कर दिया।''[2]

परिणामः फैसले की स्थिति बनती है और निर्णय होता है कि चौधरी अपने-अपने कामे को डेढ़ दिन की मजदूरी दे देगा। फैसला भी उसी समय से लागू हो जाता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भी राजनीति समाज में कोई परिवर्तन न ला सकी। स्वराज्य प्राप्ति से पूर्व जनता ने कितनी-कितनी आशाएं की थी किन्तु स्वराज्य के बाद भी कोई परिवर्तन उपस्थित नहीं हुआ। हिमांशु जोशी ने लघु उपन्यास 'सु-राज' में इसी स्थिति का चित्रण किया गया है। उपन्यास का प्रमुख 'गांगि' का स्वतन्त्रता से पूर्व परमानन्द पंडित के साथ रहकर उनकी सभी बातें स्वीकार करता रहाः

''जात-पात कुछ नहीं होता, हरिजन-सवर्ण सब समान हैं। जीवन भर काका यह बात गाँठ बाँध रहे। इन्होंने मान लिया कि जात-पात कुछ नहीं होता। हरिजन-सवर्ण सब समान है।''[3]

वे देखते हैं कि समाज में कोई परिवर्तन उपस्थित नहीं हुआ। धनकोट, रौल्यूड़ा के

1- धरती धन अपना, पृ0-253
2- तदैव, पृ0-269
3- सु-राज, पृ0-16

लोहारों की जैसी दशा अँग्रेजों के समय थी, वैसी आज भी है। आज भी जमींदार उनसे बेगार लेता है। उन्हें पहली बार लगा कि परमानन्द पंडित भी सही नहीं कहते थे।

"मुझे लगता है, परमानन्द पंडित भी गलत कहते थे। वह कहा करते थे-फिरंगियों के जाते ही देश मालामाल हो जाएगा। दूध की नदियाँ बहेंगी। कहीं कोई भूखा-प्यासा नहीं रहेगा। सबको जीने का हक मिलेगा। किसको मिला है जीने का हक?"[1]

काका का 'सु-राज' से मोह-भंग हो गया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी समाज की स्थिति नहीं बदल सकी। काका ने उसे बदलने के लिए अपना ही बलिदान कर दिया किन्तु उनका बलिदान भी क्या पहाड़ का भाग्य बदल सका? उत्तर है नहीं। उपन्यासकार ने उपन्यास की भूमिका 'पूर्वा' में लिखा :

"सत्ता, शक्ति, सम्पन्नता, न्याय ये सारे शब्द केवल कुछ ही लोगों तक सीमित रह गए हैं। दिन- प्रतिदिन अर्थ की बढ़ती महत्ता ने 'अनर्थ' के कई आयाम खोल दिए हैं। लगता है राजनैतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक शिष्टाचार का पर्याय बन गया है।"[2]

उपन्यास का नायक 'गांगि' का भी संध्या समय बच्चों को एकत्रित कर उन्हें समझाते हैं :

"अब तक मैं समझा था, सुराज आ गया, गाँधी बाबा का सुराज अपने लोगों का राज! पर अब लगने लगा है, सुराज नहीं आया और न फिलहाल आने ही वाला है। यह पटवारी का राज है थोकदार-जमींदारों का।"[3]

(ख) राजनीति और मूल्यहीनता :-

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् की राजनीति धीरे-धीरे मूल्यहीनता से ग्रस्त होती गयी। समाज-सेवा, राष्ट्र-प्रेम, सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा, त्याग आदि का महत्व नगण्य हो गया तथा पद-लोलुपता और स्वार्थ की भावना बढ़ती गयी। डॉ0 शन्नो देवी अग्रवाल भी इसी तथ्य को स्वीकार करती हैं :

1- सु-राज, पृ0-19
2- तदैव, पृ0 8
3- तदैव, पृ0 26

''राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के नव-विहान में देश के राजनीतिक रंगमंच पर एक ऐसा नेतावर्ग दिखाई दिया, जिसकी मान्यताएं, आदर्श, नैतिक मूल्य और निष्ठा-भावना, सब कुछ स्वातन्त्र्य आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले भूतपूर्व निस्पृह, त्यागी और कर्मठ नेताओं से नितान्त भिन्न थी।''[1]

वस्तुतः काँग्रेस की राजनीति में बहुत पहले से ऐसे नेताओं का प्रवेश आरम्भ हो गया था जो किसी मूल्य के कारण राजनीति में नहीं आये थे अपितु उनका दृष्टिकोण वैयक्तिक लाभ उठाना था। नरेश मेहता ने 'यह पथ बन्धु था' में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व की इस मूल्यहीन राजनीति का चित्रण किया है। उज्जैन के कांग्रेसी नेता पुस्तके साहब इसी प्रकार के व्यक्ति हैं। बिशन श्रीधर को बताता है :

''पुस्तके साहब नामांकित वकील है।एक बड़ी पुश्तैनी सामाजिकता है। राजनीति के कर्णधारों में गिनती होती है इसलिए उन्हें पूर्ण अधिकार है कि वे छोटे राजनीतिज्ञ का शोषण करें।''[2]

बिशन श्रीधर को राजनीतिज्ञों के बारे में बताते हुए कहता है कि सफल राजनीतिज्ञ होने के लिए बड़े पद और मर्यादा की आवश्यकता होती है :

''जीवन में किसी प्रकार का भी जब राज हो तभी न आदमी नीतिज्ञ होगा? गले में कफनी टाँगकर, ढाबे में पेट भरकर अधिक से अधिक देशभक्त बनने की कामना कोई ही कर सकत है। राजनीतिज्ञ के लिए शुरू से ही आपके पास इतना बड़ा पद तथा मर्यादा होनी चाहिए कि राज या स्वराज्य आ जाने पर आप उसके उपयुक्त लगें।''[3]

बनारस के ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह भी इसी प्रकार के राजनीतिज्ञ हैं जो अपने संस्मरणों में अपने बारे में झूठा प्रसार करते हैं। साप्ताहिक पत्र उनके छोटे भाई का है, इसलिए वे जो कुछ भी लिखते हैं, वह प्रकाशित हो जाता है। श्रीधर ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह के साथ ही जेल में बन्द था, इसलिए वह उन संस्मरणों को पढ़कर आश्चर्यचकित हो उठताः

1- स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासों में समकालीन राजनीति, ग्रंथायन, अलीगढ़, 1984, पृ-195-196
2- यह पथ बन्धु था, पृ0-216
3- उपर्युक्त, पृ0-198

"प्रति सप्ताह जब संस्मरण श्रीधर बाबू पढ़ते तो उन्हें आश्चर्य होता कि कब, कहाँ और किस जेल में ठाकुर साहब के साथ ये असीम घटनाएं घटी? संभवतः उन्हें एक भी कोड़ा नहीं पड़ा होगा लेकिन संस्मरणों में कोड़ों का वर्णन होता। ठाकुर साहब ने एक दिन के लिए अवश्य अनशन किया था लेकिन वहाँ तो सबसे लम्बे अनशन का वर्णन था"[1]

श्रीधर बाबू के 'शंखनाद' निकालने पर सकलदीप नारायण सिंह यह प्रयास करते हैं कि 'शंखनाद' से श्रीधर को निकाल दिया जाये :

"इसी बीच ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह ने दो-एक आदमियों के द्वारा रामखेलावन पर जोर डाला कि वे श्रीधर बाबू को हटा दें। क्योंकि 'शंखनाद' को निकलते हुए एक बरस हो गया था और ठाकुर साहब इतने बड़े अस्त्र को अपने विरोधी के हाथों में नहीं देख सकते थे। बनारस में उन दिनों हिन्दू-मुसलिम में काफी तनाव था। 'शंखनाद' आये दिन चेतावनी दे रहा था कि नगर के कुछ राजनैतिक व्यक्तिइस तनाव को बनाये रखने में सहयोग दे रहे हैं। गनीमत यही थी कि श्रीधर बाबू ने किसी का नाम नहीं लिया था। लेकिन उनका संकेत ठीक जगह जाकर निशाने पर बैठा।"[2]

दंगा होने पर ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह, श्रीधर के पीछे गुंडे लगा देते हैं जिससे कि उसकी हत्या को दंगे से जोड़ा जा सके।

"श्रीधर बाबू उस जाड़े में काँप उठे। उन्होंने वहीं छुपे अनुभव किया कि उनके पीछे ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह ने गुण्डे छोड़ रखे हैं। मौका भी अच्छा चुना था कि बात फैल जायेगी कि दंगे में किसी ने मार दिया। एक क्षण को तो उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और वे पसीने से भीग उठे।"[3]

इससे अधिक मूल्यहीनता की राजनीति क्या हो सकती है कि अपने विरोधी की हत्या ही करा देने का प्रयास किया जाये?

आज की राजनीति के कोई मूल्य नहीं रह गये हैं। वह तो सत्ता सुख पाना चाहता है,

---

1- यह पथ बन्धु था, पृ0-491
2- उपर्युक्त, पृ0-540-541
3- यह पथ बन्धु था, पृ0-541

इसलिए जो भी सत्ताधारी होता है, वह उसी के साथ चला जाता है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में गोरखपुर के एम0 एल0 ए0 शिवनाथ वर्मा का भी यही चरित्र है। राजजन्म दुबे ने प्रमोद को उनके बारे में बताया कि:

''वर्मा जी इतने लचीले हैं कि जो व्यक्ति पावर में होता है उसी की ओर हो जाते हैं। दुबे तो यह भी कह रहे थे कि चरण सिंह के मुख्यमंत्री होने के समय ये भारतीय क्रांतिदल की ओर झुकने लगे थे किन्तु जब तक सोचें तब तक उस दल का अपना असली चेहरा सामने आ चुका था और पराजित हो चुका था।''[1]

शिवनाथ वर्मा पहले समाजवादी पार्टी में था, बाद में इंदिरा कांग्रेस में आ गया। इंदिरा गांधी द्वारा कांग्रेस का विभाजन कराने के पश्चात् इंडिकेट के सदस्यों को प्रगतिवादी तथा सिंडिकेट के सदस्यों को प्रतिक्रियावादी कहा जाने लगा था। अवसर देखकर बहुत से नेता इंडिकेट में सम्मिलित हो गये जिस पर व्यंग्य करते हुए प्रमोद कहता है :

''लेकिन साहब, यह कैसे मालूम हो कि इंडिकेट में जितने लोग शामिल हुए हैं वे प्रगतिवादी दृष्टि के है। यह तो संयोग की बात भी हो सकती है कि कोई व्यक्ति इस पार है व्यक्ति उस पार। इंदिरा जी और निजलिंगप्पा का जो संघर्ष चला, उसमें शामिल होने वालों में बहुत से लोग ऐसे रहे होगें जो किसी सिद्धांतवश इस या उस ओर नहीं आये होंगे बल्कि यह सोचकर आये होंगे, कि जीत उसी दल की होगी। आपने पढ़ा तो होगा ही कि बहुत से नेता शुरू में इंदिरा जी के प्रतिकूल थे, जब देखा कि शक्ति का पलड़ा इंदिरा जी की ओर झुका हुआ है तो झट से इस ओर आ गये। और अभी तो बहुत से लोग पार्टियाँ बदल-बदलकर घुसपैठ करेंगे और घुसपैठ करते ही वे प्रगतिशील बन जायेंगे।''[2]

इसी प्रकार का एक अन्य पात्र मंगलसिंह है। वह पहले हिन्दू महासभा में था फिर जनसंघ में आया और अब कांग्रेस में हैं। रामजन्म दुबे बताता है :

''अरे वे तो कब के कांग्रेसी हो गये हैं। अरे दोगलों की कहीं कमी है? पहले यह जनसंघ में था। जब से इसने शहर में प्रेस खोला है, होटल खोला है और न जाने कितनी

1- अपने लोग, पृ0-180-181

2- उपरोक्त, पृ0-96

दुकानें खोली है तब से कांग्रेसी हो गया है और जब गुप्ता पावर में था तो उनके साथ था, जब त्रिपाठी पावर में आये तो उनके साथ हो गया।''[1]

'जल टूटता हुआ' में भी राजनैतिक मूल्यहीनता का चित्रण किया गया है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व जमींदार अंग्रेजों के समर्थक थे किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् वे सभी कांग्रेसी होने लगे। मास्टर सुग्गन बाबू महीप सिंह के बारे में सोचता है :

''इस इलाके के भारी जमींदार, ब्रिटिश सरकार के पक्के हिमायती, प्रजा के बड़े दुश्मन, अपनी झक के अंधे, कौन नहीं जानता उन्हें, जनता सोचती थी कि आजादी मिलने पर इन देशद्रोहियों को फाँसी मिलेगी, इनकी जमीन गरीबों को बाँट दी जायेगी; मगर इन वर्षो में कुछ और ही तस्वीर सामने आई। बाबू महीप सिंह कांग्रेस के मेम्बर हो गये, नेताओं की निगाह में कांग्रेस के प्रिय व्यक्ति। यही नहीं जिला बोर्ड के सदस्य भी बन गये।''[2]

15 अगस्त को स्वतन्त्रता दिवस मनाया जाता है तो सोशलिस्ट रामकुमार, जनता के समक्ष इसी तथ्य को प्रस्तुत करता है :

''बड़े-बड़े जमींदार अब अपने को कहीं न पाकर कांग्रेस में शामिल हो रहे हैं। बहुत जोर-आजमायिश की कांग्रेस से संघर्ष करने की, कानून को तोड़ने की; किन्तु हार मानकर कांग्रेस में लौट रहे हैं और कांग्रेस उनको सम्मान दे रही है।''[3]

दीनदयाल की भी यही स्थति हैं। अंग्रेजों के समय वे अंग्रेजी राज्य के समर्थक थे और कांग्रेसी राज्य में वे कपड़े ओर राशन का कोटा पाने में सफल रहे:

''अंग्रेजी राज्य में ये सरकार के पक्के खुशामदियों में से थे इन्होंने गाँव-गिराँव के क्रान्तिकारियों और कांग्रेसियों के नाम सरकार को दिये थे। हर मौके पर दरोगा की जेब इन्होंने गरीब लोगों से भरवाई और कांग्रेसी राज्य में इन्हें कपड़े और राशन का कोटा मिला है। अंग्रेजी स्कूल खुला तो पच्चीस रूपये देकर उसके सभापति बन गए।''[4]

1- अपने लोग, पृ0-126
2- जल टूटता हुआ, पृ0-11
3- उपरोक्त, पृ0-15
4- उपरोक्त, पृ0-187

मूल्यहीनता की साकार प्रतिमा के रूप में रामकुमार को देखा जा सकता है। स्वतन्त्रता से पूर्व कांग्रेसी नेताओं की पुकार पर छात्र जीवन में युवक कांग्रेस का जो सदस्य बना, वही कांग्रेस का त्यागकर केवल इसलिए चला जाता है क्योंकि प्रसिद्ध वकील मिस्टर सेन की पुत्री जो कांग्रेस की कार्यकर्ता भी थी उसके प्रेम के उत्तर में गाल पर चाँटा मार देती है और उसको उसकी हैसियत की भी याद दिलाती है। उसे अब कांग्रेस पार्टी दकियानूसों की पार्टी नजर आती है:

''कुमार को लगा कि कांग्रेस पार्टी दकियानूसों की पार्टी है, विचारों की उदारता और क्रान्ति की गर्मी के स्थान पर इस पार्टी में परम्परावादिता और समझौतावादिता है, नेताओं के विचार देश के फोड़े को सहलाने वाले हैं चीरने वाले नहीं। वह सोशलिस्ट पार्टी में चला गया। उसके बहुत से मित्र तो पहले ही चले गये, उन्होंने इसका स्वागत किया। कुमार स्टडी-सर्किल में मार्क्सवादी सुनने लगा और अपने कच्चे अनुभव में मार्क्सवाद के समाजवादी सिद्धान्तों को ठूंसकर उगलने लगा। अब वह विद्रोही नेता हो गया। सारी परम्पराओं, वेशभूषा, रहन-सहन को बदल कर कुछ नया ओढ़ लिया, हर चली आती हुई चीज को बदलने की धुन में था''[1]

रामकुमार राजनीति में किसी प्रकार के मूल्यों को महत्व नहीं देता। दीनदयाल वगैरह कुंजू और बदमी को पकड़कर बदनाम करते हैं जिससें सतीश के चुनाव-प्रचार में कुंजू सहायक न हो सके तो रामकुमार दीनदयाल की पुत्री शारदा के साथ मास्टर का नाम जोड़कर बदनामी कराने का प्रस्ताव रखता है। सतीश गाँव की बदनामी को सबकी बदनामी मानता है। वह इसे नीति नहीं मानता तो रामकुमार उत्तर देता है कि राजनीति में सब कुछ क्षम्य होता है:

''नीति नहीं, राजनीति तो हुई। राजनीति में यह सब कुछ क्षम्य है, जायज है। आप लोग राजनीति और आदर्श को एक करके मत देखिए। इस भावुकता से राजनीति नहीं चलती, बहुत कुछ अप्रिय काम करने पड़ते हैं विजय के लिए। चाणक्य और कृष्ण का उदाहरण हमारे सामने है।''[2]

1- जल टूटता हुआ, पृ0 72-73
2- उपरोक्त, पृ0-296

रामकुमार अपने स्वार्थ को ही राजनीति बना लेता है। सरपंच के चुनाव में उसने सतीश का समर्थन करने का वादा किया था। किन्तु रामकुमार ने बंसी की जमीन पर कब्जा कर लिया और सतीश ने खुलकर उसका समर्थन नहीं किया तो रामकुमार उसका विरोधी हो गया। सतीश के ललकारने पर वह उत्तर देता है:

"चाचा जी राजनीति सीखिए, राजनीति का मूल्य और ही होता है"[1]

राजनीति में मूल्यहीनता की स्थिति तो यह हो गई कि साम्प्रदायिक दंगों के पश्चात् रिफ्यूजी कैम्प स्थापित होता है तो कांग्रेस के नेता अंग्रेजी सरकार से सप्लाई के ठेके लेते हैं। भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' में मनोहर लाल, नगर कांग्रेस अध्यक्ष बख्शी से कहता है:

"हमने भी बहुत देखे हैं, हमसे बुलवाइये बख्शी जी, हम सब जानते हैं। कांग्रेस के मेम्बर रिफ्यूजी कैम्प में सरकार से सप्लाई के ठेके ले रहे हैं। कहो तो नाम बता दूँ?"[2]

मूल्यहीनता का कारण यह है कि सभी जानते हैं कि साम्प्रदायिक दंगा अंग्रेजी सरकार ने कराया और जब उसकी इच्छा हुई तो रुकवाया भी उसी ने। ऐसी स्थित में भी सप्लाई का ठेका लेना मूल्यहीनता ही कहा जायेगा।

मन्नू भंडारी के राजनैतिक उपन्यास 'महाभोज' में राजनैतिक मूल्यहीनता को बड़े ही सूक्ष्म ढंग से चित्रित किया गया है। प्रदेश के मुख्यमंत्री दासाहब बहुत धैर्यशील और सादगी पसन्द व्यक्ति हैं। वे गांधी और नेहरू को अपनी प्रेरणा मानते हैं। गीता का उपदेश उनके जीवन का मूल मन्त्र है किन्तु उनके कार्य-कलाप उनकी मूल्यहीनता की अभिव्यक्ति कर जाते हैं। नगर से बीस मील दूर सरोहा गाँव में एक महीने पहले हरिजन टोले की झोंपड़ियाँ जला दी गयी थीं। जिसमें अनेक लोग जीवित ही जल गये थे। अब बिसेसर की हत्या कर दी गयी। इस घटनाक्रम का महत्वपूर्ण बिन्दू है डेढ़ महीने बाद होने वाले विधान सभा का उपचुनाव। इस उपचुनाव के सत्तारूढ़ पार्टी का टिकिट दासाहब ने अपने आदमी लखन को दिला दिया है और विरोधी पार्टी के भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू

1- जल टूटता हुआ, पृष्ठ- 328
2- तमस, पृष्ठ- 228

ने अपने आपको प्रत्याशी घोषित कर दिया है। सुकुल बाबू के प्रत्याशी बन जाने से उपचुनाव महत्वपूर्ण हो गया है।

मूल्यहीनता की स्थिति का चित्रण यहीं से आरम्भ हो जाता है। सुकुल बाबू दस वर्ष तक प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे और पिछले चुनाव में जनता ने उन्हें चुनकर विधान सभा में नहीं भेजा। वे चुनाव हार गये और उन्होंने सक्रिय राजनीति से संन्यास लेने की घोषणा कर दी किन्तु पहला उपचुनाव आते ही वे अपनी घोषणा को भूल गये:

"वैसे पिछले चुनाव में हारने के बाद सुकुल बाबू ने बाकायदा ऐलान कर दिया था कि वे अब सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लेंगे और जीवन के बचे हुए दिन जनता की सेवा में ही बितायेगें। पर पहला अवसर आते ही वे फिर लपक लिये। क्या करते, पद से उतरने के तुरन्त बाद उन्होंने यह महसूस किया कि जनता की सच्ची सेवा उच्च पद पर पर बैठकर ही जा सकती है, और जनता की सेवा का संकल्प उन्होंने अपनी उस कच्ची उम्र में लिया था, जिस उम्र के संकल्प-विकल्प अनचाहे ही आदमी के जीवन का अभिन्न अंग बन जाते हैं।"[1]

दूसरी ओर सत्तारूढ़ पार्टी के प्रत्याशी की स्थिति यह है कि वह स्वयं भी अपने आपको विधायक के लिए योग्य नहीं समझता किन्तु दासाहब की कृपा से टिकट मिला है और जीतेगा भी उन्हीं की कृपा से:

"यह तो लखन सिंह भी जानता है कि अपनी योग्यता से नहीं, दासाहब की कृपा से ही उसे, इस चुनाव के लिए टिकट मिला है। बहुत उठा-पटक करनी पड़ी है दासाहब को उसके लिये। सुकुल बाबू के मुकाबले तो उसकी कोई हस्ती नहीं; अपनी पार्टी के और लोगों के सामने भी बहुत हल्का पड़ रहा था। पर दासाहब ने बाँह थामी तो सारे विरोधियों को चित करते हुए ला पटका किनारे पर। वरना उसकी अपनी शिकायत तो पार्टी-दफ्तर में कुर्सियाँ उठाने-बिछाने तक की है यही उसका इतिहास भी रहा है। और यदि वह चुनाव जीता तो वह दासाहब की सूझ-बूझ और प्रयत्न से ही होगा।"[2]

1- महाभोज, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1989 पृ0-9
2- उपरोक्त, पृ0-18

दूसरी ओर सुकुल बाबू में सुरा-सुन्दरी दोनों के प्रति अनुराग है। जिस व्यक्ति में सुरा-सुन्दरी के प्रति अनुराग होगा, वह मूल्यों के प्रति अनुराग कैसे रख सकता है?

''सुरा-सुन्दरी में किसी तरह का कोई परहेज नहीं, बल्कि कहना चाहिए अनुरागी हैं दोनों के। जग के 'सकल पदारथ' न पाने वाले करम-हीनों में अपने को वे शुमार नहीं करवाना चाहते। मस्त-फक्कड़ हैं एकदम। निजी दोस्तों के बीच फूहड़ भाषा का प्रयोग करते हैं धड़ल्ले से। गाली-गलोज से कोई परहेज नहीं। उनका खयाल है कि वाक्य में गाली का बन्द लगा कि बात में धार आयी।''[1]

मुख्यमंत्री साहब जो कहते है, वह करते नहीं। लखन दासाहब से पूछता है कि उन्होंने पुलिस के डी0आई0जी0 को कोई संकेत नहीं दिया कि बिसू की मौत की रिपोर्ट तैयार करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखा जाये तो दासाहब उसे डॉट ही देते हैं:

''कैसी बातें करते हो, लखन? थोड़ी सख्त आवाज में दासाहब ने कहा, 'पुलिस वालों का काम है कि बयानों और प्रमाणों के आधार पर रिपोर्ट तैयार करें और ईमानदारी से करें। इसी बात की तनख्वाह दी जाती है उन्हें। ऊपर से आदेश थोपा जायेगा तो न्याय कैसे करेंगे।? इन्हीं स्थितियों के खिलाफ लड़ने के लिए तो इतनी बड़ी क्रान्ति की हमने! और तुम ....''[2]

वही दासाहब ईमानदारी से रिपोर्ट तैयार करने वाले एस0 पी0 सक्सैना को मुअत्तिल करा देते हैं। डी0 आई0 जी0 से कहा जाता है कि उनकी रिपोर्ट में भी कमियाँ हैं। बिसेसर की हत्या के लिए वे बिन्दा को जिम्मेदार ठहरा देते हैं, अपने आदमी को बचाने के लिए वे डी0 आई0 जी0 से कहते हैं कि :

''क्रिमिनल साइकॉलॉजी पर गहरी पकड़ और गहन अध्ययन तो नहीं है मेरा, फिर भी थोड़ा अधिकार जरूर है! तुम लोग तो मास्टर हो इस लाइन के ....।' और अपनी नजरें सीधे सिन्हा के चहेरे पर गड़ा दीं।

''सिन्हा दासाहब को असली मुद्दे तक पहुँचने में ऐसे डूबे कि कुछ भी नहीं कहा गया उत्तर में। पर दासाहब को अपेक्षा भी नहीं थी शायद उन्होंने अपनी बात जारी रखी -

---

1- महाभोज, पृ0-23-24

2- तदैव, पृष्ठ-19

''चतुर अपराधी ही सबसे अधिक आक्रामक मुद्रा अपनाता है कभी-कभी दासाहब एक क्षण को रूके और सीधे ही कहा -

''घटना वाले दिन बिन्दा का गाँव से अनुपस्थित होना ओर घटना के बाद उसका अतिरिक्त रूप से आक्रामक रवैया? सन्देह के लिए बहुत गुंजाइश नहीं रह जाती।''[1]

डी० आई० जी० विस्मित रह जाता है, पर दासाहब पर उसके विस्मित होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दासाहब जानते हैं। कि उसे आई० जी० का पद चाहिए और वह आई० जी० का पद तभी पा सकता है, जब उन्हें प्रसन्न रखे, इसलिए वे अपनी बाणी में आक्रोश घोलकर उससे कहते हैं :

''आश्चर्य है, सक्सैना या आपको यह बात सूझी तक नहीं। खैर एक बार फिर सारे मामले पर नजर डालिए-खुले दिमाग और पैनी नजर से। मुझे बिसू के हत्यारे को पकड़ना है ..... वचन दिया है मैंने गाँव वालों को और अब आप पर छोड़ रहा हूँ यह काम ....।''[2] दासाहब प्रत्येक विरोधी परिस्थिति को अपनी ओर मोड़ लेने में सक्षम होते हैं। पाँच मंत्री त्यागपत्र देने के लिए तैयार होते हैं। वे पहले बापट और मेहता को अपनी और तोड़ लेते हैं और फिर राव और चौधरी से बात करते हैं। वे उन दोनों को यह समझाने में सफल रहते हैं कि लोचन सुकुल बाबू से मोल-भाव कर रहा है, ऐसी स्थिति वह उन्हें क्या कुछ दे पायेगा। वे उन दोनों से कहते है :

''अपने साथ रखकर हवा में खूब ऊँचें तक उड़ना सिखा दिया है लोचन ने तुम लोगों को भी। देखो भाई, मैं बहुत ऊँचे तक तो नहीं ले जा सकता, पर जहाँ तक ले जाता हूँ वहाँ खड़े होने के लिए कम से कम पाँव के नीचे जमीन जरूर देता हूँ। मेरे साथ चलने वालों के सामने औंधे मुँह गिरने का खतरा कतई नहीं रहता। अब तुम सोच लो।''[3]

पाँचवे मंत्री लोचन को मंत्रिमंडल से बर्खास्त करने के अपने निर्णय को वे उन्हीं के समक्ष खोल देते है। वे कहते है :

1- महाभोज, पृ0-144
2- उपर्युक्त, पृ0-144
3- उपर्युक्त, पृ0-135

''देखो, अनुशासन मेरे मंत्रिमंडल की पहली और अनिवार्य शर्त है। लोचन के रवैये से मैं ही नहीं, अप्पा साहब तक बहुत दुःखी और परेशान हैं। आखिर हमें उसे बर्खास्त करने का निर्णय लेना ही पड़ा। कल पत्र चला जायेगा।''[1]

राजनीति में मूल्यहीनता की स्थिति सर्वत्र व्याप्त दिखाई देती है, एक और छोटे से कस्बे का राजनीतिज्ञ भी मूल्यहीनता की स्थिति में पहुँच गया है। श्री लाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' में मूल्यहीनता की इस स्थिति का सटीक चित्रण हुआ है। गावँ-सभा का प्रधान किसी भी भूमि को अपने नाम कराकर उसे किसी अन्य के नाम कर देता है अथवा उसका विक्रय करके धन कमा लेता है:

''गाँव के बाहर एक लम्बा-चौड़ा मैदान था, जो धीरे-धीरे ऊसर बनता जा रहा था। अब उसमें घास तक नहीं उगती थी। उसे देखते ही लगता था, आचार्य विनोबा भावे को दान के रूप में देने के लिए यह आर्दश जमीन है। और यही हुआ भी था। दो साल पहले इस मैदान को भूदान-आन्दोलन में दे दिया गया था। वहाँ से वह दान के रूप में गाँव-सभा को वापस मिला। फिर गाँव-सभा ने इसे दान के रूप में प्रधान को दिया। प्रधान ने दान के रूप में इसे पहले अपने रिश्तेदारों और दोस्तों को दिया और उसके बचे-खुचे हिस्से को सीधा क्रय-विक्रय के सिद्धान्त पर कुछ गरीबों और भूमिहीनों को दे दिया। बाद में पता चला कि जो हिस्सा इस तरह गरीबों और भूमिहीनों को मिला था वह मैदान में शामिल न था बल्कि किसी किसान की जमीन में पड़ता था। अतः उसे लेकर मुकदमेबाजी हुई, जो अब भी हो रही थी और आशा थी कि अभी होती रहेगी।''[2]

गाँव-सभा में ही नहीं जिला-बोर्ड में भी इसी प्रकार के कार्य होते थे। जिला बोर्ड के चेयरमैन छंगामल ने फर्जी प्रस्ताव बनाकर बोर्ड के डाक-बंगले को एक कॉलेज की प्रबन्धकारिणी समिति के नाम इस शर्त पर लिख दिया कि कॉलेज का नाम छंगामल विद्यालय रखा जायेगा।

छंगामल कभी जिला बोर्ड के चेयरमैन थे। एक फर्जी प्रस्ताव लिखवाकर उन्होंने बोर्ड के डाकबंगले को इस कॉलेज की प्रबन्ध समिति के नाम उस समय लिख दिया था जब

1- महाभोज, पृ0-1
2- राग-दरबारी, पृ0-187-188

कॉलेज के पास प्रबन्ध समिति को छोड़कर और कुछ नहीं था! लिखने की शर्त के अनुसार कॉलेज का नाम छंगामल विद्यालय पड़ गया।''[1]

सनीचरा अभी ग्राम प्रधान नहीं बना किन्तु उसने पश्चिम की ओर की ऊसर भूमि पर कॉआप्रेटिव फार्म खोलने का निर्णय किया और उसे ब्लाक से पास भी कर लिया। वह बताता है। कि: ''हमारे हाथ लगना है पहलवान? जो सोसाइटी बनेगी, उसे फार्म का काम चालू करने के लिये पाँच सौ रुपया मिलेगा, यही सब जगह का रेट है। जो मिलना है, सोसाइयटी को मिलेगा।''[2]

इसी प्रकार गाँव प्रधान जहाँ कुआँ पहले ही होता है, वहाँ कूप निर्माण कराने के कागज तैयार करा देता है :

''वास्तव में कुआँ था जो वहाँ पहले ही से, पर उन्होंने उसकी जीर्णोद्धार कराके, जमाने के चलन के हिसाब से सरकारी कागजों से कूप-निर्माण का इन्दराज करा दिया था जो कि अच्छा अनुदान खींचने के लिए नैतिक तो नहीं पर एक प्रकार की राजनीतिक कार्रवाई थी''[3]

सनीचरा ने गाँव प्रधान बनने के पश्चात् एक खाली पड़े मैदान के एक कोने पर लकड़ी का एक केबिन खड़ा करके परचून की दुकान आरम्भ कर दी जिसमें छिपाकर अंग्रेजी दवाइयाँ, अमेरिकी दूध का पाउडर तथा गाँजा, भांग और चरस भी बेंची जाती थी। :

''इस कोटि के माल में बहुत सी-अंग्रेजी दवाइयाँ थी जिनका उद्गम स्थानीय अस्पताल के स्टोर में था। इन्हीं में पाउडर वाले अमेरिकी दूध के डिब्बे जिनका उद्गम स्थानीय प्राईमरी स्कूल में था। इस तरह के पदार्थो में कुछ वे पदार्थ आते हैं जो सिर्फ छिपाकर खरीदे जा सकते थे और छिपकर ही इस्तेमाल हो सकते थे। इनमें गाँजा, भांग और चरस थी।[4]

1- राग दरबारी, पृ0-25
2- उपरोक्त, पृ0-197
3- उपरोक्त , पृ0-260
4- उपरोक्त, पृ0-340

गाँव प्रधान बनकर दूसरे का नम्बर काटकर अपने खेत में नहर का पानी देना तो छोटी-सी बात है। छोटे पहलवान और सनीचरा के वार्तालाप से यह स्पष्ट हो जाता है :

"छोटे ने सर उठाकर कुछ दूर देखने की कोशिश की। बोले, 'नहर के पानी का आज तुम्हारा नम्बर तो था नहीं, कल रात तो चुरइया के खेत में लगा था।"

"सनीचर ने कहा, 'पहलवान, प्रधान बनाकर हमी पर नम्बर लगाओगे? कम से कम इतना तो रहने दो कि जब जरूरत पड़े अपना खेत तो सींच लें"[1]

इसी प्रकार दो व्यक्तियों का झगड़ा मिटाने के लिए धन लिया जाता है। दरोगा जी ने जोगनाथ को चोरी के आरोप में जेल भिजवा दिया था। दो महीने बिना जमानत के उसे कारागार में रहना पड़ा। न्यायालय से वह निर्दोष रिहा हुआ। उसने दरोगा जी पर आठ हजार रूपये का मानहानि का मुकदमा ठोक दिया। साप्ताहिक पत्र में पूरा मामला प्रकाशित हो गया। आफीसरों ने उससे मामले में फैसला करने को कहा। वह फैसले के लिए गाँव आता है तो जोगनाथ कहता है :

"महाराज, ये कोई मेरा अपना मामला तो नहीं। शिवपाल गंज की इज्जत का मामला है। इसीलिए गाँव सभा अपनी तरफ से मुकद्दमे पर खर्च कर रही है, सुलह भी गाँव सभा के ही प्रस्ताव पर होगी। मैं तो दरोगा जी से तब भी छोटा था, अब भी छोटा हूँ। हाकिम, हाकिम ही रहेगा, पर मुझे कुछ नहीं कहना है, आप जो कह देंगे वही होगा।"[2]

निश्चित होता है कि गांव प्रधान फैसला करायेगा। फैसला वैद्य जी के दवाखाने में होता है। वैद्य जी बद्री पहलवान को बताते हैं :

"दरोगा जी ने जो दिया था वह थोड़ा तो जोगनाथ को दे दिया गया है। चार-पाँच सौ बचता है। वह जनता का है।"[3]

कस्बों की राजनीति पूरी तरह मूल्यहीनता की राजनीति है। वैद्य जी कोआप्रेटिव सोसाइटी, कॉलेज की मैनेजरी और गाँव-सभा के माध्यम से राजनीति करते हैं। वे अपने

1- राग दरबारी, पृ0- 350
2- वही, पृ0- 355
3- वही, पृ0- 365

रिश्तेदारों को स्कूल में अध्यापक नियुक्त करते हैं, कोआपरेटिव सोसायटी का प्रधान अपने बड़े पुत्र को बनवा देते हैं और गाँव-सभा के प्रधान पद पर अपने अभिन्न शिष्य मंगलप्रसाद उर्फ सनीचरा को जितवा देते हैं। यही राजनीति पूरे देश की राजनीति का प्रतीक बन जाती है।

(ग) चुनाव और राजनीति :

साठोत्तरी राजनीति में चुनाव सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। चुनाव की राजनीति में भ्रष्टाचार और गुण्डागर्दी का सबसे अधिक जोर हुआ। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व भी चुनावों को सर्वाधिक महत्व दिया जाता था। स्वतन्त्रता से पूर्व की स्थिति का चित्रण नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में देखने को मिलता है। कांग्रेस का चुनाव होता है। तो बनारस के ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह नगर कांग्रेस के अध्यक्ष चुने जाते हैं, ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह जमींदार हैं। और काशी में अपने मकान हैं। जेल के झूठे संस्मरण वे अपने साप्ताहिक में प्रकाशित कराते रहे। श्रीधर को उनके विरोध का बदला भी मिला :

"इस बीच कांग्रेस के पदाधिकारियों का चुनाव हुआ और ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह नगर कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये और फलस्वरूप उनका ही आदमी श्रीधर बाबू की जगह आफिस सेक्रेटरी रखा गया। श्रीधर बाबू गाँधी भंडार में लगा दिये गये।"[1]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति की आशा होते ही कांग्रेसियों में चुनाव की सरगर्मी हो जाती है :

"अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति यही हो रही थी कि भारत स्वाधीन होकर रहेगा। और जब स्वाधीनता मिल ही रही है आज या कल, तो फिर मंत्री कौन-कौन होंगे? चुनावों में सीट किसे मिलेगी? दिल्ली कौन जाएगा तथा प्रादेशिक विधान सभाओं में कौन जायेगा? और इस खींचातानी में कांग्रेस संस्था, कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमों पर भला किसका ध्यान रहता? लोगों का दबा असन्तोष यह भी था कि श्रीधर बाबू कहीं राजनीति में घुसकर कोई पद-वद की कोशिश तो नहीं कर रहे हैं?"[2]

चुनाव आने से पूर्व ही उठा-पटक आरम्भ हो जाती है, उसी का संकेत यहाँ किया

1- यह पथ बन्धु था, पृ0-495
2- तदैव, पृ0-585

गया है। चुनाव में राजनीतिक मूल्यों का विघटन होता ही है। रामदरश मिश्र के 'अपने लोग' में संसद के एक उपचुनाव का वर्णन किया है जो आम चुनाव की स्थिति का ही प्रतिनिधित्व करता है। गोरखपुर के इस उपचुनाव में कांग्रेस, जनसंघ और सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार हैं। कांग्रेस के उम्मीदवार का धन महत्वपूर्ण है तो जनसंघ के उम्मीदवार का संस्कृतिवाद। दोनों ओर से आरोप-प्रत्यारोप हैः

"पोस्टर युद्ध हो गया है। शहर की दीवारें नित सुबह नये पोस्टर पहन कर जागती हैं। भोपू बारह बजे रात तक चीखते हैं। एक भोंपू धर्म-भ्रष्टता, महंगाई, भ्रष्टचार, बेकारी, जमाखोरी, रूस-परस्ती, बेटा-बहूवाद का भोंपू की आवाजें उछालता हुआ कांग्रेस की बखिया उधेड़ रहा है और कांग्रेस का भोंपू प्रतिक्रियावाद और सम्प्रदायवाद का शोर उछालता हुआ जनसंघको घसीट रहा है। एक ओर उद्योगपति मंगल सिंह का ध्यान दौड़ रहा है, और दूसरी ओर टूटे हुए जमींदार वंशीधर ओझा का हिन्दू संस्कृतिवाद और धर्मवाद। मंगल सिंह की जीपें और कारें देहात की कच्ची सड़कों पर शोर करती हुई भाग रही हैं दूसरी ओर ओझा की डनलप बैलगाड़ी तथा हाथी दस-बीस लठैतों से घिरे हुए सरक रहे हैं। ओझा ने चार-पाँच बीघे खेत दिये हैं, जनसंघ ने भी कुछ देने का वायदा किया है।"[1]

चुनाव से पूर्व सभाएं होती हैं। आम सभाओं में एक दूसरे पर छींटाकशी तो होती ही है, उन सभाओं में गड़बड़ी फैलाने का प्रयास भी किया जाता है। गोरखपुर के संसदीय उपचुनाव में भी यह सब होता है :

"चुनाव ज्यों-ज्यों नजदीक आता जा रहा था त्यों-त्यों आरोप-प्रत्यारोपों की गर्मी बढ़ती जा रही थी। दोनों दलों के बड़े-बड़े नेता उनकी अपनी-अपनी सभाओं में बोल गये थे। दोनों की सभाओं में गड़बड़ियाँ मचायी गयी थीं।"[2]

कांग्रेस चुनाव में जातिवाद और पैसावाद को आधार बनाती है और वही उसकी जीत का कारण बनता है। डॉ0 सूर्यकुमार कांग्रेस के प्रत्याशी मंगल सिंह से कहता है :

1- अपने लोग, पृ0-293
2- तदैव, पृ0-309

"शंकर कॉलेज में जनसंघ के नेता हैं बलराम सिंह शंकर कॉलेज में ब्राह्मण और ठाकुरों में तनाव रहता है। आप ठाकुर हैं, और आपके प्रतिद्वन्दी जनसंघी उम्मीदवार वंशीधर ओझा ब्राह्मण है। बलराम सिंह ठाकुरवाद के आधार पर आत्मीय बनाकर उनसे वोट लीजिए और अपना समर्थन कराइए तथा इस मामले को दबवा दीजिए। यह निश्चित है कि इस पोस्टरबाजी में मुख्य हाथ उन्हीं का है। मैं ब्राह्मणों का मोर्चा संभालता हूँ। खलील साहब, आप मुसलमानों का मैदान जीतिए। सब लोग अपनी-अपनी जातियों को संभालें क्योंकि जातिवाद और पैसावाद दोही आधारों पर जनतंत्र की लड़ाई जीती जा सकती है।"[1]

सांस्कृतिक पक्ष के लिए चुनाव से पूर्व कवि-सम्मेलन और मुशायरे का आयोजन भी किया जाता है। कवियों और शायरों को अच्छा पेमेन्ट देने का निर्णय भी किया जाता है। कवि सम्मेलन का उद्घाटन करने शिक्षा-मंत्री आते हैं। शिक्षा-मंत्री का दृष्टिकोण राजनैतिक होता है :

"डॉक्टर सूर्य के स्वागत करने के बाद मंत्री जी ने कवि-सम्मेलन का उद्घाटन किया। कविता का थोड़ा महत्व बताने के बाद वे राजनीति पर आ गये और कांग्रेस का गौरव-गान करने लगे, फिर विरोधी पार्टियों की बखिया उधेड़ने लगे और समाजवाद का नारा कवि-सम्मेलन का उद्घाटन कर दिया।"[2]

ग्राम पंचायतों के चुनाव ने तो गाँव का सारा परिदृश्य ही बदल दिया। पहले गाँवों में लोग खुलकर समर्थन अथवा विरोध करते थे किन्तु अब तो पता ही नहीं चल पाता कि कौन किसका समर्थन कर रहा है अथवा विरोध कर रहा है। नगरों की जटिलता अब गाँवों में भी देखने को मिलती है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में सरपंच के चुनाव के समय की यही स्थिति है :

"चुनाव के दिन काफी लोग एकत्र हुए थे देखने के लिए, मगर यह ज्ञात नहीं हो रहा था कि कौन किसके पक्ष में है। सतीश अपनी स्पष्टवादिता के कारण परेशान था

1- अपने लोग, पृ0-325

2- वही, पृ0-338

कि लोग इतने गुमसुम क्यों है। सबसे अधिक परेशान अमलेश जी थे जो जमाना देख चुके थे। वह भी एक जमाना था कि लोग ललकार कर मैत्री और दुश्मनी करते थे, समर्थन और विरोध करते थे, अपनी बात पर मर मिटते थे। वही गाँव है लेकिन इसे समझना मुश्किल हो गया है। शहरों की सी जटिलता यहाँ भी आ गयी है। भाई-भतीजों को भी समझना कठिन हो रहा है....... राजनीति की स्वार्थगत दुरूहता यहाँ इस कदर फैल गयी है, यह बात सभी के सामने आज जाने-अनजाने प्रत्यक्ष हो रही थी। कुमार को कुछ नया नहीं लग रहा था। वह गाँव में पैदा होकर भी जीया है शहर की राजनीति में। वह इसीलिए गाँव की इस नयी परिस्थिति की न तो व्याख्या कर रहा था और न आश्चर्य।''[1]

पंचायत के चुनावों की सरगर्मी आरम्भ होती है तो सम्भावित पंचों के नामों की चर्चा होती है और उनके गुण-दोषों को परखा जाता है। हर व्यक्ति अपने दृष्टिकोण से देखता है इसलिए सर्वमान्य नाम तय नहीं हो सकता। तिवारीपुर के नागरिक भी विभिन्न नामों पर विचार करते है :

''दीनदयाल, सतीश, रामकुमार, अमलेश जी, जग्गू हरिजन और बहुतों के नाम .. ...। गाँव वालों को आजादी के बाद फिर ऐसा लग रहा था कि वे बहुत बड़ा निर्णय लेने जा रहे हैं। इसलिए सोचं-समझ कर कदम उठाने की आवश्यकता वे महसूस कर रहे थे ... ... पर गर्मी थी। हितों की व्याख्या आदमी सम्बन्धों से कर लेता है इसलिए हर आदमी का निर्णय एक बिन्दू पर नहीं मिल पाता था। दीनदयाल बेईमान तो है लेकिन है अपनी पट्टीदारी में, मौके-बेमौके काम आयेंगे। कुछ भी हो बेचारे मुलायम आदमी हैं और पट्टी का ख्याल करने वाले ....। मगर नहीं, सतीश ठीक रहेगा ..... बाबू महीप सिंह की नौकरी करते हुए भी उनका ताव नहीं सह सका, वह सच का हिमायती है, जरा कड़े मिजाज का तो है लेकिन कड़ा मिजाज सत्य के निर्बाह के लिए होना ही चाहिए ....![2]

गाँव की राजनीति, जाति की राजनीति और स्वार्थ की राजनीति में लोग मजा लेते हैं। मउगा दलसिंगार आरम्भ में यहीं कार्य करता है। कभी वह किसी की मर्जी से जग्गू के लिए

1- जल टूटता हुआ, पृ0-331
2- उपरोक्त, पृ0-215-216

वोट माँगता है, कभी महावीर दुबे से और फिर दीनदयाल के यहाँ पहुँचकर कहता है :

"हाय मइया, सुना है दीनदयाल भाई आपने? पंचायत में कई चमार, कई तेली और कई अहिर खड़े हो रहे हैं। सतीश और कुमार दोनों छोटी जातियों को उकसा रहे हैं। कह रहे हैं, जातियों को पंचायत राज में समान अधिकार मिलना चाहिए। हाय मइया, लोप हो गया, चमार-सियार हमारा-आपका हल जोतते हैं वे ऊँचे बन कर हमारा फैसला करेंगे, हाय मइया, जो-जो न करें आज-कल के लौडे .....।[1]

चुनाव के हथकंडे भी विचित्र होते हैं दीनदयाल इन हथकंडों को जानता है, इसलिए वह मउगा दलसिंगार को अपना प्रचारक बनाता है जो औरतों में जाकर उसका प्रचार करता है। विभिन्न जातियों के वोटरों को अपनी ओर आकर्षित करने के प्रयास किये जाते हैं। और दूसरे को कमजोर करने के लिए उसके पक्ष के लोगों को प्रत्याशी बनाने का मार्ग अपनाया जाता है :

"दीनदयाल ने दलसिंगार के द्वारा चमरौटी के हरिजनों को फोड़ना-फंसाना शुरू किया, गाँव के कुछ तटस्थ लोगों को अपनी ओर लेना आरम्भ किया। मास्टर सुग्गन शुरू किया, महावीर वगैरह जो तटस्थ थे उन्हें भी चुनाव में खड़े होने के लिए उत्साहित किया। कुंजू को भी लपेटना चाहा। और एक थे फेंकू बाबा जो थे तो सतीश के खानदान के थे। सतीश के समर्थक, लेकिन बड़े महत्वाकांक्षी और फक्कड़ किस्म के। दीनदयाल के वे जानी-दुश्मन थे, उन्हीं के पड़ोस में। मगर दीन दयाल बड़े ही उस्ताद थे। मौका पड़ने पर उन्हें मक्खी निगलने में संकोच और घृणा नहीं होती थी उन्होंने एक दिन मौका पाकर फेंकू बाबा को उकसा दिया।"[2]

महत्वांकाक्षी फेंकू बाबा सभापति के पद का चुनाव लड़ने का प्रस्ताव लेकर सतीश के पास जाते हैं। सतीश उन्हें समझाता है कि सभापति पद के लिए दो प्रत्याशी हैं दीनदयाल और रघुनाथ। वे रघुनाथ का समर्थन कर रहे हैं। उसका कारण समझाते हुए सतीश कहता है:

1- जल टूटता हुआ, पृ0-218
2- तदैव, पृ0-221

"आप बात नहीं समझते हैं फेंकू काका, राजनीति अभी से शुरू हो गयी है। लोगों ने आपको बहका दिया है, लगता है। बात समझिए- देखिये दीनदयाल भाई को तो दुनियाँ जानती है कि वे कैसे हैं, उनका सबसे बड़ा सिपाही है मउगा दलसिंगार, जो औरतों के बीच नीचता भरी बातें फैलाता घूम रहा है। वे खुद भी कैसे हैं जग-जाहिर है लेकिन हरिजन टोली पर उनका काफी अधिकार है, इसलिए नहीं कि हरिजन बस्ती उन्हें बड़ा प्यार करती है, बल्कि इसलिए कि काफी हरिजन उन्हीं की जमीन में बसे हुए हैं, स्वराज्य मिलने के बाद भी यह आंतक अभी गया नहीं। पहले की पंचायतों में उन्होंने क्या-क्या किया है यह सभी लोग जानते हैं। रघुनाथ भाई दूसरी पट्टी के तो हैं मगर हरिजन बस्ती पर उनका भी समान अधिकार है, उनकी जमीन में काफी हरिजन बसे हुए हैं। दूसरे, उनकी पट्टी के लोगों के बीच उनका बड़ा मान है। और वैसे भी वे इन्साफ-पसन्द आदमी हैं। अगर उनका समर्थन नहीं किया गया तो दीनदयाल सभापति हो जायेंगे।"[1]

सतीश सभापति के पद का चुनाव नहीं लड़ना चाहता क्योंकि वह सरपंच बनना चाहता है। वह जमींदार महीप के यहाँ काम करता था। और महीप सिंह स्वयं सरपंच बनना चाहते थे। महीप सिंह सतीश का सरपंच बनना सहन नहीं कर सकते इसलिए उसे छुट्टी न देकर इधर-उधर उलझाये रखना चाहते हैं। दीनदयाल महीपसिंह का नाम लेकर सुग्गन मास्टर को पंचायत का चुनाव लड़ाने को उकसाता है सुग्गन मास्टर महीप सिंह को नाराज नहीं कर सकता। क्योंकि उसे डर है कि उसका तबादला दूर करा दिया जायेगा।

दीनदयाल महावीर दुबे को तोड़ने के लिए उसे दस रूपये का एक नोट देता है। अगले दिन महावीर दुबे दीनदयाल का समर्थन करने का वायदा करता है। दीनदयाल मउगा दलसिंगार से यह समाचार पाकर कुंजू गीत बना-बना कर सतीश का प्रचार कर रहा है, परेशान होता है। दलसिंगार एक षड्यन्त्र रचने की सलाह देता है:

"मै जानता हूँ क्या करना होगा? हो-हल्ला करना होगा। कुंजुवा और बदमी कहारन को एक साथ पकड़वाकर तमाशे का रूख मोड़ना होगा और रघुनाथ के खिलाफ कुछ उड़ाना होगा-आप तो जानते ही हैं। बड़ा कुपदी है वह, भौजाई के साथ...... समझे न।"[2]

1- जल टूटता हुआ, पृ0-223-224
2- तदैव, पृ0-266

षड्यन्त्र किया जाता हैं। दलसिंगार बहाने से कुंजू को बताता है कि बदमी कहारिन को साँप ने काटा है और वे लोग ओझा को बुलाने जा रहे हैं। कुंजू आवेश में आकर बदमी के घर पहुँच जाता है तो वर्षा हो रही थी। बदमी उसे अपनी धोती बदलने को देती है। प्रातःकाल दीनदयाल, मउगा दलसिंगार के साथ लोगों की भीड़ और दरोगा तथा उसके साथ दो सिपाही आते हैं। उन पर खेत काटने का आरोप लगाया जाता है। सतीश आदि आकर कुंजू का बचाव करने का प्रयास करते हैं। रामकुमार भी सतीश का साथ देता है। उसी समय समाचार मिलता है कि रात को कुंजू का खेत काट लिया गया। सतीश कहता है

"दरोगा साहब, खेत काटने में उस्ताद घाट पार के अहीर ही नहीं हैं बल्कि तिवारीपुर के तिवारी लोग भी हैं। और कुंजू को बदमी के घर भेजना और उसका खेत कटा लेना, ये दोनों ही एक ही षड्यन्त्र के दो पहलू हैं। अब आप मामले पर दूसरी तरह से गौर कीजिए। पूछिए, दलसिंगार ने क्यों कुंजू को खेत पर से भेजा झूठ बोलकर कि बदमी को साँप काटे है। पूछिए दलसिंगार से।"[1]

परिणामतः कुंजू छोड़ दिया जाता है। इसी प्रकार गुरदीन को भेजकर सतीश का खेत कटवाने और रोकने-रोकन वाले को साफ करने के लिए भेजा जाता है। गुरदीप सतीश को पहचानकर क्षमा माँगता है।

चुनाव होता है और सतीश, रामकुमार,जग्गू हरिजन झिलमिल तेली, मास्टर सुग्गन को पंचायत के सदस्य के रूप में चुन लिया जाता है और रघुनाथ, सभापति के रूप में निर्वाचित होता है। सरपंच के चुनाव में रामकुमार, सतीश का विरोधी हो जाता है। सरपंच के चुनाव में कुछ स्थिति स्पष्ट नहीं हो पा रही थी किन्तु सतीश सरपंच के लिए चुन लिया जाता है।

चुनाव की राजनीति को आधार बना कर लिखा गया मन्नू भंडारी का उपन्यास 'महाभोज' है, जिसमें सभा के एक उपचुनाव के समय के हथकंडों का विशद चित्रण किया गया है। सरोहा में डेढ़ महीने बाद उपचुनाव होना है और उसी समय बिसेसर की हत्या कर

1- जल टूटता हुआ, पृ0-287

दी जाती है। इस अवसर पर यह घटना महत्वपूर्ण हो जाती है, इसलिए विरोधी दल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू यहाँ से प्रत्याशी बन जाते हैः

"सच पूछा जाये तो बड़ा न आदमी होता है, न घटना। यह तो बस, मौक-मौके की बात होती है। मौका ही ऐसा आ पड़ा है। इस समय तो सरोहा में पत्ते का हिलना भी घटना की अहमियत रखता है। डेढ़ महीने बाद ही तो चुनाव है। यों उप-चुनाव विधान-सभा की एक सीट-भर का, फिर भी है बहुत महत्वपूर्ण। इस सीट के लिए भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू खुद खड़े हो रहे हैं। सुकुल बाबू क्या खड़े हो रहें है, समझ लीजिए पिछले चुनाव में हारी हुई पूरी की पूरी पार्टी खड़ी हो रही है, खम ठोककर..... ललकारती हुई-सत्तारूढ़ पार्टी के पूरे अस्तित्व को चुनौती देती हुई।"[1]

दूसरी ओर मुख्यमंत्री दासाहब ने अपने व्यक्ति लखन को सत्तारूढ़ दल की टिकट दिलवायी है जिसका दल में कुछ अस्तित्व था ही नहीं। वह पार्टी दफ्तर में कुर्सियां जमाने-बिछाने का ही काम करता था। इसलिए वह बिसेसर की हत्या से बहुत विचलित है। उसे लगता है कि सुकुल बाबू हरिजनों के सारे वोट ले जायेगें और वह चुनाव हार जायेगा। वह दासाहब से कड़वी से कड़वी बात कहता है किन्तु दासाहब विचलित नहीं होते। वह सुकुल बाबू की मीटिंग की सूचना देता हैः

"नौ तारीख को यानि तीन दिन बाद ही मीटिंग का ऐलान हो गया है उनकी तरफ से। सुकुल जी खुद आ रहे हैं, भाषण देने। जानते तो सुकुल जी के भाषण का करिश्मा। आग उगलते हैं, आग! गाँव वैसे ही सन्नाया बैठा है; एक ही भाषण में बहाकर ले जायेंगे सारे गाँव को अपने साथ।"[2]

दासाहब सुकुल बाबू के बाद अपनी मीटिंग रखवाने का आदेश देते हैः

"सुकुल बाबू की मीटिंग नौ तारीख को है? तो ऐसा करो कि चार-पाँच दिन बाद अपनी भी एक मीटिंग रख लो। बात करेंगे गाँव वालों से। वैसे भी एक हादसा हुआ है-जाना तो चाहिए ही। बिसू के माँ-बाप को भी तो तसल्ली देना चाहिए। बेचारे....."[3]

1- महाभोज, पृ0 - 9
2- उपरोक्त, पृ0 - 15
3- उपरोक्त, पृ0 - 22

सुकुल बाबू की मीटिंग होती है। मीटिंग में वे प्रमुख मुद्दा बिसू की मौत का ही बनाते हैं। वे इसी आधार पर हरिजनों के वोट पावर जीतने की कामना करते हैं। वे अपने भाषण में कहते है कि:

''खड़ा हुआ हूँ आप लोगों के हक की लड़ाई लड़ने के लिए। बिसू की मौत का हिसाब पूँछने के लिए। बात केवल बिसू की मौत की नहीं है...... यह आप लोगों के जिन्दा रहने का सवाल है..... अपने पूरे हक के साथ जिन्दा रहने का। यह मौत कुछ हरिजनों की या बिसू की नहीं..... आपके जिन्दा रहने के हक की मौत है। आपका यह हक जरा-से स्वार्थ के लिए गाँव के धनी किसानों को बेच दिया गया है.... और यही हक मुझे आपको वापस दिलवाना है। जुलुम ने आप लोगों के हौसले तोड़ दिये हैं, इसलिए मैं लड़ूँगा आपकी यह लड़ाई..... आखिरी दम तक लड़ूँगा। आप लोग साथ देंगे तो भी......नहीं देंगे तो भी....[1]

सुकुल बाबू को गाँव से रवाना होने के पश्चात् बिसू के पिता की याद आती है। वापस लौटते हैं किन्तु उन्हें घर पर कोई नहीं मिलता।

सुकुल बाबू के पास दो प्रमुख कार्यकर्ता हैं-बिहारी और काशी।काशी ने मत-विभाज्य के लिए और सुकुल बाबू की विजय के लिए एक पाँसा फेंका है कि दासाहब के प्रमुख व्यक्ति जोरावर को चुनाव लड़ने के लिए तैयार कर लिया है। काशी बताता है कि:

''यही तो समझाया उसे कि यहीं रहा तो जिन्दगी-भर गुलामी करनी पड़ेगी उसे दासाहब की। पैसा भी दो और अँगूठे के नीचे भी रहो। एक बार जीतकर विधानसभा में पहुँच जा, फिर दासाहब को मुट्ठी में रखना। बस, बात गले उतर गयी उसके।' फिर थोड़ा रूककर बोले, 'जाट आदमी है, ऊपर से पैसे ने भेजे में गरमी भर रखी है बुरी तरह गुलामी करना तो दूर, गुलामी की बात भी रास नहीं आती उसे कि दासाहब जड़ काटने पर लगे हैं। जितना फायदा उठाना था, उठा लिया तेरा।''[2]

जोरावर चुनाव लड़ने के लिए तैयार अवश्य हो जाता है किन्तु दासाहब के समझाने

1- महाभोज, पृ0-30-31
2- उपर्युक्त, पृ0-78

पर वह अपना नामांकन पत्र नहीं भरता। सुकुल बाबू एक विशाल और ऐतिहासिक रैली का आयोजन करते हैं जिसमें लगभग एक लाख लोगों को एकत्रित करने की योजना है। रैली में सम्मिलित होने के लिए लोगों को कुछ पारिश्रमिक भी दिया जायेगा। पांडे जी दासाहब को बताते हैं : ''दो समय का खाना और पाँच रूपया प्रति व्यक्ति तय हुआ है। बच्चों के लिए भी दो-दो रूपये दिये जाँयेगें। लोगों का क्या है, मजदूरी नहीं की और मौजमस्ती कर ली पूरे कुनबे ने-बच्चों के पैसे और खाया मुफ्त।''[1]

रैली होती है और 'मशाल' तीसरे पृष्ठ पर उनका समाचार छपता है बिना किसी फोटो के:

''बीच के पृष्ठ पर सुकुल बाबू की रैली का समाचार है। तस्वीर कोई नहीं है, पर यह स्वीकार किया है कि इस प्रान्त के इतिहास में इतनी बडी रैली शायद ही कभी हुई हो विरोधियों की इतनी बडी रैली बिना किसी बाधा-व्यवधान के शान्तिपूर्ण ढंग से हो गयी इसके लिए गृह-मन्त्रालय और डी० आई० जी० पुलिस के प्रति आभार व्यक्त किया है।''[2]

दासाहब चुनाव जीतने के लिए जो हथकण्डे अपनाते हैं। वे कहीं अधिक प्रभावकारी हैं। इस समय समाचार पत्र 'मशाल' आग उगल रहा है। उसके सम्पादक दत्ता ने तीन-चार महीने पहले दासाहब से इंटरव्यू का समय माँगा था पर दासाहब ने उसे कोई समय नहीं दिया था। दासाहब लखन के द्वारा दत्ता साहब को बुलावाते हैं। दत्ता के सामने ही डी० आई० जी० से अपने आपको फोन करवाते है। हर व्यवस्था पहले ही कर दी गयी थी। डी० आई० जी० से फोन पर कहते है:

''पुलिस के सामने जनता को अधिक सुरक्षित महसूस करना चाहिए .... आतंकित नहीं जनता यदि डरती है तो कलंक है यह पुलिस वालों के लिए। मेरे अपने लिये भी यह मैं बरदाश्त नहीं करूँगा।' फिर आदेश देते से बोले,' जाइए जैसे भी हो उन्हें भरोसा दीजिए. .... निडर बनाइए कि वे सच बात कहें।''[3]

1- महाभोज, पृ0-127
2- उपरोक्त, पृ0-145
3- उपरोक्त, पृ0-38

दासाहब इस हत्या को आत्महत्या सिद्ध करते हैं और कहते है कि उन्होंने समाचार पत्रों पर से सभी प्रकार की पाबन्दियाँ हटा ली हैं। वे अपना पूरा दृष्टिकोण दत्ता बाबू के समक्ष रखने के पश्चात् उनकी जिम्मेदारी याद कराते हैं:

''आपके अखबारों को पूरे हक मिल गये, अब आप लोगों को पूरा कर्तव्य भी निभाना चाहिए अपना-देश के प्रति, समाज के प्रति और खास करके इस देश की गरीब जनता के प्रति। बहुत भारी जिम्मेदारी होती है अखबार-नवीसों के कंधों पर। और मैं चाहता हूँ कि उनके प्रति पूरी तरह सचेत हों..... आप.....।''[1]

इस प्रकार वे अपने एक विरोधी समाचार-पत्र के सम्पादक को अपना समर्थक बना लेते हैं। दूसरे दिन 'मशाल' में जो छपता है, वह वही सब कुछ होता है जो दासाहब चाहते थे:

''दूसरे दिन 'मशाल' का अंक आया बिल्कुल नये तेवर के साथ। हैड लाइन बिसेसर की मौत की खबर ही थी। साथ लम्बा वक्तब्य दिया गया था। जिससे पुलिस को अभी तक तहकीकात के आधार पर यह संकेत दिया गया था कि यह हादसा हत्या का नहीं, आत्महत्या का है। साथ ही दासाहब के सख्ती से दिये गये उस आदेश का हवाला भी था, जिसमें उन्होंने पुलिस को गहरी छानबीन करके एक बेबाक रिपोर्ट करने की ताकीद की है।''

''अन्त में सुकुल बाबू के भाषण को एक जिम्मेदार व्यक्ति की निहायत गैर-जिम्मेदाराना हरकत बताते हुए यह आरोप लगाया था कि उन्होंने एक छोटी-सी घटना को महज अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिए मनमाने ढंग से विकृत करके लोगों में बिलावजह तनाव बढ़ाने का निन्दनीय काम किया है।''[2]

दासाहब ने दूसरा हथकंडा यह अपनाया कि उन्होंने गाँव में घरेलू-उद्योग-योजना आरम्भ कराई। उसका दायित्व पाण्डे जी को सौंपा और आदेश दिया कि इस योजना का अधिक से अधिक लाभ हरिजनों और खेत मजदूरों को मिले। साथ ही उन्होंने यह भी निर्देश दिया कि लोग पंचायत से असंतुष्ट है, इसलिए इस योजना में पंचायत कहीं बीच में

1- महाभोज, पृ0 -41
2- उपरोक्त, पृ0-45

न आये। सुकुल बाबू की मीटिंग समाप्त होने के दूसरे दिन से ही इस योजना पर कार्य आरम्भ हो जाता है:

"दूसरे दिन सबेरे से ही गली-गली और घर-घर की दिवारों पर घरेलू उद्योग-योजना के पोस्टर चिपकने लगे और शाम तक यह स्थिति हो गयी कि जिधर नजर उठाओ, मुस्कराते हुए दासाहब और नीचे योजना की रूपरेखा-मानो उनकी मुस्कान से ही बहकर निकल रही है योजना! पाँच-सात स्वयंसेवक किस्म के लोग घर-घर जाकर विस्तार से इस योजना के बारे में समझा रहें हैं-फार्म भरवा रहे हैं साथ ही यह बताना भी नहीं भूले कि 15 तारीख को मुख्यमंत्री स्वयं आ रहे हैं इस योजना का उद्घाटन करने।"[1]

दासाहब निर्धारित तिथि को समय से कुछ पहले ही योजना का उद्घाटन करने के लिए गाँव पहुँचते हैं। दासाहब पहले सभा-स्थल पर न जाकर सीधे बिसू के घर जाते हैं। वे बिसेसर के पिता से कहते हैं कि उन्हें बहुत अफसोस हुआ है और वह अपना हौसला बनाये रखे। उसके बाद वे उसे अपने साथ कार में बिठाते हैं :

"गाड़ी तक आकर हीरा बेचारा हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। कहा उसने कुछ नहीं, पर बेतरह कातर, बेतरह कृतज्ञ हो आया था वह। दासाहब खुद उसके घर आयें ऐसा मान तो न उसे जीवन में कभी मिला, न आगे ही कभी मिलेगा। लेकिन जब दासाहब ने उसे गाड़ी में बैठने को कहा तो एकदम हकबका गया। जिन्दगी में कब नसीब हुआ है उसे गाड़ी में बैठना और वह भी दासाहब की गाड़ी में। न ना करते बन रहा था, न बैठते बन रहा था। पर दासाहब ने कन्धा पकड़े-पकड़े एक तरह से भीतर की ओर ठेल ही दिया। बेहद सकुचाते हुए, सिमटकर एक कोने में बैठ गया बेचारा-बगल में दासाहब।"[2]

अपने भाषण में दा साहब कहते हैं कि पुलिस के प्रमाण यह बताते हैं कि बिसू ने आत्महत्या की है। एक नौजवान हत्या की बात करता है तो वे उससे

प्रमाण माँगते हैं और कहते हैं :

1- महाभोज, पृ0-61
2- वही, पृ0-63

''नहीं है न! खैर, फिर भी मैं चाहता हूँ अगर हत्या हुई है तो सामने आयेगी बात। असलियत छिप नहीं सकती। और अब तो मैं भी नजर गड़ाये बैठा हूँ। मैंने डी0आई0जी0 से कह दिया है कि वे किसी बड़े अफसर को भेजकर फिर से बयान लें आप लोगों के। भेजेंगे वे किसी को। इस बार आप खुलकर अपनी बात कहिए,... प्रमाण जुटाने में मदद कीजिए पुलिस की।''[1]

इसके पश्चात् दासाहब घरेलू-उद्योग योजना के उद्घाटन के लिए बिसेसर के पिता का नाम प्रस्तुत करते हैं। दासाहब के भाषण और घरेलू-उद्योग योजना का प्रभाव यह होता है कि गाँव में बिसू की मौत का तनाव समाप्त हो जाता है और इस योजना के बारे में ही बात करने लगते हैं।

दासाहब बिसू की हत्या का आरोप बिन्दा पर लगवा कर उसे गिरफ्तार करवा देते हैं। इस गिरफ्तारी से जोरावा प्रसन्न होता है और कहता है कि उसे पता है कि कौन सुकुल बाबू को वोट देने वाले हैं :

''तुम फिकर नहीं करो पाण्डे जी, जोरावर के रहते। हमें मालूम है, सुकुल बाबू को वोट देने वाले कौन हैं? तुम क्या सोचते हो, हमारे रहते बूथ पर पहुँच पायेंगे वे लोग? जोरावर के राज में वे ही वोट दे पायेंगे जिन्हें जोरावर चाहेगा।''[2]

कस्बों के चुनाव में चुनाव-जीतने के बहुत सारे हथकंडे अपनाये जाते हैं। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'रागदरबारी' में तीन का विशेष विवेचन किया गया है जिनके नाम है- एक रामनगर वाली तरकीब, दूसरी नेवादा वाली और तीसरी महिपालपुर वाली। रामनगर के गाँव-सभा के चुनाव में दो प्रत्याशी थे- रिपुदमन सिंह और शत्रुघ्न सिंह। दोनों के चुनाव-प्रचार में सब प्रकार की समानता थी। पूरा गाँव दो दलों में बँट गया था। चुनाव के जब दो-तीन दिन शेष बचे तो रिपुदमन सिंह ने अपने छोटे भाई सर्वदमन सिंह को बुलाकर पूछा कि यदि इस संघर्ष में वह और उसके पच्चीस साथी मारे जायें तो वह क्या करेगा? सर्वदमन सिंह उत्तर देता है कि हिसाब से दूसरे पक्ष के शुत्रघ्न सिंह और उसके पच्चीस

1-महाभोज, पृ0-65

2-उपर्युक्त,पृ0-149

व्यक्ति भी मारे जायेंगे। इसके बाद जैसी भी भाई की आज्ञा होगी, वैसा किया जायेगा। वह पुनः पूँछता है कि इसके बाद चुनाव हो तो वह क्या करेगा? सर्वदमन सिंह सारी जोड़-बाकी लगाकर उत्तर देता है :

"दादा, अगर तुम और शत्रुघ्न सिंह अपने पच्चीस-पच्चीस आदमियों के साथ मर जाओ तो फिर मैं क्या, मेरी तरफ का कोई भी आदमी दूसरी तरफ के किसी भी आदमी से पचास वोट ज्यादा ले गिरेगा। क्योंकि गाँव के वोटरों में उस तरफ से सचमुच मर मिटने वाले ज्यादा से ज्यादा पच्चीस आदमी निकलेंगे, जबकि हमारी तरफ ऐसे आदमी चालीस से भी ज्यादा हैं। उधर वे पच्चीस आदमियों के मर जाने के बाद भी मैदान हमारे बाकी पन्द्रह आदमियों के हाथ में रहेगा।"[1]

परिणाम यह हुआ कि चुनाव से तीन दिन पूर्व रिपुदमन सिंह ने शत्रुघ्न सिंह उसके पच्चीस समर्थकों के विरुद्ध एक प्रार्थना पत्र सब डिवीजन मैजिस्ट्रेट की अदालत में प्रस्तुत किया जिसमें रिपुदमन सिंह ने उन व्यक्तियों से अपनी जान और माल का खतरा बताया था तथा चुनाव में शांन्ति-भंग होने की आशंका भी व्यक्त की गयी थी। पुलिस ने प्रार्थना-पत्र का समर्थन किया था। उस प्रार्थना-पत्र के उत्तर में शत्रुघ्न सिंह ने रिपुदमन और उनके चालीस समर्थकों के विरुद्ध इसी प्रकार का प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया था। पुलिस ने उसका भी इस शर्त के साथ समर्थन किया कि यह बात रिपुदमन सिंह और उसके पच्चीस समर्थकों के लिए सही है। चुनाव के एक दिन पहले मैजिस्ट्रेट ने जमानत और मुचलके माँगे। रिपुदमन सिंह ने कहा:

"हुजूर, हम सब जमानत और मुचलके नहीं देगें। हमारी बात याद रखिएगा, कल हमारे गाँव में कत्लेआम होगा। बड़ी से बड़ी जमानत शत्रुघ्न सिंह और इनके गुण्डों को झगड़ा करने से न रोक पायेगी। हम लोग सीधे-सादे खेतिहर हैं। हम इनका क्या खाकर मुकाबला करेंगे। इसलिए ऐसा कीजिए हुजूर कि हमें जमानत न दे सकने के कारण हवालात में बन्द करा दीजिए। हवालात में बन्द हो जाने से हमारी जान तो बच जायेगी। सिर्फ इतना कीजिएगा हुजूर कि शत्रुघ्न सिंह की जमानत का ऐतबार न कीजिएगा। हमारे

1- राग-दरबारी, पृ0-265

खानदान के दो-चार लोग गाँव में रह जायें, उनकी जान बचाने का इन्तजाम कर दीजिएगा।''[1]

पुलिस ने रिपुदमन सिंह के उक्त वक्तव्य का समर्थन कर दिया। परिणाम स्वरूप मैजिस्ट्रेट ने दोनों पक्षों के लोगों को कारागार में रखने का आदेश दिया। परिणामतः वकील की डिग्री लिए सर्वदमन सिंह ने रिपुदमन की ओर से चुनाव लड़ा और विजय पायी। चुनाव जीतने के इस तरीके को रामनगर वाली तरकीब कहा जाता है।

नेवादा वाली तरकीब कुछ सांस्कृतिक है। नेवादा में गाँव-सभा के चुनाव में प्रमुख संघर्ष ब्राह्मण प्रत्याशी और हरिजन प्रत्याशी के बीच था। ब्राह्मण प्रत्याशी प्राचीन वेदादि से उदाहरण देकर ब्राह्मण को श्रेष्ठ प्रमाणित करने लगा। उसका दृष्टिकोण था कि गाँव-सभा का प्रधान ब्राह्मण को ही बनना चाहिए और शूद्र को चपरासी जैसा पद दिया जाना चाहिए। शूद्रों को पैर बताने का परिणाम यह हुआ कि उसके समर्थकों को पैर से पीटा जाने लगा :

''वह चतूतरे पर बैठा था और बोलता जाता था। अचानक उसका वाक्य अधूरा ही रह गया। उसे अपनी कमर पर इतने जोर से चोट का अहसास हुआ कि वह 'तात लात रावण मोहिं मारा' कहने लायक भी न रहा। वह चबूतरे से नीचे लुढ़क कर गिरा ही था कि उस पर दस ठोकरें और पड़ गयीं और जब उसने आँख खोली तो पता लगा कि संसार स्वप्न है मोह-निद्रा का त्याग हो चुका है। इसके बाद इस तरह की कई घटनाएँ हुई और ब्राह्मण उम्मीदवार को मालूम हो गया कि पुरूष-ब्रह्म का मुख पुरूष-ब्रह्म के पैर से ज्यादा दूर नहीं है और संक्षेप में जहाँ मुँह चलता हो जबाव में लात चलती हो, वहाँ मुँह बहुत देर तक नहीं चल पाता।''[2]

ब्राह्मण प्रत्याशी ने अब दूसरा मार्ग अपनाया। उसी समय उसे एक बाबा जी मिल गये। बाबा जी से उसने चुनाव में विजय का आशीर्वाद और साथ माँगा। बाबा जी ने मन्दिर के सामने डेरा डाल दिया और दूसरे दिन से कबीर, रामानन्द से लेकर गुरू गोरखनाथ तक

1- राग-दरबारी, पृ0-265-266
2- तदैव, पृ0-267

की कहानियाँ सुनाकर यह उपदेश करने लगे कि जाति-पाँति का कोई महत्व नहीं है, 'हरि को माने सो हरि का होई।' भक्तों को गाँजे की चिलम पिलानी आरम्भ कर दी। बाबाजी ने अड़तालीस घन्टे का अखण्ड कीर्तन किया। जिसके पश्चात् बाबाजी को श्रीकृष्ण का अवतार मान लिया गया। उनकी गाँजे की चिलम चलती रही। उन्होंने अपने प्रभाव से गाँव से जातिवाद का प्रभाव समाप्त कर दिया और घोषणा कर दी कि गाँव का प्रधान बड़ा धर्मात्मा है :

''इसी असर में बाबा जी ने गाँव से जातिवाद का नाम हटा दिया और एक दिन उन्होंने गाँजे, भंग और कीर्तन के माहौल में जब इशारा किया कि गाँव का प्रधान बड़ा धर्मात्मा आदमी है तो लोग चकित रह गये। एक भँगेड़ी ने कहा कि अभी तो कोई प्रधान चुना ही नहीं गया है और ओहदे पर पहली बार चुनाव होना है तो बाबा जी ने फिर इशारा किया कि हमारे भगवान ने तो चुनाव कर दिया है। संक्षेप में, नशा उतरने के पहले ही लोगों को मालूम हो गया कि ब्राह्मण उम्मीदवार को भगवान ने स्वयं प्रधान चुन लिया है। और इस ज्ञान के आधार पर, नशा उतरने के पहले, लगभग सभी गाँव वालों ने उन्हें अपना प्रधान स्वीकार कर लिया। इस प्रकार लात सुन्न पड़ गई और मुँह की विजय हुई।''[1]

नेवादा वाले तरीके में आवश्यकतानुसार सुधार करके अनेक चुनाव जीते गये। भाँग या गाँजे के स्थान पर शराब का प्रयोग किया गया। कहीं बकरें की बलि भी दी गयी आदि-आदि।

तीसरा चुनाव महिपालपुर का सीधा-सादा था। चुनाव-अधिकारी ने अपनी घड़ी घंटाघर से मिलायी थी। घंटाघर की घड़ी चुंगी के चेयरमैन की घड़ी से मिली

थी जो सवा घंटा तेज थी। परिणामतः चुनाव अधिकारी ने सबा घंटा पूर्व ही चुनाव पूरा करके परिणाम घोषित कर दिया।

''इस चुनाव के खिलाफ याचिका दाखिल हुई और उसमें सारी बहस घड़ियों को लेकर हुई। वह मुकदमा काफी वैज्ञानिक साबित हुआ और उससे अदालत को कई किस्म

1- राग-दरबारी, पृ0-270

की घड़ियों के बारें में मेकेनिकल जानकारी हासिल करने का मौका मिला। इसका परिणाम यह हुआ कि मुकदमा तीन साल चला पर न यह साबित होना था, और न हुआ कि चुनाव-अधिकारी ने कोई गलती की है। उसने जिसे सभापति घोषित कर दिया था, वह अपनी घड़ी को हमेशा के लिये सवा घण्टा तेज करके गाँव पर यथाविधि हुकूमत करता रहा। उम्मीदवार बकौल छोटे पहलवान, घड़ी की जगह घण्टा लेकर बैठे रहे।''[1]

गाँव-पंचायतों के चुनाव में इस पद्धति का उपयोग अनेक बार किया गया। कहीं चुनाव-अधिकारी की घड़ी घण्टा-आधा घन्टा तेज हो जाती थी तो कहीं धीमी हो जाती थी। जिस प्रत्याशी की घड़ी का मेल चुनाव-अधिकारी की घड़ी से हो जाता था, वह चुनाव में विजयी हो जाता था।

शिवपाल गंज के चुनाव में भी इन पद्धतियों का प्रयोग किया गया। रामधीन भीखखेड़वी की ओर से नेवादा-पद्धति का प्रयोग किया गया और वैद्य जी की ओर महिपालपुर की पद्धति का:

''भूगोल के हिसाब से शिवपाल गंज से महिपालपुर दूर पड़ता था और नेवादा नजदीक। इसलिए रामधीन भीखमखेड़वी को नेवादा-पद्धति का अच्छा ज्ञान था। उसका उन्होंने खुलकर प्रयोग भी किया था। उधर सनीचरा की ओर से वैद्य जी ने भूगोल के मुकाबले इतिहास का ज्यादा सहारा लिया था और अतीत काल की सब पद्धतियों का मनन करके सनीचरा की ओर से महिपालपुर वाली पद्धति को अपनाने की राय दी थी। परिणामस्वरूप उनकी ओर से सिर्फ एक सस्ती घड़ी का खर्च हुआ जो चुनाव-अफसर की भूल से अपनी कलाई पर बाँधे हुए अपने घर लौट गए, जबकि नेवादा-पद्धति को प्रयोग करने वाले हारकर निराश और शराब के असर से मैदान में ढेर हो गये। नशाखोरी की विशेषज्ञता के अलावा उन्हें कुछ भी हासिल नहीं हुआ।''[2]

ऐसा नहीं है कि एक व्यक्ति सभी प्रकार के चुनावों में एक ही पद्धति का प्रयोग करता हो। वैद्य जी कॉलेज की कार्यकारिणी के चुनाव तथा सहकारी समिति के चुनाव में

1- राग-दरबारी पृ0 -211

2- उपरोक्त, पृ0-271

अन्य पद्धतियों का प्रयोग करते हैं। कॉलेज की सामान्य सभा की बैठक पाँच वर्ष से नहीं हुई थी। कार्यकारिणी का प्रति वर्ष चुनाव होना चाहिए। किन्तु चुनाव नहीं कराये गये। वैद्य जी ही मैंनेजर बने हुए हैं। खन्ना मास्टर उपाध्याय रामादीन से शिकायत करते हैं। ऊपर के अधिकारियों के पास भी शिकायत भिजवाते हैं। एक दिन वैद्य जी निश्चय करते हैं कि कॉलेज की सामान्य सभा की वार्षिक बैठक बुला ली जाये। वे प्रिन्सिपल को आदेश देते हैं कि बैठक का प्रबन्ध किया जाये।

चुनाव वाले दिन छंगामल विद्यालय इंटर कॉलेज के विद्यार्थी हॉकी की स्टिकें और क्रिकेट के बल्ले लिए कॉलेज के फाटक के आसपास घूम रहे थे। इनकी संख्या पचास के आसपास थी। थोड़ी देर बाद ठाकुर बलराम सिंह एक घोड़े पर आया उनकी जेब में पिस्तौल थी। वे प्रिन्सिपल महोदय को बताते हैं:

"असली विलायती चीज है। छः गोली वाली। देसी कारतूस तमंचा नहीं कि एक बार फुट् से होकर रह जाय। ठॉय-ठॉय शुरू कर देगा तो रामाधीन गुट के छः मेम्बर गौरैया की तरह लौट जायेंगे।"[1]

बलराम सिंह कॉलेज के चारों ओर चक्कर लगाने के लिए एक छात्र को आदेश देते हैं। वे पुनः उसे एक लम्बा चक्कर लगाने को कहते हैं, एक सदस्य ट्रक से उतरता है। बलराम सिंह उसे पंडित जी का सम्बोधन करके वापस लौट जाने का परामर्श देता है:

"फिर उस आदमी से कहना सटकर बोले, 'पंडित, मीटिंग में तुम्हारी हाज़िरी हो गई। अब लौट जाओ।'

"पंडित ने कुछ चाहा, तब तक वे उससे और सट गए और बोले 'कुछ समझकर कह रहा हूँ। लौट जाओ।'

"पडित को अपनी जाँघ में कुछ कड़ा-कड़ा-सा अड़ता हुआ जान पड़ा उन्होंने बलराम सिंह के कुरते की जेब पर निगाह डाली। अचकचाकर वे दो कदम पीछे हट गये।

"विदाई देते हुए बलराम सिंह ने फिर कहा, -पंडित, पाँय लागी।"[2]

1- राग-दरबारी, पृ0-181
2- तदैव, पृ0-182

बलराम सिंह के द्वारा भेजा गया छात्र वापस लौटता है। वह बताता है कि सब ठीक-ठाक है। उनका वार्तालाप इस प्रकार होता है:

''कितने आदमी आये थे?'

'पाँच''

''सब समझ गये कि किसी ने नासमझी की?

'सब समझ गये' लड़के की हिम्मत लौट आई थी। दूर जाते हुए पंडित की तरफ इशारा करके उसने कहा, 'उन्हीं की तरह सड़फड़ करते वापस चले गए।'

लड़के भी खुलकर हँसे। बलराम सिंह ने कहा, 'समझदार की मौत है।''[1]

इस प्रकार वैद्य जी सर्वसम्मति से कॉलेज की प्रंबधकारिणी समिति के मैनेजर चुन लिये गये।

वैद्य जी की सहकारिता समिति के रामस्वरूप सुपरवाइजर ने दो हजार रूपयें से ऊपर का गबन किया था जिसकी शिकायत कोआपरेटिव इंस्पेक्टर ने अपनी रिपोर्ट में यह लिखते हुए की कि गबन वैद्य जी के संज्ञान में हुआ था, इसलिए यह धनराशि वैद्य जी से वसूल की जाये। वैद्य जी ने मैनेजिंग डायरेक्टर की हैसियत से इंस्पेक्टर की लिखित शिकायत की किन्तु उसका तबादला नहीं हुआ। वैद्य जी स्वयं जाकर सम्बंधित अधिकारी से मिलते हैं। वह उन्हें त्याग का महत्व समझाते हुए त्यागपत्र देने का परामर्श देता है और साथ ही यह धमकी भी देता है कि त्यागपत्र नहीं दिया गया तो बहुत कुछ हो सकता है:

''त्याग द्वारा भोग करना चाहिए; यही हमारा आदर्श है। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा'-कहा गया है आज भी सभी यशस्वी नेता यही करते हैं। भोग करते हैं, फिर उसका त्याग करते हैं, फिर त्याग द्वारा भोग करते हैं। अमुक वित्त-मंत्री ने क्या किया? त्यागपत्र दिया कि नहीं? अमुक रेल-मंत्री ने भी यही किया और अमुक सूचना-मंत्री ने भी यही किया। इस समय देश को, इस राज्य को, इस जिले को, कोऑपरेटिव यूनियन को ऐसे ही त्याग की

1- रागदरबारी, पृ0-183

आवश्यकता है। आरोपों की खुली जाँच हो, इसके स्थान पर यह अधिक उत्तम है कि वैद्य जी जनता के सामने आदर्श उपस्थित कर दें। आदर्श की इमारत खड़ी करते ही सारे आरोप उसकी नींव के नीचें दब जायेंगे। अतः वैद्य जी को चाहिए कि वे मैनेजिंग डायरेक्टर के पद से त्यागपत्र दे दें। उनके विरूद्ध जो रिपोर्ट आयी है, उसका यही जबाब है। वे चाहें तो अपना त्यागपत्र किसी स्थिति के विरोध में दें, चाहे किसी सहकर्मी को कमीना बताकर दें चाहें सिद्धान्त की रक्षा के लिए दें। यदि वे त्यागपत्र दे रहे हों तो उसका कारण ढूढँने की पूरी छूट रहेगी। पर त्यागपत्र के साथ अगर-मगर न होना चाहिए। होना चाहिए तो केवल त्यागपत्र होना चाहिए। नहीं तो कुछ न होना चाहिए। पर यदि कुछ हुआ, तो बहुत-कुछ हो जायेगा, जो कदचित् वैद्य जी को अच्छा न लगेगा।''[1]

वैद्य जी कोआपरेटिव यूनियन की वार्षिक बैठक बुलाते हैं। रामाधीन भीखमखेड़वी गुट का एक व्यक्ति खड़े होकर भाषण देता है और गबन की जाँच की माँग करता है। वैद्य जी खड़े होकर भाषण देते हैं। वे गबन का अर्थ समझाते यूनियन को लाभ के बारे बताते हैं और अन्त मे कहते हैं:

मेरे विरूद्ध व्यक्तिगत आक्षेप लगाये गये हैं। आक्षेप करना अनुचित है। व्यक्तिगत आक्षेप और भी अनुचित है। इस वातावरण में कोंई भी व्यक्ति काम नहीं कर सकता। शिष्ट व्यक्ति तो बिलकुल ही नहीं कर सकता। मैं इस प्रकार के आक्षेपों का विरोध करता हूँ। पर ध्यान रहे, विरोध आक्षेपों से है, आक्षेप करने वाले से नहीं। आक्षेप करने वाले श्री रामचरन हैं। मैं उनका आदर करता हूँ। उनके लिए मेरे मन में बड़ी श्रद्धा है।

''पर मैं उनके आक्षेपों का विरोध करता हूँ। बलपूर्वक विरोध करता हूँ, और विरोध के रूप में यहाँ के मैनेजिंग डायरेक्टर के पद से त्यागपत्र देता हूँ।''[2]

नगर से आये अधिकारी त्यागपत्र को स्वीकार करने का परामर्श देते हैं और बड़ी कॉय-कॉय मचती है जैसे किसी को बलपूर्वक निकाला जा रहा हो। फिर कॉय-कॉय शांत हो जाती है। वैद्य जी नवयुवकों के आगे आने का आव्हान करते हैं। अधिकारी महोदय

1- राग-दरबारी, पृ0-637-368
2- वही, पृ0-372

सर्वसम्मति से मैनेजिंग डायरेक्टर चुनने की अपील करते हैं। छोटे पहलवान अधिकारी द्वारा चुनाव कराये जाने का विरोध करते हैं और अन्त में कहते हैं :

"वैद्य जी हट गये हैं। कोई फिकिर नहीं। उनकी जगह सटाक् से दूसरा आदमी बैठ जाता है कैसा चुनाव? हुँह। चले बड़े चुनाव वाले! यह तिड़ीबाजी शहर में ही चलती है। यहाँ नहीं चलेगी! यहाँ तो जिसे चाहो, उसी को वैद्य जी की जगह बैठा दिया जायेगा, उठो बद्रीप्रसाद! न हो तो तुम्हीं बैठ जाओ। उठो, उठो, उस्ताद, लो लपक के।"[1]

चारों ओर नारे लगने लगते है। वैद्य जी कहीं चले जाते हैं और उनके विरोधी रामचरन को कोई फाटक के बाहर हाथ पकड़कर खींचे लिये जा रहा है। वैद्य जी के बड़े सुपुत्र वद्री पहलवान माला पहने मंच पर अधिकारी महोदय की बगल में आ बैठते हैं और इस प्रकार कोऑपरेटिव यूनियन का चुनाव सर्वसम्मति से हो जाता है।

(घ) राजनीति में भ्रष्टचार :

भारत में आधुनिक राजनीति का आरम्भ कांग्रेस के द्वारा हुआ। कांग्रेस के स्थानीय पदाधिकारियों में आरम्भ से ही भ्रष्टाचार का बोलबाला रहा। नरेश मेहता ने अपने उपन्यास 'यह पथ बंधु था' में इस भष्ट्राचार को प्रस्तुत किया है। उज्जैन में पुस्तके साहब प्रसिद्ध एडवोकेट हैं। बिशन श्रीधर को पुस्तके साहब के बारे में बताता है :

"यह पुस्तके ढोंगी व्यक्ति है। हरिजन-फण्ड, चरखा-फण्ड, महिला-फण्ड जाने किन-किन फण्डों का चन्दा खाये बैठा है और जब काम पड़ता है तो चन्दे का सारा हिसाब-किताब गलत बताया जाता है। हर बार मुझे अपना मुँह बन्द रखने को बाध्य होना पड़ता है।"[2]

स्थानीय कांग्रेसी नेता शोषक हैं जो अपने कार्यकर्ताओं का शोषण करते है। यही कारण है कि बिशन उन्हें भेड़िया कह कर सम्बोधित करता है।:

"मुझे घृणा है इन सबसे। तुम स्वयं एक दिन देखोगे कि वे ये सब चरखा कातते हुए

1- रागदरबारी, पृ0-373
2- यह पथ बंधु था, पृ0-216

भेड़िये हैं जिन्होंने अपने खूनी नख, गोमुखी में छुपा रखे है।''[1]

यही स्थिति बनारस के स्थानीय नेता ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह की है। शराबी, कबाबी और दुश्चरित्र ठाकुर साहब अपनी जमींदारी में शोषण करते हैं। रामखेलावन को सब ज्ञात है :

''रामखेलावान बाबू ठाकुर साहब की सारी पोल-पट्टी जानते थे। किसी प्रकार ठाकुर साहब अपनी जमींदारी में जोर जुलुम करवाते रहते हैं, किस प्रकार गुण्डे पाले रहते है, किस प्रकार शराबी-कबावी आदमी हैं तथा दुश्चरित्र भी श्रीधर बाबू जब हद से बाहर होने लगते तो एक बड़ी रकम ठाकुर साहब से ऐंठकर वे श्रीधर बाबू को घुड़क देती है।''[2]

ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह श्रीधर को अपना विरोधी समझते थे, इसलिए वे श्रीधर के रंगे हाथ पकड़े जाने पर उसे बहुत क्रान्तिकारी सिद्ध कराना चाहते थे जिससे सदैव के लिए अपने विरोधी से मुक्ति मिल जाये :

''पुलिस ने रंगे हाथों पकड़ा था। उसे यह भी मालूम हो गया कि ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह चाहते थे कि किसी प्रकार श्रीधर पूरी तरह खतरनाक क्रान्तिकारी सिद्ध हो जाए और या तो फाँसी पर जाएँ या फिर कालापानी, तो उनके रास्ते का काँटा दूर हो।''[3]

स्वतन्त्रता के पश्चात् तो भारत के राजनीतिज्ञों और भ्रष्टाचार का सम्बन्ध चोली-दामन का ही हो गया है। जिस उपन्यास में भी मूल्यहीनता अथवा विघटन का यथार्थ चित्रण होता है, वहाँ राजनीतिज्ञों के भ्रष्टाचार की चर्चा अवश्य होती है। राजकमल चौधरी का उपन्यास 'मछली मरी हुई' राजनैतिक उपन्यास नहीं है किन्तु फिर भी सांकेतिक ढंग से ही सही भ्रष्ट राजनीतिज्ञों की चर्चा है। निर्मल पद्मावत एक चायखाना चलाता था। उसकी दुकान पर सभी प्रकार के लोग चाय पीने आते थे। एक दिन पुलिस ने यह आरोप लगाकर कि निर्मल की दुकान क्रान्तिकारियों का अड्डा है, उसे गिरफ्तार कर लिया और उसे चार साल की सजा मिली। उसके मन में जब सुख और धन

1- यह पथ बन्धु था, पृ0-217
2- उपरोक्त, पृ0-545
3- उपरोक्त, पृ0-509

प्राप्त करने की कामना उत्पन्न हुई तो वह कांग्रेस के नेताओं से शिक्षा प्राप्त करता है।

"उसने अपने -आपसे सवाल किया कि वह क्या चाहता है? इस सवाल के बाद उसने कांग्रेसी नेताओं से अर्थशास्त्र और इतिहास पढ़ना शुरू किया। कानून, धर्म विज्ञान और राजनीति, इन चारों का उद्देश्य एक ही है-आदमी को सुखी और सम्पन्न करना। जो वस्तु, जो व्यवस्था आदमी को दरिद्र करे, अपाहिज करे उसे तोड़ देना चाहिए।"[1]

सम्पन्न बनने के लिए कांग्रेसी नेताओं से अच्छा शिक्षक नहीं मिल सकता। यदि मंत्री रूष्ट हो जाता है तो वह पूँजीपति को बरबाद कर देता है। प्रयासचन्द नियोगी से इंडस्ट्री मंत्री नाराज हो गया तो वह मुसीबत में पड़ गया :

"इंडस्ट्री-मिनिस्टर इन दिनों नियोगी के खिलाफ है। इन्कम-टैक्सवाले पीछे पड़ गए हैं। 'प्रयासचद्रं कॉटन मिल' में हड़ताल चल रही है। दुर्गावती-ट्रस्ट पर सरकार ने 'रिसीवर' बिठा दिया है।"[2]

उपन्यासकार को जहाँ भी अवसर मिला है, उसने भ्रष्ट राजनीतिज्ञों की चर्चा की है। निर्मल पद्मावत को नए मिल के सीमेन्ट और लोहे की आवश्यकता है। उसके लिए परमिट की जरूरत पड़ेगी और परिमट जब मिलेगा, जब कंट्रोल-मंत्री को दावत दी जायेगी।

निर्मल के सैक्रेट्री धनवंत लाल ने लिखा है :

"नए जूट मिल के लिए सीमेन्ट और लोहे का परमिट चाहिए। कंट्रोल-विभाग के मंत्री को किसी बड़े होटल में पार्टी देनी होगी।"[3]

निर्मल पद्मावत ईमानदार उद्योगपति है, इसलिए वह घूस नहीं देता, घूस से उसे घृणा है :

"पार्टी देने की पढ़कर निर्मल पद्मावत मुस्करा उठा। वह घूस चाहे रूपयों की हो, या किराए की किसी औरत के मांसल शरीर की हो, या बड़े होटलों में शराब के दौर और

1— यह पथ बन्धु था, पृ0—43
2— मछली मरी हुई, पृ0—46
3— तदैव, पृ0—81

शराब के गानों के दौर-निर्मल घूस नहीं देता है''[1]

केवल कांग्रेसी नेता और मंत्री ही नहीं अपितु ट्रेड यूनियन के नेता भी घूसखोर हो गए है। वे पहले मिल में हड़ताल कराते हैं और फिर हड़ताल तोड़ने के लिए घूस माँगते हैं। निर्मल पद्मावत के जूट मिल में हड़ताल हो जाती है। धनवंत लाल निर्मल को स्थिति से अवगत कराता है। निर्मल पद्मावत सारी बातें समझता है। वह अपने सैक्रेट्री से कहता है :

''मगर पुलिस घूस माँगती है। यही न? घूस लेगी, तब मजदूरों पर लाठी-चार्ज करेगी और उनके लीडरों को गिरफ्तार करेगी। ट्रेड-यूनियन वाले भी घूस माँगते हैं। घूस लेंगे, तब हड़ताल खत्म करेंगे। क्यों? यही बात है न?''[2]

निर्मल पद्मावत घूस नहीं देता क्योंकि वह ईमानदार है। किन्तु ईमानदार तो सरकार भी है और ईमानदारी भी खरीदी जाती है और सरकार भी खरीदी जाती है। राजनीति में तो केवल खरीद और ब्रिक्री ही है :

''सरकार ईमानदार है। ईमानदारी अब खरीद-बिक्री की चीज हो गई है। जनता [illegible] खरीदे जाते हैं। राजनीतिक पार्टियाँ खरीदी जाती हैं। एम0एल0ए0 और एम0पी0 बिकते हैं। मिनिस्ट्री बिकती है। पूँजी हो, खरीदने की अक्ल हो, दुनिया की दुनिया खरीदी जा सकती है।''[3]

निर्मल पद्मावत राजनीतिज्ञों को, सिद्ध पुरूषों और वेश्याओं को साथ रखता है। वह जानता है कि जनतंत्र में यही नायक है :

''सिद्ध पुरूष, शासन करने वाले राजनीतिज्ञ और साड़ी बाँधने और साड़ी खोलने की विद्या में प्रसिद्ध स्त्रियाँ-निर्मल ने तय किया कि ये ही तीन व्यक्ति बीसवीं सदी के किसी भी बड़े शहर में 'आत्मज्ञान' ओर 'मोक्ष' प्राप्त करते हैं। ये ही तीन व्यक्ति और इनके पीछे-पीछे हाथ बाँधे, सिर झुकाए, आँखे बंद किए, चलती हुई व्यापारियों और कर्मचारियों की श्रद्धालु भीड़......''[4]

1– मछली मरी हुई, पृ0–1
2– तदैव, पृ0–97
3– तदैव, पृ0–128
4– तदैव, पृ0–30

वस्तुतः स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् के राजनीतिज्ञों और भ्रष्टाचार का गठजोड़ महत्वपूर्ण हो गया है। राजनीति और भ्रष्टाचार के इस गठजोड़ की अभिव्यक्ति रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में भी की गयी है। प्रस्तुत उपन्यास में कांग्रेस के तीन प्रमुख पात्र हैं- डा0 सूर्यकुमार, शिवनाथ और मंगलसिंह। तीनों का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार भ्रष्टाचार से है। डॉक्टर सूर्यकुमार ने फुलवा के पति को रोज शराब पिलाकर और थोड़े-बहुत पैसे देकर उसकी जमीन अपने नाम करवाली। वेश्यावृति और पर-नारी सुख उसके आमोद-प्रमोद हैं। रामविलास उसके बारे में बताता है:

"यही तो बात है भाई साहब, इसका मासूम प्यारा चेहरा इसके फरेब के लिए सबसे बड़ा परदा है। इसके पास अपार पैसा है, कांग्रेसी होने के कारण सरकारी सत्ता की छोंट है इसके ऊपर। यह कमबख्त न जाने कितनी कमेटियों में मेम्बर है, कितनी एजुकेशनल संस्थाओं की कार्यकारिणी में है। बस इसे उन्माद हो गया है, जो चाहता है करता है।"[1]

इन्दिरा गांधी ने समाजवाद का नारा देकर सामान्य जन को आकर्षित किया किन्तु उसके साथ डॉ0 सूर्यकुमार जैसे लोग हैं तो उसके नारे को फलीभूत नहीं किया जा सकता। उपन्यास का नायक प्रमोद सोचता है:

"वैसे तो समाजवाद एक बड़ा आकर्षक नाम है किन्तु क्या वह केवल घोषणाओं से आ जायेगा? वह समाजवाद के सिपाहियों के माध्यम से ही तो आयेगा एक ही सिपाही डॉ0 सूर्य भी है। जो आदमी बिना फीस लिए एक गरीब के इकलौते पोते की दवा नहीं कर सकता, वह समाजवाद का सिपाही बनेगा?..... व्यापारियों की जमाखोरी और चोरबाजारी अफसरों और नेताओं की घूसखोरी और चंदाबाद से शह पाकर दिन-दिन बढ़ती जा रही है। पार्टियाँ पैसे वालों से चन्दे वसूल कर इनकी नाजायज हरकतों की हिफाजत करती हैं।"[2]

दूसरे प्रमुख पात्र शिवनाथ हैं। जिन्होंने एम0एल0ए0 बनकर खूब धन कमाया है। लोग काम कराने आते हैं और काम भी ऐसा जिसकी सम्भावना पर प्रश्न-चिन्ह ही लग

1- अपने लोग, पृ0- 95
2- उपरिवत्, पृ0- 246

जाये। ऐसे कामों के बदले अधिक धन मिलता है। राम साहब गर्ल्स कॉलेज के पास सिनेमा खोलना चाहते हैं और एतराज होने पर वे शिवनाथ के पास आते हैं। शिवनाथ स्वयं बताता है:

"जीता नहीं हूँ, जीने के लिए बाध्य किया जाता हूँ। अब देखो यही रायसहाब लोग हैं, ये जो सिनेमा खोलना चाहते हैं, उसकी साइट एक गर्ल्स कॉलेज के पास पड़ती है। गर्ल्स कॉलेज के आधिकारियों ने इस पर एतराज किया है, उन्होंने मुख्यमंत्री तक को लिखा है। अब ये लोग दौड़ रहे हैं कि मैं किसी तरह यह काम करा दूँ।"[1]

प्रमोद के रिश्तेदार सज्जन भैया कांग्रेस राज को दोषी ठहराते हुए कहते हैं:

"यह कांग्रेस राज तो कुछ भी नहीं कर पा रहा है, सारे खाऊ-पीऊ लोग इसमें धंस गये हैं। जिन्होंने असल में देश के लिए कुरबानी दी, उन्हें तो कोई पूछता ही नहीं। अब मुझी को देखो कांग्रेस में रहकर कौन-सा त्याग नहीं किया। लेकिन स्वराज्य मिलने के बाद सब मुझे भूल गये और हमारे पढ़े-लिखे साथी लोग एम0एल0ए0 और मंत्री बनकर लूट मचाने लगे। जब वे खुद लुटेरे हो गये तो गिरहकटों, चोरों भाइयों को कैसे रोक पायेंगे?"[2]

राजनैतिक भ्रष्टाचार का संकेत 'जल टूटता हुआ' में भी किया गया है। गाँव के सभापति और सरपंच भ्रष्ट हो गये हैं। सतीश अन्य सभापतियों और सरपंचों के बारे में सोचता है :

"....... सरपंच और सभापति भी न्याय नहीं कर रहे हैं। वे पक्षपात करते हैं, घूस लेते हैं, बलवानों से डरते हैं, अपनी जेब भारी करने में और पुरानी दुश्मनी का बदला लेने की फिराक में रहते हैं.....।"[3]

एम0एल0ए0 बन जाने के बाद तो राजनैतिक नेताओं के पौ-बारह हो जाते हैं। फटेहाल व्यक्ति भी धनवान बन जाता है। 'जल टूटता हुआ' में इलाके के एम0एल0ए0 का

1— अपने लोग, पृ0—182
2— उपरिवत्, पृ0— 223
3— जल टूटता हुआ, पृष्ठ—375

विवरण दिया जाता है जो इस प्रकार है :

"काली प्रसाद पांडे खिन्ते के एम0एल0ए0 हैं। पुराने कांग्रेसी कार्यकर्ता हैं। ऐंठ-ऐंठ कर बोलते हैं। पहले हौमियोपैथी के डॉक्टर थे। डॉक्टरी नहीं चली तो स्वाधीनता संग्राम में शामिल हो गए, फटेहाल फिरते रहे। और अब एम0एल0ए0 हैं। गोरखपुर में दो-दो कोठियाँ बनवा ली हैं, घर के पास बहुत बड़ी जमीन को (जो एक दूसरे आदमी की थी) कब्जे में कर लिया है। राजनीतिक पीड़ित के नाम तराई में चालीस-पचास एकड़ जमीन प्राप्त कर ली है।"[1]

उपरोक्त कथन से ही राजनीति भ्रष्टाचार स्पष्ट हो जाता है। ईमानदारी से गोरखपुर में दो-दो कोठियाँ नहीं बनायी जा सकतीं, दूसरे की भूमि को अपने कब्जे में कर लेना भ्रष्ट आचरण ही कहा जायेगा। सन् 1960 के बाद उन उपन्यासों में भी जिन्हें राजनैतिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता, कहीं न कहीं राजनैतिक भ्रष्टाचार की चर्चा आ ही जाती है क्योंकि अब यह सामान्य यथार्थ बन चुका है।

मन्नू भंडारी का उपन्यास 'महाभोज' एक राजनैतिक उपन्यास है जिसमें संत जैसे दिखते सत्ताधारी मुख्यमंत्री के राजनैतिक भ्रष्टाचार की अभिव्यक्ति की गई है। दासाहब प्रदेश के मुख्यमंत्री हैं वे गीता पढ़ते हैं। और कर्मयोग का सन्देश सभी को देते रहते हैं। वे रहन-सहन में देशी पद्धति को पसन्द करते हैं किन्तु उनके पुत्र विदेशी वस्तुओं से ही प्रेम करते हैं:

"दासाहब को जितना देश प्रिय है, उतनी ही देशी पद्धति भी। लड़के-बच्चे जरूर अँगरेजियत में सन गये हैं। इम्पोर्टिड वस्तुएं और इम्पोर्टिड भाषा का ही इस्तेमाल करते हैं। पर यह बच्चों की अपनी रूचि और चुनाव है, और किसी की स्वतन्त्रता पर अपने को आरोपित नहीं करते दासाहब। बच्चे छोटे थे और साथ रहते थे तब भी नहीं........"[2]

सरोहा का चुनाव आता है तो दासाहब बड़े और शक्तिशाली प्रत्याशियों के रहते हुए अपने सेवक लखन को सत्तारूढ़ दल की टिकट दिलाने में सफल हो जाते हैं। लखन की

1— जल टूटता हुआ, पृ0—441
2— उपरिवत्, पृ0— 11

हैसियत पार्टी में कुर्सी उठाने और बिछाने भर की थी। उसी समय सरोहा में बिन्दा की हत्या कर दी जाती है। एक मास पूर्व हरिजन टोला भी जलाया गया था। सभी जानते हैं कि यह कार्य जोरावर का था किन्तु आज तक कोई पकड़ा नहीं गया। लखन बिसेसर की हत्या से व्याकुल हो जाता है और दासाहब से कहता है कि जोरावार को सजा काटने दीजिये:

''और आप हैं कि इसी मूर्ख का पल्ला पकड़े हुए हैं। मारना है गरीबों को भुगतने दीजिए सजा। नहीं चाहिए हमें जोरावर के वोट। अब इसके वोटों के चक्कर में हरिजनों के सारे वोट तो गये ही ...... गाँव के दूसरे लोगों के वोट भी नहीं मिलेंगे। सारा हिसाब लगाकर देख लिया है मैंने, ले डूबेगा जोरावर का साथ। माथे पर कलंक और आत्मा पर बोझ सो अलग।''[1]

लखन की आत्मा पर बोझ है पर दासाहब की आत्मा पर कोई बोझ नहीं। जोरावर उनके घर के सदस्य जैसा है। जोरावर को चुनाव लड़ने के लिए लोग उकसा देते हैं और वह तैयार भी हो जाता है किन्तु दासाहब से मिलने आता है तो दासाहब बिसू की हत्या का मामला लेकर बैठ जाते हैं और एस0पी0सक्सैना ने जो प्रमाण जोरावर के विरूद्ध जुटाये हैं, उनकी चर्चा करने लगते हैं। जोरावर फिर भी चुनाब लड़ने के अपने निर्णय से उन्हें अवगत कराता है तो वे स्पष्ट स्वर में कहते हैं:

''उधर बिसू ने आगजनी के जो प्रमाण जुटाये थे, उन्हें लेकर बिन्दा दिल्ली जाने वाला है, इधर सक्सैना ने सारे प्रमाण जुटा लिये हैं और तुम्हें चुनाव लड़ने की सूझ रही है। विधान सभा की जगह मुझे तो डर है कि तुम्हें जेल....''[2]

दासाहब ने जोरावर के समक्ष सक्सैना द्वारा तैयार की गयी फाइल की चर्चा उसकी 'भयंकरता और नंगेपन' के साथ प्रस्तुत की और इस प्रकार उसे चुनाव लड़ने से रोक पाने में समर्थ हो गये। दूसरी ओर जोरावर को सुरक्षित करने के लिए डी0आई0जी0 को पास बुलाया। बिसू का मित्र बिन्दा है वही इस समय उसकी हत्या को लेकर उग्र हो रहा है। दासाहब फाइल में से ऐसे संकेत निकालते हैं कि बिसू का हत्यारा बिन्दा को सिद्ध किया

1– महाभोज, पृ0– 14
2– तदैव, पृ0–141

जा सके। वे डी0 आई0 जी0 के सामने इन संकेतों को प्रस्तुत करते हैं। डी0आई0 जी0 के मन की इच्छा है उसे पदोन्नत करके आई0 जी0 बनाया जाए।

यही कारण है कि वह दासाहब के प्रत्येक संकेत को आदेश मानते हैं। दासाहब एस0पी0सक्सैना की सी0 आर0 भी डी0 आई0 जी0 के सामने प्रस्तुत करते हैं। डी0 आई0 जी0 साहब सक्सैना को मुअत्तिल कर देते हैं और कहते हैं कि बिसू बिन्दा की पत्नी का प्रेमी था और बिन्दा कैसे सहन कर सकता था। अपने निष्कर्ष में प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कहते हैः

''मरने वाले दिन बिसू ने अपना अन्तिम भोजन बिन्दा के घर किया। हीरा के बयान से साफ है कि शाम का खाना उसने नहीं खाया। डॉक्टरी रिपोर्ट में जिस जहर की बात है, यह दस-बारह घंटे बाद असर करने वाला है। वह जहर इस खाने के साथ ही पहुँचा है बिसू के पेट में। खाना खिलाते ही बिन्दा शहर चला गया और दूसरे दिन लौटा। जाने से पहले बिन्दा ने झगड़े की बात खुद स्वीकार की। बिन्दा ने समझ लिया कि अभी जैसा माहौल है उसमें आसानी से......''[1]

इस प्रकार दासाहब गाँव में घोर विरोधी बिन्दा को जेल भिजवाने में समर्थ हो जाते हैं। और अपने समर्थक जोरावर को बचा ले जाते हैं। यह राजनीति भ्रष्टाचार की चरम सीमा ही है।

दासाहब चुनाव से डेढ़ महीने पहले घरेलू उद्योगों के लिए आर्थिक सहायता की योजना का आरम्भ कराते हैं, यह भी राजनैतिक भ्रष्टाचार का एक रूप है। वे पांडे जी को स्पष्ट आदेश देते हैं कि लोग पंचायत से असन्तुष्ट हैं, इसलिए इस योजना में पंचायत कहीं नहीं आनी चाहिए और उसका अधिक से अधिक लाभ-हरिजनों को मिलना चाहिए। प्रस्तुत योजना का प्रारूप विधान सभा द्वारा पारित नहीं किया गया है। मुख्यमंत्री के फण्ड से केवल पचास हजार रू0 का एक चैक योजना के लिए दिया जाता है। इससे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि योजना का भविष्य अनिश्चित है किन्तु इस कार्य से हरिजनों और खेतिहर मजदूरों के वोट उनकी पार्टी को मिल जायेंगेः

1– महाभोज, पृ0 –157

''मुख्यमंत्री के फण्ड से निकाले हुए पचास हजार रूपयों का एक चैक हीरा के हाथों से अस्थायी दफ्तर के एक अस्थायी अधिकारी को दिलवाया गया। पाण्डे जी ने अपने छोटे से भाषण में यह बात साफ कर दी कि विधान सभा में इस योजना के लिए बजट जब पास होगा, होगा। अभी तो दासाहब ने अपने फण्ड में से रूपया निकालकर योजना का शुभारम्भ कर दिया है।''[1]

राजनैतिक भ्रष्टाचार एक अन्य समाचार-पत्र के सम्पादक को विज्ञापन और कागज का कोटा बढ़ाकर देना है। लखन दासाहब से कहता है:

''एक इन 'मशाल' वालों को छूट मिली हुई है, उल्टा-सीधा जो मरजी आये छापने की इमरजेन्सी में बन्द हो गया था। ठीक था। ऐसे अखबार पर तो आपको भी ....।''[2]

दासाहब लखन से कहते है :

'और हाँ, जाओ तो जरा 'मशाल' के दफ्तर होते जाना। दत्ता बाबू ही नाम है न सम्पादक का? कोई तीन चार महीने पहले इण्टरव्यू लेने के लिए समय माँगा था..... पर कहाँ था उन दिनों समय? कहना, अब समय लेकर मिल लें किसी दिन मुझसे।''[3]

दत्ता बाबू मिलने आते हैं तो दासाहब बिसू की हत्या की चर्चा करते हुए उसे आत्महत्या प्रमाणित करते हैं। पत्रकारों की देश के प्रति, समाज के प्रति जिम्मेदारी की बात करते हैं और फिर अनायास पूछते हैं:

''सरकारी विज्ञापन मिलने लगे.... कागज का कोटा मिल रहा है.....''[4]

दत्ता बाबू अपनी परेशानियों की बात करते हैं। वे कागज का कोटा बढ़वाने की माँग करते है और दासाहब कहते हैं:

''हो जायेगा..... उसके लिए जो खानापूरी करनी है कर दीजिए। और कुछ परेशानी

1-- महाभोज, पृ0--69
2-- तदैव, पृ0--15
3-- तदैव, पृ0--22
4-- तदैव, पृ0--42

हो तो बताइए।''[1]

चलते समय स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं कि अब काम बड़ी जिम्मेदारी से होना चाहिए। आगे का संकेत भी देते हैं कि समाचारों को चटपटा और सनसनीखेज न बनाया जाये जिसका अर्थ है बिसू की हत्या को आत्महत्या ही लिखा जाये:

''आपके साप्ताहिक के कुछ अंक देखे हैं मैंने! बात की असलियत पर उतना ध्यान नहीं रहता आपका। जासूसी किस्से-कहानियों की तरह बहुत चटपटा और सनसनीखेज बनाकर छापते हैं आप बातों को। आगे से ऐसा न हो।''[2]

और यही दत्ता बाबू करते भी हैं। प्रेस में पहुँचकर सारी सामग्री दुबारा तैयार करके 'मशाल' का अंक नए तेवर के साथ आता है। उसके इन नए तेवरों से दासाहब प्रसन्न होते हैं।

दत्ता बाबू के मन में दासाहब की शाबाशी से खुशी और जेब में कागज के डबल कोटे का परमिट पड़ा हुआ है और वे जमीन से डेढ़ इंच ऊपर महसूस कर रहें हैं अपने को। हलवाई के यहाँ से दस सेर ताजा बूँदी के लड्डू बँधवाये। आज प्रेस में मिठाई बाँटेगे सबको और अगर हो सका तो पन्द्रह-पन्द्रह दिन के बोनस की घोषणा भी कर देंगे।''[3]

इस प्रकार दासाहब ने दत्ता बाबू को खरीद लिया। गत 15 दिनों में नौ सरकारी विज्ञापन मिल चुके थे और चार आगामी अंकों के लिए मिलने के आदेश हो गये। राजनैतिक भ्रष्टाचार का यह उदाहरण आज का शुद्ध यथार्थ है। मुख्यमंत्री की क्रय-शक्ति बहुत होती है। वह केवल समाचारपत्र के सम्पादक-स्वामी का ही क्रय नहीं करता अपितु विरोधी मंत्री का भी क्रय करता है। पाँच मंत्री लोचन बाबू के नेतृत्व में त्यागपत्र देने जा रहे हैं और 85 विधायकों का उन्हें समर्थन प्राप्त है। दासाहब सर्वप्रथम बापट और मेहता को तोड़ते हैं, उसके पश्चात् वे राव और चौधरी से बात करते हैं। वे लोचन को दल-बदलू सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। वे बता देते हैं कि कल लोचन को मंत्रिमंडल से निकाल दिया

1– महाभोज,, पृ0–42
2– तदैव, पृ0–42
3– तदैव, पृ0–151–152

जायेगा और शिक्षा-मंत्रालय खाली हो जायेगा। वे जानते हैं कि राव के टूटने से चौधरी का मनोबल टूट जायेगा, इसलिए राव के समक्ष शिक्षा-मंत्री का पद प्रस्तुत करते हैं:

"शिक्षा-मंत्री का पद खाली हो रहा है। राव, तुम सँभालो इस भार को। लोचन ने वैसे भी कोई सन्तोषजनक काम किया नहीं इस क्षेत्र में। मेरे हिसाब में सबसे महत्वपूर्ण है यह पद-भावी पीढ़ी का निमार्ण करने का सारा दायित्व इसी मन्त्रालय पर है। स्वीकारो इस चुनौती को।"[1]

इस प्रकार डी0 आई0 जी0 जी की तरक्की कर दी जाती है। उसे आई0 जी0 बना दिया जाता है। दूसरी ओर सुकुल बाबू अपनी रैली को सफल बनाने के लिए रैली में भाग लेने वाले व्यक्ति को दोनों समय का भोजन और पाँच रूपया देने का निश्चित करते हैं। [illegible] के लिए भी दो-दो रूपये दिये जायेंगे। इससे एक लाख व्यक्तियों की भीड़ इकट्ठी की जाती है। इस प्रकार सुकुल बाबू रैली पर लगभग पाँच लाख रूपये खर्च करते हैं।

एक सफल राजनीतिज्ञ वही होता है जो समयानुरूप बदलता रहे। श्री लाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' के प्रमुख पात्र वैद्य जी ऐसे राजनीतिज्ञ हैं। उपन्यासकार उनका परिचय देते हुए कहता है :

"अंग्रेजों के जमाने में वे अंग्रेजों के लिए श्रद्धा दिखाते थे। देसी हुकूमत के दिनों में वे देसी हाकिमों के लिए श्रद्धा दिखाने लगे। वे देश के पुराने सेवक थे। पिछले महायुद्ध के दिनों में, जब देश को जापान से खतरा पैदा हो गया था उन्होंने सुदूर-पूर्व में लड़ने के लिए बहुत से सिपाही भरती कराये। अब जरूरत पड़ने पर रातोंरात वे अपने राजनीतिक गुट में सैकड़ों सदस्य भरती करा देते थे। पहले भी वे जनता की सेवा जज की इजलास में जूरी और असेसर बनकर, दीवानी के मुकदमों में जायदादों के सिपुर्ददार होकर और गाँव के जमीदारों में लम्बरदार के रूप में करते थे। अब वे कोऑपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डायरेक्टर और कॉलिज के मैनेजर थे।"[2]

कोऑपरेटिव यूनियन में गबन हो जाता है। यूनियन में सुपरवाइजर रामस्वरूप ने

1— महाभोज, पृ0—135

2— राग—दरबारी, पृ0—41

बीजगोदाम में रखे गेहूँ के दो ट्रक बाजार में ले जाकर बेंच दिये थे। थाने में इसकी रिपोर्ट गबन के रूप में की गयी। वैद्य जी इस गबन से प्रसन्न ही हुए क्योंकि उन्होंने कहा कि :

''हमारी यूनियन में गबन नहीं हुआ था। इसी कारण लोग हमें सन्हेह की दृष्टि से देखते थे अब तो हम कह सकते हैं हम सच्चे आदमी हैं। गबन हुआ है और हमने छिपाया नहीं है। जैसा है वैसा हमने बता दिया है।''[1]

पुलिस ने गबन की रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही नहीं की और यूनियन का सुपरवाइजर निकट के नगर में ही रह रहा है। यूनियन के एक डाइरेक्टर को एक पार्क में तेल मालिश कराते हुए वह दिखा था। डायरेक्टर साहब भी पार्क मे तेल-मालिश करा रहे थे और सामने ही एक पेड़ की छाया में बेंच पर बैठा रामस्वरूप भी तेल मालिश करा रहा था दोनों में किसी ने एक-दूसरे से कुछ कहा-सुना नहीं किन्तु कस्बे में लौटकर डायरेक्टर साहब ने वैद्य जी को सूचित किया। वैद्य जी को डायरेक्टरों की बैठक बुलानी पड़ी। छोटे पहलवान भी एक डायरेक्टर हैं किन्तु वे बैठक में भाग लेने नहीं जाते क्योंकि उनका दृष्टिकोण स्पष्ट है कि प्रस्ताव पास करने की अपेक्षा रामस्वरूप को गिरफ्तार कराया जाये:

'रंगबाजी की बाह नहीं बेटा, मेरा तो रोऑ-रोऑ सुलग रहा है। जिस किसी की दुम उठाकर देखो, मादा ही नजर आता है। बैद महाराज के हाल हमसे न कहलाओ। उनका खाता खुल गया तो भम्भक जैसा निकल आएगा। मूँदना मुश्किल हो जाएगा। यही रामस्वरूप रोज बैद्य जी के मुँह-में मुँह डालकर तीन-तेरह की बातें करता था और जब दो ठेला गेहूँ लदवाकर रफूचक्कर हो गया तो दस दिन से टिलटिला रहें हैं। हम भी यूनियन में हैं। कह रहे थे प्रस्ताव में चलकर हाथ उठा दो। हम बोले कि हमसे हाथ न उठवाओ महाराज; मैं हाथ उठाऊँगा तो लोग काँपने लगेंगे। हाँ! यही रामस्वरूप रोज शहर में घसड़-फसड़ करता है, उसे पकड़वाकर एकलक्खी इमारत में तो बन्द कराते नहीं, कहते हैं कि प्रस्ताव कर लो।''[2]

परिस्थितियों के अनुसार प्रस्ताव पारित करके सुपरवाइजर को गिरफ्तार करने की

1– रागदरबारी, पृ0–50

2– उपरोक्त, पृ0–95

माँग करनी चाहिए थी किन्तु ऐसा नहीं किया गया। प्रस्ताव में सरकार से अनुदान की माँग की गयी। रंगनाथ के पूछने पर वैद्य बताते हैं:

"हम लोगों ने प्रस्ताव किया है कि सुपरवाइजर ने जो हमारी आठ हजार रूपये की हानि की है, उसकी पूर्ति के लिए सरकार अनुदान दे।"[1]

रंगनाथ को इस प्रस्ताव पर आश्चर्य होता है। वह वैद्य जी से पूछता है कि गबन सुपरवाइजर ने किया है तो सरकार उसका हर्जाना क्यों दे? वैद्य जी इसमें शासन अकर्मण्यता मानते हैं और बडे तार्किक ढंग से अपनी बात समझाने का प्रयास करते हैं:

"तो कौन देगा? सुपरवाइजर तो अलक्षित हो चुका है। हमने पुलिस में सूचना दे दी है। आगे सरकार का दायित्व है। हमारे हाथ में कुछ नहीं है। होता है, तो सुपरवाइजर को पकड़कर उससे गेहूँ का मूल्य वसूल लेते। अब जो करना है, सरकार करे। या तो सरकार सुपरवाइजर को बन्दी बनाकर हमारे सामने प्रस्तुत करे या कुछ और करे। जो भी हो, यदि सरकार चाहती है कि हमारी यूनियन जीवित रहे और उसके द्वारा जनता का कल्याण होता है तो उसे ही यह हर्जाना भरना पड़ेगा। अन्यथा यह यूनियन बैठ जाएगी। हमने अपना काम कर दिया। आगे का काम सरकार का है। उसकी अकर्मण्यता भी हम जानते हैं।"[2]

इन सब बातों से स्पष्ट है कि वैद्य जी का भी गबन में हाथ रहा है। यही कारण है कि इंस्पेक्टर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि गबन वैद्य जी के संज्ञान में हुआ। वैद्य जी को त्यागपत्र देने के लिए मजबूर होना पड़ा किन्तु उन्होंने मैनेजिंग डायरेक्टर के पद पर अपने बड़े पुत्र बद्री पहलवान को ही चुनवा दिया। इसके लिए उन्हें विरोधियों को बलपूर्वक बैठक से निकालवाना पड़ा।

वैद्य जी अपने विरोधी अफसर का तबादला करवाकर सफलता पाते रहे। एक बार एक दरोगा ने वैद्य जी के कार्यकर्ता जोगनाथ को पकड़लिया और उसकी जमानत लेने से इंकार कर दिया। इंटर कॉलेज के 'मास्टरों' में झगड़ा हुआ तो दोनों ओर के अध्यापकों

1— रागदरबारी, पृ0— 96
2— तदैव, पृ0—97

और प्रधानाध्यापक के विरूद्ध दफा 107 लगा दी। दस दिन में ही उसका तबादला हो गया। प्रिन्सिपल महोदय रंगनाथ से कहते हैं:

"बाबू रंगनाथ, इतने दिन अपने मामा के साथ रहकर भी तुमने उन्हें नहीं पहचाना। इससे पहले वाले थानेदार को उन्होंने बारह घण्टे में शिवपालगंज से भगाया था। इन्हें तो, लगता है, चौबीस घण्टे मिल गये।"[1]

जोगनाथ अदालत से ससम्मान रिहा होता है तो वैद्य जी उससे दरोगा के विरूद्ध मानहानि का मुकदमा करवा देते हैं। दरोगा को दोनों पक्षों में समझौता कराने के लिए वैद्य जी की शरण में आना पड़ता है। वैद्य जी समझौते के लिए दरोगा से भी धन झटक लेते हैं।"[2]

इंटर कॉलेज में वे अपने रिश्तेदारों की नियुक्ति करते हैं और रिश्तेदार न मिलने पर प्रिन्सिपल के रिश्तदारों की नियुक्ति होती है।

कस्बे के दूसरे नेता बाबू रामाधीन भीखमखेड़वी थे। कलकत्ता प्रवास के समय शायरों से प्रभावित होकर उन्होंने अपने नाम के सामने भीखमखेड़वी जोड़ लिया था। अफीम के व्यापार में वे पकड़े गये और उन्हें दो साल की सजा हो गयी। वे अपने गाँव के पास के कस्बे शिवपाल गंज में आकर बस गये और उन्होंने अपने चचेरे भाई को सभापति बनवा दिया।

"शुरू में लोगों को पता ही न था। कि सभापति होता क्या है, इसलिए उनके भाई को इस पद के लिए चुनाव तक नहीं लड़ना पड़ा। कुछ दिनों बाद ही लोगों को पता चल गया कि गाँव में दो सभापति हैं जिसमें बाबू रामाधीन गाँव-सभा की जमीन का पट्टा देने के लिए हैं, और उनका चचेरा भाई, जरूरत पड़े तो, गबन के मुकदमें में जेल जाने के लिए है।"[3]

रामाधीन ने गाँव के लड़कों को जुआ खेलना सिखा दिया था और अफीम के पौधे बो लिए थे। जिससे अफीम का व्यापार किसी न किसी स्तर पर चलता रहे:

1– रागदरबारी, पृ0–253
2– तदैव, पृ0–365
3– तदैव, पृ0–58

''बाबू रामाधीन का एक जमाने तक गाँव में बड़ा दौर रहा। उनके मकान के सामने एक छप्पर का बँगला पड़ा था जिसमें गाँव के नौजवान जुआ खेलते थे, एक ओर भंग की ताजी पत्ती घुटती थी। वातावरण बड़ा काव्यपूर्ण था। उन्होंने गाँव में पहली बार कैना, नैस्टर्शियम, लार्कस्पर आदि अंग्रेजी फूल लगाये थे। उनमें लाल रंग के कुछ फूल थे, जिनके बारे में वे कभी-कभी कहते थें 'यह पॉपी है और यह साला डबल पॉपी।''[1]

सनीचरा गाँव-सभा के प्रधान-पद का प्रत्याशी है। उसे प्रतीत होता है कि जनता उसे तिकड़मी नहीं समझकर कहीं पराजित न कर दे, इसलिए वह चुनाव से पूर्व कोई तिकड़मी का काम करने के लिए निकलता है:

''प्रधान बनने के पहले जरूरी था कि सनीचरा जनता को बता दे कि देखो, भाइयों मैं भी किसी से कम तिकड़मी नहीं हूँ और भला आदमी समझकर मुझे वोट से कहीं इंकार न कर बैठना। वह गाँव में कोई ऊँचा काम करके दिखाना चाहता था। उसने रंगनाथ से सुना था कि चुनाव के पहले बड़े-बड़े नेता अपने-अपने चुनाव-क्षेत्र में कहीं का रूपया किसी न किसी तरकीब से ठेलों पर लादकर ले जाते हैं और जनहित के नाम पर उसे नाली में फेंक देते हैं। सनीचरा ने भी, बिना वैद्य जी से सलाह लिये, कुछ इसी तरह का करिश्मा दिखाना चाहा। इस काम के लिए उसने कालिका प्रसाद नामक गंजहे को अपना साथी चुना।''[2]

कालिका प्रसाद का काम था सरकारी अनुदान और ऋण खाना :

''कालिका प्रसाद का पेशा सरकारी ग्रांट और कर्जे खाना था। वे सरकारी पैसे के द्वारा सरकारी पैसे के लिए जीते थे। इन पेशे में उनके तीन सहायक थे-क्षेत्रीय एम0 एल0 ए0, खद्दर की पोशाक और उनका वाक्य, 'अभी तो वसूली की बात ही न कीजिए। आपको कार्यवाही रोकने में दिक्कत न हो, इसलिए मैंने ऊपर भी दरख्वास्त लगा दी है।''[3]

1— रागदरबारी, पृ0—58—59
2— उपर्युक्त, पृ0—191
3— उपर्युक्त, पृ0—192

यहाँ भी एम0 एल0 ए0 की सहायता राजनैतिक भ्रष्टाचार के अन्तर्गत आती है। कालिका प्रसाद ने मुर्गीपालन की, चमड़ा कमाने की, खाद के गड्ढे को पक्का करने की, बिना धुएँ का चूल्हा लगवाने की, नये ढंग से संडास बनवाने की 'ग्रांट' ली थी। सनीचरा ने एक ए0 डी0 ओ0 से सुना कि सहकारी खेती की सरकारी योजना है और वह कालिका प्रसाद को लेकर ऊसर भूमि पर सहकारी खेती की योजना को लेकर ए0 डी0 ओ0 के पास पहुँच गया। एक सरकारी अधिकारी को उद्घाटन करने के लिए भी तैयार कर लिया। फारम का काम चलाने के लिए सोसायटी को पाँच सौ रूपये मिलेगा। वैद्य जी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुएः

'वैद्य जी खुश होकर सुन रहे थे। उन्हें देखते ही लगता था कि भविष्य उज्जवल है। [illegible] एक पंचतंत्रनुमा कहानी सुनाकर सनीचरा की तारीफ करते हुए कहा कि जब शेर का बच्चा पहली बार शिकार करजे निकला तो उसने पहली छँलाग में ही बाहरसिंघा मारा।'[1]

निष्कर्ष

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात चुनावों के कारण सामान्य व्यक्ति राजनीति से जुड़ गया। समाज में जातिवादी राजनीति घुन की तरह प्रवेश कर गयी है और उसे खोखला कर रही है। हिन्दी के उपन्यासों में इस स्थिति का चित्रण किया गया है। आज की राजनीति में समाज-सेवा, राष्ट्र-प्रेम, सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा, त्याग आदि का अभाव हो गया है और उसके स्थान पर मूल्यहीनता, स्वार्थ और भ्रष्टाचार का बोलबाला बढ़ता जा रहा है। नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बंधु था', मन्नू भंडारी के 'महाभोज', श्री लाल शुक्ल के उपन्यास 'रागदरबारी', रामदरश मिश्र के 'अपने लोग', तथा 'जल टूटता हुआ' में राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट आचरण और अनुचित हथकंडों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। राजनीति से सामान्य जन का मोह-भंग होने लगा है। हिमांशु जोशी के उपन्यास 'सु-राज' में मोह-भंग की स्थिति का सशक्त ढंग से चित्रण किया गया है।

1– रागदरबारी, पृ0–197

चतुर्थ अध्याय

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सांस्कृतिक दृष्टि से विघटन

- सांस्कृतिक परिवर्तन एवं विघटन
- धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति अनास्था
- साम्प्रदायिकता

चतुर्थ अध्याय

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सांस्कृतिक दृष्टि से विघटन

(क) सांस्कृतिक परिवर्तन एवं विघटन

भारतीय संस्कृति गत्यात्मक रही है, इसलिए उसमें परिवर्तन की प्रक्रिया एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। किन्तु उसे विघटन की संज्ञा नहीं दी जा सकती। परिवर्तन धीरे-धीरे होता है और वह मूल्यहीनता की स्थिति उत्पन्न नहीं करता। जबकि विघटन में नकारात्मक मूल्यों के कारण मूल्यहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

स्वतन्त्रता से पूर्व संस्कृति में विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों के कारण सांस्कृतिक परिवर्तन को एक दिशा अवश्य मिल रही थी, किन्तु उसमें सांस्कृतिक विघटन का अभाव ही था। श्री नरेश मेहता का उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' स्वतन्त्रता से पूर्व की घटनाओं पर आधारित है। यही कारण है कि उसमें जिन संस्कारों का वर्णन किया गया है, वे परम्परागत ही हैं। श्रीधर की पुत्री गुणवन्ती और सुशीला के विवाह से पूर्व लड़की दिखाने का प्रसंग आता नहीं क्योंकि उस युग में विवाह से पूर्व लड़की दिखाने की परम्परा नहीं थी। बारात सात दिन तक रूकवायी जाती थी। श्री मोहन के विवाह के समय बारात सात दिन रोकी गयी थी:

"वह (श्रीधर) तीन दिन में ही घबरा गया था। जब पिता ने उसे बताया कि बारात अभी चार दिन और रूकेगी तो वह रूआँसा हो गया। वह देखता कि दूसरे सारे बाराती सबेरे-सबेरे खूब नाश्ता कर मालिश करवाते, फिर नहाने किसी बावड़ी पर चले जाते। तब खाना आता। उसके बाद अमराई की गहरी छाया में पड़े अपने-अपने तम्बुओं में चौथे पहर तक सोते रहते। और फिर भंग ठंडाई छनती। उपरान्त नहाया जाता। नाश्ता किया जाता। उसे लगा यहाँ से जाने की किसी को चिन्ता नहीं थी। सभी आनन्द मना रहे थे।[1]"

1– यह पथ बन्धु था, पृ0–157

''बारात के साथ रंडियों, तबलची और साजिन्दों को भी ले जाया जाता था, जो बाराती और घरातियों का मनोरंजन करते थे।''[1]

यह परम्परावादी विवाह था। किन्तु अन्य प्रकार के विवाह भी शिक्षित समुदाय में आरम्भ हो गये थे जो परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं। बिशन और कमल का विवाह पहले कोर्ट में होता है:

''तय नहीं था कि शनिवार को कमल आएगी और वे दोनों दो गवाहों को लेकर सीधे कोर्ट में जाकर विवाह करेंगे। आरम्भिक कार्यवाही पहले ही कर चुका था।''[2]

महिलाएं तथा समाज कोर्ट के विवाह को मान्यता देने की मानसिकता नहीं बना पाया था। इसलिए बिशन की दीदी बिना अग्नि की साक्षी के विवाह मानने को तैयार नहीं। वे स्पष्ट कहती हैं:

''कोर्ट में हो चाहे जेल में तेरा ब्याह। एक बिना अग्नि की साक्षी के मैं नहीं मानने की। ब्याह न हुआ स्कूल की भर्ती हो गयी कि रजिस्टर में लिखा दिया।''[3]

बिशन की दीदी इसलिए बीच का मार्ग चुनती है। पहले कोर्ट में विवाह हो फिर अग्नि की साक्षी में हो जाये:

''और जैसा तू कहेगा वही होगा। तूने जब चिट्ठी में लिख दिया कि मेडिकल स्कूल के तेरे कोई जौहरी मित्र हैं उन्हीं के कमरे पर सब होगा। ठीक है, ब्राह्मण वहीं पहुँच जाएगा। पहले कोर्ट हो आना उसके बाद वहाँ हो जाएगा। तब तो ठीक है?''[4]

इसी प्रकार कमल के मामा और इन्दू दीदी के भाई वामन द्वारा विलायती परी को पत्नी बनाने की चर्चा भी है। इसमें सांस्कृतिक परिवर्तन की गति तो अवश्य ही दिखाई पड़ती है किन्तु इसे पूर्णतः विघटन की स्थिति नहीं माना जा सकता ''यह पथ बन्धु था' में अनमेल विवाह का चित्रण भी किया गया है। बाला साहब पचपन वर्ष की आयु में 15 वर्ष की युवती से विवाह करते हैं।

1– यह पथ बन्धु था, पृ0–156–157
2– तदैव, पृ0–391
3– तदैव पृ0–389
4– तदैव पृ0–389

"बुढ़ापे में तीसरा विवाह कर बाला साहब ने अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल की थी। इतने लोकप्रिय तथा यशवान व्यक्ति के लिए आत्महत्या के अतिरिक्त और मार्ग शेष ही नहीं रह गया था।"[1]

बाला साहब अपनी पुत्री इन्दु का विवाह भी द्विजवर से करते हैं और वह भी इन्दु से आयु में बहुत बड़ा होता है:

"दीदी के पति निश्चय ही काफी बड़ी आयु के व्यक्ति लग रहे थे। उसके कान के पास ही कोई आपस में फुसफसा रहे थे।

-वर तो बहुत बड़ा है।

-द्विजवर है, दूसरा ब्याह है।"[2]

इसी प्रकार विभिन्न मन्दिरों - कालिका मन्दिर, गणेश मन्दिर, बैजनाथ महादेव आदि का वर्णन किया गया है। गंगा-स्नान आदि का वर्णन भी परम्परा का सूचक है।

उज्जैन में क्षिप्रा के घाट पर एक साधु का वर्णन अवश्य ही ऐसा हुआ है जिसे अपसंस्कृति और अनैतिक कहा जा सकता है। साधु एक माई को सम्बोधित करते हुए कहता है कि क्या वह साधु की सेवा करेगी और उसके हाँ कहने पर वह महिलाओं के समक्ष ही सार्वजनिक रूप से घाट पर लँगोटी बदलता है:

"और साधु ने सामने से लटकायी हुई लँगोटी आकर घाट पर बड़े सार्वजनिक रूप से 'माइयों' से धर्म-चर्चा करते हुए बदली।"[3]

साधुओं की इस अनैतिकता में धर्मभीरू नारियों अनैतिकता नहीं देखती किन्तु यदि कोई विधुर अथवा विधवा किसी नारी अथवा पुरूष से घंटों बात कर ले तो उन्हें उनका कृत्य अनैतिक लगता है। यशपाल के उपन्यास 'बारह घंटे की बिन्नी को जब सच्ची सहानुभूति दिखाने वाला फेंटम मिलता है और उसकी सहानुभूति उसे अपनी मौसेरी बहिन

1– यह पथ बन्धु, था, पृ0–53
2– उपरोक्त, पृ0–143
3– उपरोक्त, पृ0–183

के पास नहीं लौटने देती तो वह बारह घंटे बाद एक पत्र द्वारा जेनी को सूचित करती है। जेनी क्षुब्ध हो उठती है। वह लारेंस से कहती हैः

''चिन्ता से छुटकारा क्या मिला। इस डॉयन ने तो और मार डाला। डेविल टेक हर (भाड़ में जाए) उफ् इन्सान भी क्या है? सुबह किस हालत में गयी थी और बारह घंटे में ही बदल गयी।''[1]

लारेंस बिन्नी का पक्ष लेते हुए कहता है कि फेंटम के रूप में बिनी को सुरक्षा और संतोष की अनुभूति हुई होगी तो जेनी क्रोध में भरकर कहती हैः

''आग लगे उसकी सुरक्षा और संतोष में। राह चलते के गले लिपट जाना सुरक्षा और संतोष है या नारकीय पतन है।''[2]

जेनी को बिन्नी का फेंटम के पास रूक जाना पूर्णतः अनैतिक प्रतीत होता है। उसका दृष्टिकोण पूर्णतः परम्परावादी है। वह लारेंस से स्पष्ट शब्दों में कहती हैः

''मिस्टर लारेंस, अनैतिकता और क्या होती है? डायन इतने दिन मर जाने की इच्छा का स्वॉंग करती रही और बारह घंटे में ही बह गयी। सुबह साढ़े आठ बजे यहाँ से रोती-रोती गयी थी और अब संध्या साढ़े आठ बजे तक यह गुल खिला दिया' जेनी ने आँखे पोंछली, ''भाड़ में जाये चुड़ैल। स्वांग भी कैसा, लोगों को अपने गम में बहलाने के लिये सूख कर आधी रह गयी।''[3]

जेनी की नैतिकता की बात का समर्थन उसका पति पामर भी करता हैः

''हाँ-हाँ नैतिकता तो मुख्य चीज है, नैतिकता के बिना तो ढाँचा बिगड़ जायेगा, सब गड़बड़ हो जायेगा,। फिर तो किसी को किसी का डर, लिहाज ही नहीं रहेगा।''[4]

जेनी भारतीय संस्कृति के अनुसार प्रेम सम्बन्ध में निष्ठा को भारतीय नारी की विशेषता बताती है। इसके लिए वह सावित्री-सत्यवान की कथा को आदर्श रूप में प्रस्तुत करती हैः

1– बाहर घंटे, पृ0–96
2– तदैव, पृ0–98
3– तदैव, पृ0–100
4– तदैव, पृ0–103

"यहाँ की संस्कृति और परम्परा में प्रेम और विवाह को आत्मिक सम्बन्ध माना गया है। आपने मैट्रिक के कोर्स में सावित्री-सत्यवान की कथा नहीं पढ़ी? वह है हमारी परम्परा का प्रतीक।"[1]

उपन्यासकार आधुनिक स्थिति में प्राचीन परम्परा और संस्कार पर प्रहार करना चाहता है, इसलिए उसने लॉरेंस के माध्यम से जेनी और उसके पति को समझाने का प्रयास किया है कि आत्मिक प्रेम कोई चीज नहीं होती अपितु पार्थिव आवश्यकता मुख्य है। सावित्री और सत्यवान की कथा में भी पार्थिवता के तत्व को महत्वपूर्ण मानता है। वह जेनी से कहता है:

"सत्यवान मर गया था तो सावित्री ने उसके बिना जी सकने से इंकार कर दिया। मृत्यु के देवता यम से झगड़ पड़ी, सावित्री सत्यवान की स्मृति से आत्मिक प्रेम निबाह कर तो संतुष्ट नहीं हुयी।बैठकर उसके नाम की माला ही तो नहीं फेरती रही। उसने यम से झगड़ा किया। अपने प्रेम की पार्थिव, याद रखो पार्थिव, आवश्यकता के लिए यम से सशरीर सत्यवान को वापस माँगा।"[2]

लारेंस बिन्नी के व्यवहार में न कोई अनैतिकता देखता है और न उसे दंडनीय मानता है। उसकी दृष्टि में बिन्नी को आज भी प्रेम की आवश्यकता है और उसे यह प्रेम फेंटम से ही मिल सकता है क्योंकि दोनों की सह-अनुभूति है। वह जेनी को सम्बोधित करते हुए कहता है:

"तुम खिन्न न होना; बताओ बिन्नी के लिए रोमी क्या थी? प्रेमी के लिए प्रेम-पात्र क्या होता है? बिन्नी रोमी से जो संतोष पाती थी, वही उसके लिए रोमी था। रोमी की स्मृति का अर्थ उस संतोष की चाह है। रोमी की निरन्तर याद करने का अर्थ होगा उस संतोष की चाह बनाये रखना, उस चाह को तीव्र करते रहना। उस चाह को अनुभव करना, रोमी को भूल जाना नहीं है। इसमें धोखा, दगा क्या है? रोमी तो चला गया परन्तु बिन्नी जीवित है रोमी की याद करके वह प्रेम और प्रेम के सहारे की आवश्यकता के अभाव में ही वह

1– बारह घण्टे, पृ0–105
2– उपरोक्त, पृ0–100–101

जीवन को असम्भव समझ रही थी। सावित्री की तरह व्याकुल होकर भाग्य से लड़ रही थी। बिन्नी सावित्री की तरह फेंटम में सत्यवान या रोमी को पुनः पा रही है।''[1]

इस प्रकार यदि विधवा को कोई सच्चा सहानुभूति देने वाला मिल जाता है तो उसके पुनः प्रेम में अनैतिकता देखना उपन्यासकार को प्रिय नहीं है। यशपाल प्राचीन परम्परा का विरोध करते हुए नारी और पुरूष को अपना जीवन सार्थक और सफल बनाने के लिए एक मार्ग प्रदर्शित करते हैं। इस मार्ग में वे संस्कृति का ह्रास नहीं मानते।

सांस्कृतिक विघटन को प्रस्तुत करने वाला उपन्यास 'मछली मरी हुई' है जिसके रचयिता राजकमल चौधरी हैं। उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास में समलैंगिक यौनाचार में लिप्त नारियों को आधार बनाया है। किन्तु पुरूषों की समलैंगितकता का संकेत भी एक स्थान पर किया गया है। उपन्यासकार ने समलैंगिकता पर लिखे गये सभी पाश्चात्य उपन्यासों को पढ़ा है। समलैंगिकता के सम्बन्ध में अपने उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं:

''संसार के लगभग सभी 'सभ्य' देशों में पुरूषों का समलैंगिक आचरण कानून द्वारा वर्जित है। स्त्रियों को, अधिकतर देशों में यह स्वाधीनता अब तक मिली हुई है। पेरिस, न्यूयार्क, टोकियो- जैसे शहरों में सम्पन्न और स्वाधीन स्त्रियों ने अपने लिए ऐसे 'क्लब' और 'आरामघर' बनाए हैं, जहाँ अपनी 'प्रेमिका' के साथ एकत्र होकर, वे विभिन्न उपायों और उपचारों से समलैंगिक सहजाचार करतीं हैं। कानून इन्हें रोक नहीं पाता।''[2]

उपन्यास में शीरीं सेलसबर्ग एक सुन्दर युवती है जिसकी बड़ी बहन ने उसे समलैंगिक बनाया। उपन्यासकार ने शीरीं के जीवन-परिचय में इस बात का उल्लेख किया है:

''एक दिन बड़ी बहन ने बियर से भरे गिलास के साथ समझाया कि दो औरतें भी परस्पर शारीरिक जीवन बिता सकती हैं। बिना किसी पुरूष की सहायता लिए बिता सकती हैं। बड़ी बहन ने तरीका बताया। अपने बनाए तरीके पर आगे बढ़ती गई। शीरीं

1– बारह घंटे, पृ0–108
2– मछली मरी हई, पृ0–10

आश्चर्यचकित थी। वह बेहद उत्तेजित थी। बहन जो करना चाहती थी, करने देती थी। तनिक भी इन्कार नहीं, जरा भी एतराज नहीं। कोई पुरूष शीरीं को इतनी शीतलता इतनी शीतल उत्तेजना, इतनी शारीरिक वेदना नहीं दे सकता था। नहीं दे सका था।''[1]

समलैंगिकता का पूरा ब्यौरा उपन्यास में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। शीरीं अपनी बड़ी बहन के साथ सोती थी। खिड़की और दरवाजे बंद करके, सीलिंग फैन चलाकर समलैंगिक क्रिया में व्यस्त हो जाती थी:

''दोनों बहने रात मे बिस्तर पर इकट्ठी सोती थीं। दरवाजे और खिड़कियाँ बंद कर लेती थीं। सीलिंग फैन पूरी स्पीड में चलता रहता था। दिसम्बर, जनवरी में भी घंटे दो घंटे के लिए चलता रहता था। शीरीं खुश थी कि बड़ी बहन इतनी प्यारी है। इतनी होशियार है। शीरीं भीग जाती थी। उसे महसूस होता था, उसके हाथ और पाँव ठंडे पड़ रहे हैं। जमें जा रहे हैं। फिर भी वह बड़ी बहन की नंगी देह से लिपटी रहती थी। अपनी उँगलियों से उसे सहलाती और थपथपाती रहती थी। शीरीं की उँगलियाँ भींग जाती थी। बड़ी बहन खुशी से चीखती थी और शीरीं के स्तनों पर दाँत गड़ा देती थी। खुशी और पागलपन और बेहोशी।''[2]

शीरीं ने मेहता से विवाह किया किन्तु वृद्ध मेहता उसे संतुष्ट न कर सका। शीरीं निर्मल पद्मावत को ताकतवर आदमी समझकर उसके पास आ जाती है किन्तु निर्मल मानसिक रोगी है। इसलिए वह भी उसे सन्तुष्ट नहीं कर पाता। शीरीं प्रिया को समलैंगिक बना देती हैं प्रिया शीरीं की गर्म और खूबसूरत माँस-पिंडों में खो जाना चाहती है:-

''यही चाहती है प्रिया शीरीं के खूबसूरत और गर्म माँसपिंडों की गहराइयों में खो जाना चाहती है। मगर वह मछली है। उसके पास बाँहें नहीं हैं, पाँव नहीं है। वह तैर सकती है। डूब नहीं सकती। डूब जाना चाहती है। शीरीं में, निर्मल में नहीं। निर्मल आदमी नहीं है, जानवर खूँखार जंगली जानवर।''[3]

1– मछली मरी हुई, पृ0–110–111
2– उपर्युक्त, पृ0–111
3– उपर्युक्त, पृ0–124

सांस्कृतिक विघटन का दूसरा रूप यह है कि निर्मल पद्मावत अपनी प्रेमिका स्वर्गीय कल्याणी की पुत्री प्रिया के साथ बलात्कार करता है। प्रिया का पिता डॉक्टर रघुवंश अपनी आत्महत्या से पूर्व जो पत्र निर्मल पद्मावत को लिखता है उसमें पहले वह नैतिकता का प्रश्न उठाता है:

''क्या तुम भी उस जिप्सी-नाच के नायक बनना चाहते थे, जिसमें कहानी का नायक प्रेमिका की बड़ी लड़की से विवाह कर लेता है? क्या जीवन में यह सम्भव है? सम्भव भी हो तो क्या यह उचित है?''[1]

दूसरी ओर उसी पत्र में डॉक्टर इस बात पर संतोष व्यक्त करता है कि इस जंगलीपन से दो लाभ हुए- (1) निर्मल पद्मावत को अपनी खोई शक्ति वापस मिल गई और (2) प्रिया होमोसैक्सुअल हो गयी थी जिससे उसे छुटकारा मिल गया:

''और इस जंगलीपन का शिकार हुई, कल्याणी की लड़की-प्रिया। ''

''पर शिकार बनकर भी प्रिया ने वह काम कर दिया, जो कल्याणी करना चाहती थी। तुम आदमी बन गए। तुम जो कमजोरी महसूस कर रहे थे, वह दूर हो गयी। मैंने खून से लथपथ प्रिया का शरीर देखा था। तुमने उसके साथ बलात्कार किया। एक बार नहीं, कई बार। कल्याणी ने तुम्हारी जो शक्तिछीन ली थी, प्रिया ने उसे वापस लौटा दिया। यह एक अच्छी बात हुई।''

''मुझे इस बात का जरा भी दुख नहीं है कि तुमने मेरी बेटी के साथ राक्षसों जैसा व्यवहार किया। मुझे खुशी है, क्योंकि शीरीं की दोस्ती करके प्रिया भी 'होमोसैक्सुअल' हो गई थी। और इसी तरह का राक्षसी व्यवहार उसे फिर से साधारण स्त्री बना सकता था। अब वह बीमार नहीं है। स्वस्थ हो गई है, स्वाभाविक हो गई है ''[2]

अतृप्ति आत्मरति को जन्म देती है। निर्मल पद्मावत शीरीं को अतृप्त छोड़कर प्रिया को लेकर फ्लैट में चला जाता है। उस समय शीरीं के सामने और कोई मार्ग नहीं रह जाता वह स्वयं ही अपने आपको संतुष्ट करने का प्रयास करती है:

1— मछली मरी हुई, पृ0—133

2— उपरोक्त, पृ0—136

"शीरीं पंलग पर खड़ी हो गई खड़ी होकर नीचे झुकी। और नीचे झुकी। सिर के बाल सामने आ गए। स्तन घुटनों से चिपक गये। शीरीं ने अपने हाथ जाँघों के बीच डाल दिए और वह चीखकर बिस्तर पर गिर पड़ी। स्प्रिंगदार पंलग थरथराने लगा। शीरीं पागल है। बेहोश है। भूखी बिल्ली है। शीरीं तड़फती है। अपने शरीर को नोच-नोचकर खा जाना चाहती है।"[1]

राजकमल चौधरी ने अपने उपन्यास 'मछली मरी हुई' में एक स्थान पर समलैंगिक पुरूष की चर्चा भी की है। निर्मल पद्मावत माँ के चले जाने पर अपने गाँव से भागकर करांची चला गया था। करांची से लाहौर और फिर सियालकोट। सियालकोट में एक मुस्लिम होटल में प्याले धोने का काम उसे मिल गया था। एक इत्र बेचने वाले मौलाना से उसकी दोस्ती हो गई मौलाना ने जब उसके साथ समलैंगिक यौनाचार करना चाहा तो वह चाकू लेकर खड़ा हो गया था:

"......लेकिन मौलाना इसरारूल हक उसे एक दिन अपने कमरे में ले गए, तो वह चाकू निकालकर खड़ा हो गया। सब्जी काटनेवाला चाकू!..... इस चाकू के बाद, कोई आदमी उसे अपने कमरे में नहीं ले गया। मौलाना ने सारे ग्राहकों के सामने होटल के मालिक, फतेहसिंह से कहा, 'तुम्हारा यह लड़का, कसम से, हरामजादे की औलाद है, बादशाह। मैंने औलाद की तरह इसकी दुआएँ ली तो मेरे दोस्तो, मुझे ही चाकू दिखाने लगा...।"[2]

सांस्कृतिक विघटन का मूल कारण है पूँजीपतियों की बाढ़। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जो नये पूँजीपति बने, वे अपने यौन-सुख का भी ध्यान रखते थे। वे कहीं व्यापारिक वार्ता के लिए जाते थे तो साथ में 'रिसेप्शनिस्ट' अथवा सेक्रेटरी जाती थी जो आधुनिक मन मिजाज की होती थी। 'मछली मरी हुई' में इसका वर्णन किया गया है:

"जो साहब किसी औरत के साथ आता है, बीबी के सिवाय, उसे बड़े होटलों के बैरे अपना 'गुडलक' समझते हैं। 'ग्रेट ईस्टर्न' के स्तर के होटलों में पत्नी के साथ ठहरने की

1– मछली मरी हुई, पृ0–109
2– उपरोक्त, पृ0–42

आदत कम लोगों में होती है। लेकिन आने वाले लोग ज्यादातर ऐसे होटलों में नहीं आते। दफ्तर की 'रिसेप्शनिस्ट' साथ आती है। कोई भी आधुनिक मन-मिजाज की स्टेनो लड़की। मेरी सेक्रेटरी से मिलिए-शी इज।माई इंसपिरेशन। माई 'टच-मी-स्वीट'गर्ल। मेरी इंसपिरेशन।' एक कम्पनी का मालिक, 'ईस्टर्न' के सदाबहार बरामदे में बैठकर, 'ओल्ड स्मगलर' की नाव में तैरता हुआ, दूसरी कम्पनी के मालिक से कहता है। थोड़ी देर बाद दोनों मालिक अपनी-अपनी सेक्रटरी या स्टनो या रिसेप्शानिस्ट लड़की की कमर में हाथ डालकर, जूट, चाय, इस्पात और लोहे-कोयले की बातें करते हुए, टैक्स लादने वाली सरकार के सात पुरखों को गालियाँ निकालते हुए, रात्रि भोजन के लिए बने बड़े हॉल में चले आते हैं। वक्त मिलते ही, एक स्टेनो दूसरी स्टेनो से पूँछती है, "तुझे क्या पगार मिलती है? कितनी बार तू 'एबार्शन करा चुकी है? तेरी साड़ी कितने की आई है?"[1]

प्रभास चंद्र नियोगी जब तक करोड़पति नहीं बनते किसी 'पर-स्त्री' का स्वाद नहीं चखते। जिस दिन उनके मुंशी जी एकाउन्टेन्ट उन्हें बताते हैं कि अब उन्हें करोड़पति मानने में किसी महाजन को आपत्ति नहीं होगी, उसी दिन वे कमला देवी डांसर को रात्रि में अपने यहाँ बुलाते हैं। कई साल पहले उन्होंने कमला डांसर को देखा था किन्तु मन में निश्चय किया था कि जब तक वे करोड़पति नहीं हो जायेंगे, तब तक परस्त्री के साथ नहीं सोयेंगे:

"..... प्रभास चंद्र नियोगी के मुंशी जी एकाउंटेन्ट ने हिसाब जोड़कर बताया कि अब उन्हें 'करोड़पति' मान लेने में किसी भी महाजन को इन्कार नहीं होगा और नियोगी ने उत्तर देते हुए कहा, 'मुंशी जी, आप कमला देवी डांसर को फोन कर दीजिए। रात में यहाँ चली आएंगी।' कमला उन दिनों कलकत्ता शहर की सबसे प्रसिद्ध नाचने-गाने वाली औरत थी। नियोगी ने एक बार उसे 'मोती महल' थियेटर के स्टेज पर देखा था, कई साल पहले लेकिन मन-ही-मन उन्होंने तय किया था।

"करोड़पतियों की छोटी-सी कतार में शामिल होने के बाद, प्रभासचंद्र नियोगी ने जीवन में पहली बार-पर-स्त्री' का स्वाद लिया।"[2]

1– मछली मरी हुई, पृ0–34–35

2– उपर्युक्त, पृ0–40

गाँवों में पर-स्त्री-गमन को बहुत बुरा माना जाता है। सभी एक-दूसरे के बारे में जानते हैं कि किसका किससे सम्बन्ध है। किन्तु रंगे हाथ पकड़े जाने पर ही समस्या उत्पन्न होती है। रादरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' में एक षड्यन्त्र के द्वारा कुंजू और बदमी को एक ही घर में पकड़ लिया जाता है तो पुलिस वाले उन पर घाट करने का आरोप लगा देते हैं। इसी प्रकार पार्वती हँसिया से मिलने बगीचे में जाती है। दोनों के बीच प्रेम-व्यापार चल रहा था कि अचानक रामबहादुर पहुँच जाता है। पार्वती का रूप एकदम बदल जाता है:

''और दोनों इस आहट से चौंक उठे। पार्वती का सारा नशा एकाएक झड़ गया वह जोर-जोर से हँसिया को मार-मार कर चीखने लगी। छोड़-छोड़ अभागे, नहीं तो मैं तेरी जान ले लूँगी, कमीने मुझे कुछ ऐसा-वैसा समझा है क्या?''[1]

हँसिया और पार्वती के सम्बन्धों के बारे में सभी जानते हैं किन्तु फिर भी हँसिया पर मार पड़ती है और वह चुपचाप पिटता रहता है:

''जमुना भौजी देखती है, यह हरजाई कैसी बैठी सिसक रही है और यह बेचारा चुपचाप बैठा मार खा रहा है, सत-अस्त कुछ नहीं बोलता। पार्वती की बात पर किसी ने विश्वास नहीं किया कि हँसिया जबरदस्ती उड़ा ले जा रहा था। यह साँठ-गाँठ तो कब से चल रही है। सभी जानते हैं लेकिन आग लगाने के लिए इतना ही काफी है कि चमार के लौंडे ने बामन की छोकरी से यह सम्बन्ध ही क्यों जोड़ा।''[2]

गाँवों में सांस्कृतिक परिवर्तन शहरों में जाकर पढ़ने वाले छात्रों के द्वारा हो रहा है। वे होली गाने के स्थान पर सिनेमा के गीत गाते हैं। उत्सवों में सम्मिलित होने का कार्य मूल्यहीन होता जा रहा है:

''लड़के पढ़ने लगे हैं, शहरों से आते हैं तो अधकचरा शहरीपन लेकर आते है। वे समझते हैं कि देहाती राग-रंग असभ्यता है, देहातीपन है, वे सिनेमा के गाने गायेंगे, होली नहीं। वे शरीफ बनने के चक्कर मे तटस्थ दृष्टा हो गये हैं, साबुन से घुले उनके शरीर पर

1-- जल टूटता हुआ, पृ0--351

2-- तदैव, पृ0--353

कोई गोबर न डालने पाये देहात के लोग हैं, जिन्हें अब अपने कामों में पिसते रहने और एक-दूसरे से बढ़कर चालाकी करने में उनमें होड़ मची है। अब वे जिन्दगी के

राग-रंग को अड्डुओं और निकम्मों का काम समझने लगे हैं। सौन्दर्य और आनन्द इनके हाथ से छूटता जा रहा है, जो पहले के लोगों की अभाव-ग्रस्त जिन्दगी में भी एक उल्लास और मूल्य भरता था।''[1]

होली के लिए सम्मत बटोरने का कार्य पहले महीनों पूर्व से आरम्भ होता था। किन्तु अब युवकों में वह उत्साह देखने को नहीं मिलताः

''लड़कों की टोली गली की ओर से भागी जा रही है, अर्जुन भी है उसमें ....समस्त बटोर रहे हैं सब .... पता नहीं आज किसका-किसका गोहरा साफ करेंगे सब। लेकिन लड़कों में उतना जोश नहीं रहा, महीने में दो-एक बार निकलते हैं सम्मत बटोरने के लिए और अब तो समस्त गाड़ने में भी कोई रस नहीं लेता .....''[2]

गाँवों के खेल भी धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं। पहले गाँव के लड़के चिक्का-कबड्डी उत्साहपूर्वक खेलते थे। किन्तु अब तो वे इसे गवाँरू चीज समझते हैं:

''अब तो बच्चे बाहरी स्कूलों में पढ़-लिख लेने के नाते इन खेलों को गँवारू चीज समझते हैं, शहरी नकल करते हैं; किन्तु ये गाँव के छोकरे न देहात के काम के रह पाते हैं और न शहर के सीख पाते हैं। देहातों में पलने वाले भी अब अपने दरवाजे पर बने रहने में शान समझते हैं।''[3]

महानगरी संवेदना के उन्यासों में सांस्कृतिक विघटन देखने को मिलता है। पुरूष जिस नारी से प्रेम करता है, उससे विवाह नहीं करना चाहता। विवाह के लिये वह नारी के धनाढ्य परिवार की आवश्यकता पर बल देता है। निरूपमा सेवतीने अपने उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें' में यही प्रमाणित करने की चेष्टा की है। अनुभा रमनेश से प्रेम करती है। रमनेश भी उससे प्रेम करता है किन्तु जैसे ही उसका बिजनेस चमकने लगता है,

---

1— जल टूटता हुआ,पृ0—343

2— उपरोक्त, पृ0—348

3— उपरोक्त, पृ0—32

रमनेश की माँ उसके साथ अपने पुत्र का विवाह करने से इंकार कर देती है। अनुभा जहाँ रहती है, उस घर के ऊपरी मंजिल पर देह का व्यापार होता है और रमनेश उसके साथ विवाह न करने के लिए इसी कारण को उपयुक्त समझता है:

"मेरे दोस्त तक मुझे छेड़ते हैं कि तुम्हारी फियांसी कैसी जगह रहती है। जानती है उनमें से कुछ तुम्हारी बिल्डिंग के उस शोहरत वाले फ्लैट में जा चुके हैं। बात को झूठ भी कैसे कहूँ। यह गंदी बात जुड़ने से हमारी सगाई की बात ही मिट्टी में मिल गयी लगने लगी है।"[1]

रमनेश का यह तर्क उचित नहीं था। वास्तविकता कुछ और ही थी। अनुभा उस वास्तविकाता से परिचित है। वह जानती है कि-

"बात तो यही है कि इस बीच रमनेश का बिजनेश भी चमक गया। और डैडी आप नौकरी करने वालों में सामर्थ्य ही कितनी जो चमचमाते रूपयों से रमनेश की माँ का वैसा लोलुप सुख पहुँचा सकते और रमनेश अपनी माँ के हाथ का खिलौना है। क्योंकि उसका बाप भी अपनी पत्नी को ही सारी जिम्मेदारी सौंप खुद को मुक्त होने में ही आन्नद पाता है।"[2]

दूसरी प्रमुख नारी पात्र है- सुनीला। वह पेन्टर विजय से प्रेम करती है। प्रेम के समय शारीरिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। सुनीला गर्भवती हो जाती है। किन्तु विजय उससे विवाह नहीं करना चाहता क्योंकि उसे ऐश्वर्य चाहिए। सुनीला ने अपनी डायरी मे लिखा:

"पर अब तुम कह रहे थे कि क्या करूँ, शादी नहीं कर सकता। हालात ही ऐसे हैं। अगर कोई बेहद अमीर लड़की होती तो संभव हो पाता। पिता जी का इतना आतंक है कि बहनों के लिए दहेज जुटा दूँ तभी विवाह करने देंगे। -और सुन्नी, तुम्हारी तनख्वाह साढे चार सौ ही तो है न। मान लो मैं अपना घर छोड़, परिवार छोड़ तुम्हारे पास आ जाऊँ। तो क्या गुजर हो सकेगी।"[3]

1- पतझड़ की आवाजें, पृ0-33
2- तदैव, पृ0-33
3- तदैव, पृ0-105

विजय एक बहुत बड़े ऑफिसर ही पत्नी श्रीमति चावला को बहुत महत्व देता है क्योंकि वह उसके 'वन-मैन शो अरेंज' करा देती है। जो भी धनाढ्य लड़की दिखाई देती है। उसी को वह अपनी ओर आकर्षित करने मे समर्थ रहता है। यही कारण है कि सुनीला ने विजय को 'पुरूष-वेश्या' की संज्ञा दी उसकी डायरी के ये अंश पढ़कर अनुभा सोचती है:

"सुनीला ने विजय को 'पुरूष-वेश्या तक कहा है। पर ऐसा कहने के बाद खुद भी कितनी बैचन रही होगी। इस बैचैनी को अपनी कुंठा में बदला है। यह लिख-लिख कर कि अच्छा है पुरूष भी वेश्या बनें। वह भी अपमान के उस चरम को पाएं। लड़कियों को भी अपनी प्यास मिटाने का रास्ता मिले। जब वे चाहें उन्हें भी चंद रूपयों में तृप्ति मिल सके। कब खुलेंगे पुरूष-वेश्याओं के बाजार।"[1]

महानगर में पुरूष की मानसिकता ने भी भारतीय संस्कृति का विघटन किया है। पुरूष चाहे कम्पनी का मालिक हो, उच्चाधिकारी हो अथवा ब्वॉय फ्रेन्ड हो, वह नारी के साथ सैक्स सम्बन्ध स्थापित करना ही चाहता है। अनुभा नगर के सबसे बड़े सॉलिसिटर के बेटे के ऑफिस में टाइपिस्ट थी। वह किसी बहाने से छुट्टी के बाद भी उसे अपने ऑफिस में बिठाए रखता था। अन्ततः उसने चिढ़कर उसे नोटिस दे दिया और नई टाइपिस्ट रखने के लिए इंटरव्यू लिये जा रहे थे। एक लड़की इंटरव्यू देने के बाद केबिन से निकली और उसका पिता केबिन में गया। उस समय जो वार्तालाप अनुभा ने सुना, वह चौंका देने वाला था:

"बाप ने साफ कहा था कि तीन साल के लिए पक्की नौकरी का कांट्रेक्ट दे दें और तनख्वाह चार सौ से नीचे की न हो तो लड़की आठ-नौ बजे तक भी रह सकती है। और उसका चालीस बरस का बॉप जिस विचित्र-सी जीत से हंसा था। उससे उसका सत्रह बरस का मन एक अनाम भय के गर्त मे डूब-सा गया था।"[2]

सी0 के0 अनुभा को अपना पी0एस0 बनाने की बात करता है। पी0एस0 का वेतन

1— पतझड़ की आवाजें, पृ0— 109
2— वही, पृ0—53

एक हजार रू0 महीना तथा अन्य अनेक सुविधाएं। उसे फर्म से रूपया उधार दिलवा देगा। जिससे वह अपना बदनाम मकान बदल सकेगी। किन्तु उसके बदले में वह चाहता है- सैक्स सम्बन्ध। वह प्रस्ताव रखता कि दूर के बीच पर एक दोस्त का कॉटेज है। सारा दिन साथ रहेंगे, पिकनिक मनायेंगे। वह पूछती है कि और कौन साथ होगा तो वह उत्तर देता है:

''क्या बेवकूफों जैसी बातें करती हो। हमें अपनी बातें करनी है।.... ओह, आई नो यू आर ए स्मार्ट गर्ल। बट डोंट ट्राई टु ओवर स्मार्ट मी। कम आन, बी ए नाइस गर्ल। बनाती हो परसों का प्रोग्राम? यहीं से पिकअप कर लूँगा तुम्हें।''[1]

इसी प्रकार अमन सुनीता को बताता है कि वह चौदह वर्ष की आयु से ही प्रेमालाप करता रहा है। वह प्रेम के मामले में पूरी स्वतन्त्रता का पक्षपाती है:

''आई स्टार्टेड माई लव लाइफ एट दि एज ऑफ फॉर्टीन। प्रेम-प्रसंगों के बारे में कहता रहा कि- हर इंसान को प्रेम के मामले में बिल्कुल स्वतन्त्रता होनी चाहिए- चाहे वह स्त्री हो या पुरूष। देखो सुन्नी, तुम भी मुझे कभी दम घोंटने वाले बंधन में नहीं डालना।''[2]

ऊषा सुखाड़िया में रूचि लेती है सुखाड़िया सैक्स की ही बातें करता है:

''अरे वह तो थी अपने अमन के साथ। मैं तो इस सुखाड़िया में इन्टरेस्टेड थी न। डिनर के बाद सिर्फ मैं ही उसके साथ बाहर घूमने चल दी पर वह साला सिर्फ सैक्स में ही इन्टरेस्टेड निकला।''[3]

अनुभा उससे पूछती है कि सुखाड़िया से उसके विवाह की बात नहीं जमी क्या? ऊषा बड़ी ही तटस्थता से उत्तर देती है:

''बिल्कुल नहीं जी। पर अच्छा ही हुआ, शुरू से पता चल गया। इस लिहाज से फ्रेंक निकला। आई एप्रीशिएट हिम। साफ कह गया कि देखो, शादी तो हम अपने रैंक की लड़की से ही करेंगे। वरना हमारा बाप हमें कुछ देगा नहीं। इतना सख्त है। पर भी तुम

1–पतझड़ की आवाजें, पृ0–127
2– तदैव, पृ0–122
3– तदैव, पृ0–95

बनायी गयी हो कि लगता है दुनिया का बड़े से बड़ा मजा सिर्फ दोनों साथ रहकर ही पा सकते हैं। कमाल की बात की उसने।''[1]

दूसरी ओर एक अन्य सुसंस्कृत पात्र है धीरेन जो माया और राम दोनों को पाना चाहता है। अनुभा उससे फोन पर पूँछती है कि माया कौन है और राम कौन है तो उसका उत्तर दिलचस्प है:

''हाँ माया ..... ।' वे शब्दों को जमा-जमा कर बोल रहे थे, 'सुनो, माया तो है अपनी मेमसाहब की दुनिया यानी वह अपने को मान जाएं बस एक बार। और राम है अपने दिल की दुनिया। अपना असलीपन।'' [2]

'पतझड़ की आवाजें' शीर्षक उपन्यास के उक्त उदाहरण महानगर के सांस्कृतिक विघटन को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं। महानगर में सैक्स की नैतिकता अवश्य समाप्त हो गयी है किन्तु अपयश वहाँ भी मिलता है। धीरेन और अनुभा बदनाम हुए क्योंकि उनके विवाहेत्तर सम्बन्धों में स्थिरता आ गयी। उषा, सुनीला तथा अन्य लड़कियों के भी दूसरे पुरूषों से सम्बन्ध रहे पर उन्हें बदनामी नहीं मिली।''[3]

शिक्षा-संस्कृति का प्रमुख अंग है। आज की शिक्षा-पद्धति ऐसी है कि उसके विरूद्ध कोई भी भाषण देने के लिए तत्पर रहता है श्री लाल शुक्ल के उपन्यास 'राग-दरबारी' में एक अधिकारी अनायास ही छिंगामल विद्यालय इंटर कॉलेज के सामने से अपनी कार से निकलता हुआ जाता है। कुछ दूर जाने के बाद उसके मन में भाषण देने की बात आती है। वह ड्राईवर को गाड़ी घुमाने और कॉलेज का आकस्मिक निरीक्षण करने का आदेश देता है। कॉलेज की छुट्टी कर दी जाती है। मीटिंग की जाती है और वे छात्रों को इस बात पर डाँटते हैं कि उनमें संयम की कमी है और अध्यापकों को इस बात पर डाँटते हैं कि वे छात्रों को संयम की शिक्षा नहीं देतें उसके पश्चात वे शिक्षा-पद्धति की खराबी पर अपने विचार व्यक्त करते हैं:

1-- पतझड़ की आवाजें, पृ0--96

2-- तदैव, पृ0--124

3-- तदैव, पृ0--135

"उन्होंने कहा कि हमारी शिक्षा-पद्धति खराब है और शिक्षा को पाकर लोग क्लर्क ही बनना चाहते हैं। उन्होंने लड़कों को सुझाव दिया कि शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन की जरूरत है। उन्होंने विद्वानों और हजारों समितियों का हवाला देकर बताया कि हमारी शिक्षा-पद्धति खराब है। उन्होंने विनोबा का और यहाँ तक कि गांधी का हवाला दिया। तब कॉलेज के मैनेजर वैद्यजी ने भी सिर हिलाकर प्रिंसिपल, अन्य मास्टर और बाजार के घुमक्कड़ों और शोहदों तक ने इस बात का समर्थन किया। उनकी बात से ताड़ी पीने वालों और जुआड़िओं तक को पूरा इत्मीनान हो गया कि हमारी शिक्षा-पद्धति खराब है।"[1]

शिक्षा के सम्बन्ध में सामान्य व्यक्ति से लेकर विशेषज्ञों तक का मत यही है कि 'शिक्षा-पद्धति खराब' है। किन्तु वही पद्धति चल रही है। राग दरबारी में शिक्षा-संस्थाओं में गुटबन्दी की समस्याओं को भी प्रस्तुत किया है। व्यंग्यात्मक ढंग से उसमें गुटबन्दी को भारतीय परम्परा के रूप में प्रस्तुत किया गया है:

"वेदान्त हमारी परम्परा है और गुटबन्दी का अर्थ वेदान्त से खींचा जा सकता है, इसलिए गुटबन्दी भी हमारी परम्परा है, और दोनों हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ हैं। आजादी मिलने के बाद हमने अपनी बहुत-सी सांस्कृतिक परम्पराओं को फिर से खोदकर निकाला है। तभी हम हवाई जहाज से यूरोप जाते हैं, पर यात्रा का प्रोग्राम ज्योतिषी से बनवाते हैं, फॉरेन एक्सचेन्ज और इन्कमटैक्स की दिक्कतें दूर करने के लिए बाबाओं का आशीर्वाद लेते हैं, स्कॉच ह्विस्की पीकर भगन्दर पालते हैं। और इलाज के लिए योगाश्रमों में जाकर साँस फुलाते हैं, पेट सिकोड़ते हैं। उसी तरह विलायती तालीम में पाया हुआ जनतंत्र स्वीकार करते हैं। और उसको चलाने के लिए अपनी परम्परागत गुटबन्दी का सहारा लेते हैं। हमारे इतिहास में - चाहे युद्धकाल रहा हो, या शन्तिकाल - राजमहलों से लेकर खलिहानों तक गुटबन्दी द्वारा 'मैं' को 'तू' और 'तू' को 'मैं' बनाने की शानदार परम्परा रही है।"[2]

छंगामल विद्यालय इन्टर कॉलिज की प्रबन्धकारिणी समिति और अध्यापकों में गुटबन्दी है। वैद्यजी प्रबन्धकारिणी समिति के मैनेजर हैं। उनका अनुभव परिपक्व है:

1– राग दरबारी, पृ0–206
2– वही, पृ0–101

''यह सही है कि वैद्य जी को छोड़कर कॉलिज में गुटबन्दी में अभी अनुभव की कमी थी। उनमें परिपक्वता नहीं थी, पर प्रतिभा थी, उसका चमत्कार साल में एकाध बार जब फूटता, तो उसकी लहर शहर तक पहुँचती। वहाँ कभी-कभी ऐसे दाँव भी चले जाते, जो बड़े-बड़े पैदायशी गुटबन्दों को भी हैरानी में डाल देते। पिछले साल रामाधीन ने वैद्यजी पर एक ऐसा दाँव फेंका था। वह खाली गया, पर उसकी चर्चा दूर-दूर तक हुई। अखबारों में जिक्र आ गया।उससे एक गुटबन्द इतना प्रभावित हुआ कि वह शहर से कॉलिज तक सिर्फ दोनों गुटों की पीठ ठोंकने को दौड़ा चला आया।''[1]

शिक्षा की स्थिति यह है कि अध्यापक आटे की चक्की चलाता है और कॉलेज में साइंस पढ़ाता है। आपेक्षिक घनत्व को समझाने के लिए वह आटा-चक्की का उदाहरण देता है। दूसरी आटा-चक्की मुन्नू की है जिसका भतीजा उसी कक्षा का छात्र है और इसलिए आपेक्षिक घनत्व के स्थान पर कक्षा में भाषण आटा-चक्की पर ही होता रहता है। मास्टर मोतीराम बेईमान मुन्नू को नकलची प्रमाणित करते हुए बताते हैं कि उनकी चक्की तो पहले से ही चल रही थी। और चक्की तथा कॉलेज का पारस्परिक सम्बन्ध है :

''सुन लिया। बेईमान मुन्नू ने तो डीजल इंजिन मेरी देखा-देखी चलाया था। पर मेरी चक्की तो यह कॉलेज खुलने से पहले से चल रही थी। मेरी ही चक्की पर कॉलिज की इमारत के लिए हर आटा पिसवाने वाले से सेर-सेर भर आटे का दान लिया गया। मेरी ही चक्की से वह आटा शहर में बिकने के लिए गया। मेरा ही चक्की पर कॉलिज की इमारत का नक्शा बना और मैनेजर काका ने कहा कि मोती, कॉलिज में तुम रहोगे तो मास्टर ही, पर असली प्रिंसिपली तुम्हीं करोगे। सब -कुछ तो मेरी चक्की पर हुआ और अब गाँव में चक्की है तो बेईमान मुन्नू की। मेरी चक्की कोई चीज ही न हुई।''[2]

मोती मास्टर जी को अपनी चक्की चलने की आवाज सुनायी दी तो वे कक्षा में पढ़ाना छोड़कर चक्की देखने चले गये। प्रिंसिपल साहब कॉलेज में 'राउन्ड' लेने निकले तो उन्हें वह कक्षा अध्यापक के बिना दिखाई दी। मास्टर मोतीलाल मैनेजर साहब के

1— रागदरबारी, पृ0—99
2— वही, पृ0—28

रिश्तेदार हैं, इसलिए प्रिंसिपल साहब दूसरे मास्टर मालवीय को बुलाकर कहते हैं' कि वह उस कक्षा को भी देख ले। मालवीय कक्षा सात को पढ़ा रहा था और वह नवीं कक्षा थी। मालवीय अपनी इस कठिनाई को प्रस्तुत करता है तो प्रिंसिपल साहब कहते हैं :

"मैं सब समझता हूँ। तुम भी खन्ना की तरह बहस करने लगे हो मैं सातवें और नवें का फर्क समझता हूँ। हमका अब प्रिंसिपली करै न सिखाव भैया। जौनु हुकुम है, तौनु चुप्पे कैरी आउट करो। समझयौ कि नाहीं।"[1]

वैद्यजी का छोटा पुत्र रूप्पन बाबू जो दसवीं कक्षा में पिछली तीन वर्ष से है, रंगनाथ को कॉलेज के सम्बन्ध में बताता है :

"फिर तुम इस कॉलेज का हाल नहीं जानते। लुच्चों और शोहदों का अड्डा है। मास्टर पढ़ाना-छोड़कर सिर्फ पालिटिक्स भिड़ाते हैं। दिन-रात पिताजी की नाक में दम किये रहते हैं कि यह करो, वह करो, तनख्वाह बढ़ाओं, हमारी गर्दन पर, मालिश करों। यहाँ भला कोई इम्तेहान में पास हो सकता है।"[2]

कॉलिज से यदि कोई छात्र निकाला जाता है तो कॉलिज के विकास के लिए उससे कुछ लेकर पुनः उसे प्रवेश दे दिया जाता है। एक प्रेम-पत्र पकड़े जाने पर यही होता है :

"चार दिन हुए कॉलिज में एक प्रेम-पत्र पकड़ा गया था। जो एक लड़के ने किसी लड़की को लिखा था। लड़के ने चालाकी दिखाई थी, पत्र पढ़ने में लगता था कि वह सवाल नहीं, लड़की के पत्र का जबाब है; पर चालाकी कारगर नहीं हुई। लड़का डाँटा गया, पीटा गया, कॉलिज से निकाला गया, फिर उसके बाप के इस आश्वासन पर कि लड़का दोबारा प्रेम न करेगा।, और इस वादे पर कि कॉलिज के नये ब्लॉक के लिए पचीस हजार ईटें दे दी जाएंगी, कॉलिज में फिर से दाखिल कर लिया गया।"[3]

'रामदरश मिश्रा' के उपन्यास 'अपने लोग' में भी शिक्षा-क्षेत्र की दुर्व्यवस्था का

1– रागदरबारी, पृ0–31
2– तदैव, पृ0–40
3– तदैव, पृ0–40

वर्णन किया गया है। विलास एक स्कूल में गत दस वर्षों से पढ़ा रहा है। किन्तु उसे स्थायी नहीं किया गया। वह प्रमोद को बताता है कि :

"मैं एम0 ए0 हूँ, दस साल से पढ़ा रहा हूँ और अब तक मुझे अस्थायी रखा गया है। और मुझे कक्षाएं दी जाती हैं दस साल तक मुझसे कम कालिफाइड आदमी इंटर पढ़ाता है। चलो यह भी कोई बात नहीं, लेकिन अब तो मेरी नौकरी ही जाना चाहती है।"[1]

प्रमोद गोरखपुर के एक कॉलेज में दिल्ली से रीडर बनकर आया है, कॉलिज का वातावरण जातिगत गुटबन्दी का जो अध्यापकों से लेकर छात्रों तक व्यापत है। फीस माफी में भी गुटबन्दी का प्रभाव रहता है। प्रमोद ने दो अत्यन्त निर्धन छात्रों से फीस माफ कराने का वायदा किया था। किन्तु ब्राह्मण और क्षत्रिय प्राध्यापकों की तू-तू मैं-मैं देखकर वह उन विधार्थियों के नाम की सिफारिश न कर सका :

"उससे उसके गाँव के पास के दो लड़कों ने जो निहायत गरीब थे लेकिन ब्राह्मण थे कह रखा था। इस जलील किस्म के वातावरण में उसे हिम्मत नहीं हुई कि वह किसी ब्राह्मण लड़के की सिफारिश करे और पेट में दर्द होने का बहाना बनाकर स्टाफ-रूम में जाकर आर्म-चेयर पर पसर गया।"[2]

कॉलेज में छात्र-संघ का अध्यक्ष जीवन सिंह है। वह एक नए शिक्षक केशव गुप्त को थप्पड़ मार देता है। उस छात्र को निकालने के प्रश्न पर अध्यापक पुनः जातिवाद के चक्कर में फंस जाते हैं। बहुतम से जीवन सिंह को निष्कासित करने का निर्णय लिया जाता है। छात्रों में बाहरी राजनीति का प्रभाव भी है। कॉलेज में छात्र हड़ताल करते हैं। एक ओर जनसंध का प्रभाव है तो दूसरी ओर कांग्रेस का। पुलिस बुलायी जाती है और पुलिस और छात्रों के मध्य संघर्ष होता है :

"प्रिंसिपल ने पुलिस को फोन किया। पुलिस आयी और छात्रों की जमकर पिटाई होने लगी। छात्रों की ओर से भी ढेले फेंके जाने लगे। बहुत से छात्रों के सिर लहूलुहान हो गये। जो भी पकड़ मे आया, पुलिस गिरफ्तार करती गयी। हड़ताल पर बैठे जीवन सिंह को भी

1—अपने लोग, पृ0—40—41
2—तदैव, पृ0— 77—78

पकड़कर ले गयी। चारों ओर भगदड़ मच गयी। आह-कराह की आवाजों से वातावरण काँप उठा।''[1]

छात्र-हड़ताल और पुलिस- पी0ए0सी0 के द्वारा दमन करने की घटना पर आधारित उपन्यास 'अपना मोर्चा' में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास 'में एक उद्देश्य विशेष को अपने सामने रखा है। छात्रों की सहायता मेहतर, ग्वाले और किसानों ने भी की थी। उनका दृष्टिकोण है कि हड़ताल विभिन्न वर्ग के व्यक्ति करते हैं। परिणामतः पुलिस उन्हें मारपीट कर ठीक कर देती है और हड़ताल का कोई लाभ नहीं मिल पाता। उपन्यास का एक पात्र ज्वान कहता हैः

''क्या ये बारी-बारी से होने वाले आन्दोलन एक साथ नहीं'' हो सकते? एक ही साथ और एक ही बात के लिए?''[2]

उपन्यास का उद्देश्य कुछ भी हो उपन्यास में विश्वविद्यालय की स्थिति का सटीक चित्रण किया गया है। छात्रों के आन्दोलन के पश्चात् विश्वविद्यालय में प्राध्यापकों की सभा हो रही है। पुलिस लाठीचार्ज में अनेक छात्र घायल हुए हैं और अनेक छात्र बन्दीगृह में बन्द हैं। किन्तु प्राध्यापकों को उस सबकी चिन्ता नहीं है। दलबंदी की स्थिति यह है कि एक प्रोफेसर पक्ष में बोलता है तो दूसरा अवश्य ही विपक्ष में बोलेगा। जिन विभागों में प्रोफेसर एवं रीडर-पदों पर नियुक्ति होनी है, उनके सम्भावित प्रत्याशी कुलपति की दृष्टि में आने के लिए बोलने को आतुर हैं। किन्तु उनकी समस्या है कि वे हिन्दी में बोलें अथवा अँग्रजी में :

''हाल ठसाठस भरा है। प्राध्यापकों की सभा हो रही है। अपने विषय के पारंगत और दुनिया देखे प्रोफेसरों की सभा। बाहर कारों और स्कूटरों का जलसा है। अन्दर सूट और टाईयों की महफिल है। लोग उठ रहे हैं, बैठे रहे हैं झुक रहे हैं, कान में बात कर रहे हैं और फिर अपनी जगह। एक खुशबू और लगातार ठहाके। सैकड़ों लड़के जेल में हैं, सैकड़ों अस्पताल में, रहे-सहे स्टेशन पर और यहाँ ठहाके। सुनगुन है कि अगर डॉ0 ठाकुर पक्ष

1— अपने लोग, पृ0— 217—218
2— अपना मोर्चा, पृ0—101

में बोलेंगे तो प्रोफेसर पंडित विरोध करेंगे। डॉ0 वर्मा पहले से ही एक जोशीला भाषण तैयार करके लाए हैं, चाहे वह पक्ष में जाय या विपक्ष में। और चूँकि... विभाग में अध्यक्ष और... विभाग में रीडर का चुनाव होने वाला है इसलिए डॉ0 राम और गर्ग हर हालत में समय लेकर बोलेंगे। उनके सामने समस्या केवल यह है केवल कि वे किस भाषा में बोलें अंग्रेजी में या हिन्दी में? वे भाषा पर बंगाली कुलपति का रूख जानने के लिए बेचैन है।''[1]

उपन्यासकार शिक्षा-क्षेत्र के विघटन को प्रस्तुत करने के लिए ही प्राध्यापकों की सभा का विस्तृत वर्णन करता है। प्रोफेसरों में छात्रों के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं है। उनका परस्पर वार्तालाप शुद्ध वैयक्तिक स्तर का अथवा सामान्य स्तर का है। सभा में बैठकर आपस में वे बात कर रहे हैं, उससे उनका भौतिकवादी दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है :

''मेरे अगल-बगल और आगे-पीछे बातें हो रही हैं... 'साकेत कालोनी' में कितने प्लाट बिकाऊ हैं? उनकी दर क्या है? इस सूट का कपड़ा कहाँ से लिया था? यह पुलोवर बनवाया है या खरीदा है?... जल्दी से क्या मिलेगा? स्कूटर या मोटरवाइक? ऐसे 'वेस्पा' के बारे में क्या ख्याल है? एक 'फिएट' का आर्डर दिया था लेकिन अब लोग कह रहे हैं कि 'अम्बेसेडर' आरामदेह होगी।... एक बार ईरान गया था तो जमीन खरीदी, अब की कनाडा या अमरीका का जुगाड़ बैठ जाय तो मकान भी बन जाय।... बड़ी वाली बच्ची की शादी करना है, कोई लड़का दिखे तो बताइएगा।... भई, लाटरी के पचासों टिकट खरीदे, मगर सब बेकार। लगता है, जिन्दगी भर मुदर्रिसी ही करनी है।... बाहर तो खटर-पटर हो रही है, देखो चाय ही मिलती है या और कुछ? अरे वाह सचमुच में बधाई के पात्र तो लड़के हैं जिन्होंने आपके दर्शन का हमें मौका दिया...।''[2]

अन्तिम वार्तालाप महत्वपूर्ण है। विश्वविद्यालय में ऐसे प्रोफेसर भी हैं जिनके महीनों दर्शन भी नहीं होते। प्रोफेसरों को यदि नौकरी से निकाल दिया जाये तो वे कुछ नहीं कर सकते, जबकि एक सामान्य व्यक्ति कुछ भी कर पाने में समर्थ रहेगा। एक युवा जिसका नाम ज्वान है प्राध्यापक से कहता है:

1– अपना मोर्चा, पृ0–10

2– उपरोक्त, पृ0–10–11

"भई देखो, पेशा एक साँचा होता है और मैंन तो इस पेशे या तुम्हारे विश्वविद्यालय में ज्यादातर लूले-लँगड़े, ऐंचा-ताने, टेढ़े-बाँकूच चश्मदीद गवाहों जैसे ही लोग देखे हैं जिन्हें देखकर लिट्टो-लिट्टो करने की तबीयत होती है। सोचो, अगर वे अध्यापक होते तो क्या होते?"[1]

एक अन्य दृश्य विभाग का है। विभाग में बहस हो रही है। एक विद्वान बुद्धिजीवी को परिभाषित करते हैं कि वह किसी विचारधारा से बँधा हुआ नहीं होना चाहिए :

"देखो भई। मैं तो यह मानकर चलता हूँ कि कोई विचारधारा पूर्णतः सत्य नहीं होती। कुछ बातें जनसंघ में अच्छी हैं, कुछ साम्यवाद में, कुछ समाजवाद में, कुछ काँग्रेस में। जिस दल में जो बातें अच्छी हों, उन्हें खुले दिल से स्वीकार करना चाहिए। यह हर बुद्धिजीवी का फर्ज है। बुद्धिजीवी वह है जो किसी भी विचार धारा से बँधा हुआ न रहे। और सुन लीजिए, अगर आप अपना विचार मुझ पर थोपना चाहेंगे तो में उठकर चला जाऊँगा।"[2]

विभाग के अध्यक्ष की स्थिति के बारे में उपन्यासकार बताता है कि वे दो ही प्रकार की भाषा समझते हैं- चापलूसी और धमकी की भाषा। विभाग के रीडर अथवा प्राध्यापक इन्हीं दोनों भाषाओं में से किसी एक भाषा का अवसर के अनुकूल चुनाव करते हैं :

"लेकिन अध्यक्ष केवल दो प्रकार की भाषाएं समझते हैं- चापलूसी और धमकी की। मेरे सहयोगी जरूरत के मुताबिक इन दोनों भाषाओं का इस्तेमाल करते रहते हैं। लोग कहते हैं कि पहले ऐसा नहीं था। मगर जब से मुछ मुदर्रिस - जिन्हें 'नार्मल' या जे0टी0सी0 करके किसी पाठशाला में होना चाहिए था - इन भाषाओं की मदद से यहाँ प्रवेश पा गए हैं, तब से स्थिति गड़बड़ हो गई है। आप तो बातें करो लिखने-पढ़ने की और वे कहेंगे कि उनके ताल्लुकात शहर के फलाँ-फलाँ गुण्डों से हैं जाहिर है कि आप का एक - दूसरे के लिये अबूझ हो जाएंगें। तीसरी किस्म उन मुदर्रिसों की है जो पढ़ने-पढ़ाने की अपेक्षा अध्यक्ष को काबू में रखने के लिए विश्वविद्यालय के नियम-कानून में अधिक दिलचस्पी रखते हैं। सारी धाराएँ और सारे अनुच्छेद उनकी जबान पर हैं। अध्यक्ष की हालत यह है

1— अपना मोर्चा, पृ0—11
2— वही, पृ0—30

कि यदि वे धाराओं से बचें तो गुण्डों से नहीं बच सकते और यदि गुण्डों से बचना चाहें तो धाराओं में रहें।''[1]

यहाँ विश्वविद्यालयों में शिक्षा के विघटन की स्थिति का एक महत्वपूर्ण कारण प्रस्तुत किया गया है। धमकी अथवा सिफारिश के कारण ऐसे प्राध्यपकों की नियुक्ति हो गयी है, जो विश्वविद्यालय स्तर के नहीं हैं और जिनमें लिखने-पढ़ने के प्रति तनिक-सी भी रूचि नही है। इससे शिक्षा का स्तर निश्चित ही गिरेगा। सामान्य प्राध्यापक यदि चापलूसी भी करना चाहता है तो कर नहीं पाता। वह मन में सोचता है कि तुलसी-जयंती पर हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष का भाषण अवश्य ही कहीं-न-कहीं हुआ होगा और उनके भाषण की प्रशंसा कर दी जाय। किन्तु वह भूल जाता है कि अध्यक्ष जी के पास इतना अवकाश ही नहीं है कि वे तुलसी-जयंती पर कहीं भाषण दे सकें। एक सामान्य अध्यापक और अध्यक्ष जी के मध्य हुए ये संवाद इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं :

''हाँ पंडित जी। कल तुलसी-जयंती पर जितने लोगों ने भाषण दिया था, उनमें आपका भाषण ....

-किस जयंती में?

-कल जो सभा में हुई थी।

-तुम थे क्या?

-था तो नहीं, लेकिन सुना।

-लेकिन मैं तो अभी-अभी बंगलौर से फ्लाई करके आ रहा हूँ। और परसों फिर प्लेन से ऊटकमांड जाना है। एक रीडर की जिन्दगी का सवाल है। न जाओ तो लोग बुरा मान जाते हैं।''[2]

अध्यापक अध्यक्ष जी को बताता है कि कुछ छात्रों को पाठ्यक्रम से शिकायत है। अध्यक्ष जी इसे मजाक में उड़ा देते हैं। और उनके लिए कालोनी के नक्शे में से कोई बढ़िया-सा प्लाट पसन्द को कहते है।''[3]

1— अपना मोर्चा, पृ0—31
2— उपर्युक्त, पृ0—31—32
3— उपर्युक्त, पृ0—32

प्राध्यापक के कमरे में अन्य विद्वान् प्राध्यापक आते रहते हैं और संकेत में अथवा स्पष्ट बहुत-सी बातें कह जाते हैं :

"-अध्यक्ष से घुल-घुल कर क्या बातें हो रहीं थीं?

-समय-सारिणी में तुम्हें ऐसा विषय दिलाया है कि साल भर याद करोगे।

-बड़े कूटनीतिक बनते थे, लड़कों से हूट करवा दिया या नहीं।

-आज कार्यकारिणी के खेमकाजी मेरे घर चाय पर आ रहे हैं, मुझे क्या समझते हो।"

- -

"-क्यों मेरे वाले ट्यूटोरियल में एक भी लड़की नहीं दी सबों ने

-भई, यहाँ सुनी तो उसी की जाती है जो लाला हो। अपन तो बामन ठहरे।

-अब तुम्हीं बताओ, अध्यक्ष का क्या करें? वह ससुरा कुछ भी सुनने को तैयार नहीं है।"

- -

"-तुम समझते क्या हो, मैं चूतिया हूँ?

-मैंने पचीस हजार रूपये का तीसरा बीमा कराया है आज।

-तुम साले सारी जिन्दगी चूतिया के चूतिया रह जाओगे।

मैं फलाँ-फलाँ विश्वविद्यालय का परीक्षक हो गया हूँ - कुछ पता है तुम्हें?

देखो, मैं छोटे-मोटे कामों में नहीं पड़ता, हाँ कोई बड़ा काम आए तो कहना।

-अच्छा, तो बैठो जरा बैंक हो लूँ।"

- -

"-तुम्हारा भी पेट गड़बड़ रहता है न, तुम्हें लोहे की अँगूठी में नीलम पहनना चाहिए।

-हाँ, बड़े भाई के नाते एक सलाह दूँगा - देखो। लड़के जो हड़कम और उपद्रव करने जा रहे हैं न, उसमें न पड़ना। जरा बच-बचा को...... मेरी तरह।

अब यह देखो, मैंने कुलपति को किताब क्या समर्पित कर दी कि लोगों के कान खड़े हो गये। समझते हैं, मैंने प्रोफेसर होने के लिए किया है।....... अरे, तुम भी करो न समर्पित; मैं कोई मना कर रहा हूँ।

-'धर्मयुग' में प्रकाशित मेरा लेख पढ़ा - 'हिन्दी कहानी के विकास में 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' के अध्यक्ष का योगदान।

- -

"एक से एक गधे भरे पड़े हैं इस विश्वविद्यालय में उन्हें यह तक नहीं मालूम कि पेशकार के खिलाफ दी गई याचिका आज खारिज हो गई। अरे भई। कोई हो? सालों का कोई भरोसा है? महीने भर से तो सुन रहा हूँ कि आन्दोलन होगा। आन्दोलन होगा। लेकिन हो तब तो?....... अरे अध्यक्ष जी, कहाँ हो भई? मैंने तुमसे सौ दफे कहा कि मुझसे ऊपर नहीं चढ़ा जाता, मेरी कक्षाएँ नीचे ही लगाओ लेकिन हर बार दूसरी या तीसरी मंजिल। भैया, आखिर क्या चाहते हो? ऐं। चाहते क्या हो आखिर, पहले यह बतला दो।..."[1]

उपर्युक्त संवादों से यह स्पष्ट है कि प्राध्यापक कक्षा में किसी छात्र के न होने की शिकायत करते है, बैंक वैलेन्स बढ़ाते रहने की सूचना देते हैं, निरर्थक निबन्ध प्रकाशित होने से प्रसन्न होते हैं, अदालत के मुकदमों की सूचना रखते हैं अथवा अपनी कक्षाएं नीचे की मंजिल पर ही पढ़ाने की बात करते हैं। किन्तु उनमें से कोई भी शैक्षणिक वातावरण बनाने की अथवा विषय पर बौद्धिक विचार-विमर्श नहीं करते। यही कारण है कि विश्वविद्यालयों में शिक्षा का विघटन हो रहा है जो सांस्कृतिक विघटन की पृष्ठभूमि है।

छात्र-हड़ताल के कारण विश्वविद्यालय बन्द हो गया है। विभाग में 'पिकनिक' की योजना बनायी जाती है। हिन्दी को आधार बनाकर छात्रों ने हड़ताल की, जुलूस निकाले, लाठी-डंडे खाये, जेल गये और हिन्दी के अध्यापक ही 'पिकनिक' पर जाने की योजना बनाते हैं। अध्यक्ष जी को अवकाश नहीं है, उन्हें बंगलौर जाना है किन्तु वे अपने सभी प्राध्यापकों का ध्यान रखने की बात कहकर उन्हें संतुष्ट करते है :

1–अपना मोर्चा, पृ0–32–34

''तो यह बताओ कि कल किधर की तैयारी हो रही है? भई, अगर मैं साथ न दे सकूँ तो बुरा न मानना। बल्कि कहो तो पैसा दे दें। बात यह है कि कल सुबह ही मुझे बंगलौर के लिए 'फ्लाई' करना है वहाँ 'बोर्ड ऑफस्टडीज' की मीटिंग है। नहीं गया तो गड़बड़ हो जाएगा। और यह भी बता दूँ कि मुझे आप लोगों का ध्यान है, कुछ लोगों की किताबें 'रेफरेंस' में तो डलवा ही दूँगा। और जिन्होंने किताबें नहीं लिखी हैं, उनके लिए दूसरा रास्ता सोच रखा है। उन्हें किसी न किसी पर्चे का परीक्षक तो बनवा ही दूँगा।''[1]

हिन्दी के प्राध्यापकों में छात्रों द्वारा हिन्दी के लिए की गई हड़ताल और अहिंसक छात्रों का पुलिस द्वारा किये गये दमन पर वक्तव्य देने के प्रश्न को लेकर दो दल हो जाते हैं। कुछ वक्तव्य देने के पक्ष में हैं और कुछ वक्तव्य देने के विपक्ष में :

''प्राध्यापकों में दो दल हो जाते हैं। कुछ लोग छात्रों को समर्थन देने की बात इस बिना पर करते हैं कि यह उसी भाषा का मामला है जिसकी वे रोटी तोड़ रहें हैं। दूसरे छात्रों की इन हरकतों के विरूद्ध हैं और पुलिस की मार को उचित ठहराते हैं। यह उनकी समझ में नहीं आता कि लोग उन विधार्थियों का समर्थन कैसे कर रहे हैं, जो खुद न तो पढ़ना चाहते हैं और न अध्यापक को पढ़ाने देते हैं। जो अध्यापक को हूट करते हैं, बेवकूफी से भरे सवाल करते हैं और कक्षा छोड़कर भाग खड़े होते हैं। उनकी राय है कि लड़के अब इसी लायक रह गये कि उन्हें पुलिस पढ़ाए।''[2]

विभागाध्यक्ष भी वक्तव्य देने के पक्ष में नही' हैं। वे अपने पक्ष को तर्क देते हुए उचित ठहराते हैं :

''डॉक्टर राम। यह राजनीतिक मसला है और ऐसे मसलों से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। आप ही बताइए और किसी विभाग ने इस तरह का वक्तव्य दिया है? न, किसी ने नहीं। यहाँ तक कि कुलपति ने भी नहीं। वे तो इसी में खुश हैं कि लड़के मेरे नहीं, भाषा के खिलाफ आन्दोलन कर रहे हैं......अब आप कहते हैं कि आइए, एक वक्तव्य दिया जाय। यह तो कुछ ऐसा ही कहना हुआ कि आइए, हम नौकरी से त्यागपत्र दे दें।''[3]

1— अपना मोर्चा, पृ0—68

2— वही, पृ0—67

3— वही, पृ0—68

'अपना मोर्चा' में छात्रों की स्थिति को भी स्पष्ट किया गया है। आज का छात्र भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाता है। वह उस जीवन को नहीं जीना चाहता जिसे उसके माता-पिता अथवा आस-पड़ोस के लोग जी रहे हैं :

''इस विश्वविद्यालय में देश के कोने-कोने से लड़के आते हैं और चाहते हैं कि कोई उन्हें जीना सिखाए। उनके जीने को उनके लिए आसान कर दें। उन्होंने अपने पास-पड़ोस की जो जिन्दगी देखी है, वे वैसी जिन्दगी नहीं' चाहते। लोग जैसे-तैसे करके जीते चल रहे हैं, लेकिन वह हमारे लिए नहीं है। ऐसी जिन्दगी हमारे बर्दाश्त के बाहर है। अगर गुलामी के दिनों में भी ऐसी ही जिन्दगी थी, तो वह सही थी क्योंकि तब लोग गुलाम थे। लेकिन अब भी वैसी ही जिन्दगी बल्कि उससे भी बदत्तर जैसा कि बूढ़े कहते हैं - सही नहीं जा सकती। आजादी और गुलामी में कुछ तो फर्क होना ही चाहिए। फिलहाल, हम वह फर्क चाहते हैं... .. और तब लगता कि असल में चिन्ताओं से, भागकर वे हॉस्टल के कमरों में आ छिपे हैं।''[1]

नयी चेतना का अध्यापक भी उन छात्रों के प्रश्नों पर अचकचा उठता है। अध्यापक उन्हें समझाना चाहता है। किन्तु वे समझने के लिए तैयार नहीं हैं। उनका वार्तालाप इस प्रकार होता है :

''मैं उन्हें बताता हूँ कि किताब पढ़ो।

वे कहते हैं -हम बीस साल से किताब ही तो पढ़ रहे हैं।

मैं कहता हूँ -अनुशासन में रहो।

वे कहते है -बहुत रह चुके अनुशासन में।

मैं कहता हूँ -मुसीबतों से लड़ना सीखो।

वे कहते हैं - हम तो नहीं, हमारे बाप-दादा लड़ते-लड़ते दम तोड़ चुके हैं.... और अव्वल तो इससे अनुशासन भंग होगा।''[2]

छात्र पढ़ना नहीं चाहते। वे कुछ और चाहते हैं। वे चाहते हैं कि देश में गरीबी क्यों है?

1–अपना मोर्चा, पृ0–20
2–तदैव,, पृ0–20

देश में सब कुछ होते हुए भी लोग भूखे क्यों मरते हैं, लोग नंगे क्यों रहते हैं, लोग जाहिल और मूर्ख क्यों हैं। नयी चेतना का अध्यापक उनके असन्तोष को देखते हैः ''मैं देखता हूँ कि उनमें असन्तोष बढ़ रहा है। वे दिल से नहीं पढ़ना चाहते। इसके बावजूद उन्हें लगता है कि पढ़ने के सिवा उनके सामने और कोई चारा नही है। वे कक्षा में तरह-तरह की हरकतें करते हैं। हमें छेड़ते हैं, पीछे बैठकर कोई जासूसी किताब पढ़ते हैं, लड़कियों के प्रसंग पर कान खड़े करते और ठहाके लगाते हैं। वे कभी-कभी हमें हूट करते हैं और गैलरी में खड़े होकर कुत्ते-बिल्लियों की बोलियाँ बोलते हैं।''[1]

छात्राओं को देखने के लिए स्नातक के छात्र सह-शिक्षा की इमारत में अध्यापक को खोजने के लिए आते हैं :

''लड़के गैलरियों में घूम रहे हैं। ज्यादातर लड़के स्नातक कक्षाओं के हैं। वे अकसर पुरानी इमारत से इस इमारत में इसलिए चले आते हैं कि यहाँ सह-शिक्षा है। आने का बहाना है, अध्यापक की खोज। कभी-कभी अध्यापक उनकी कक्षा ले रहा होता है और वे उसे यहाँ खोजते रहते हैं। इन गैलरियों में आकर वे असाधारण रूप से शरीफ और शान्त हो जाते हैं। लेकिन यह शराफत थोड़ी देर की होती है - अचानक सामूहिक ठहाके सुनाई पड़ते हैं और फिर वे अपने आप शरमा कर या जिस किसी भी कारण से सीढ़ियों पर नागारा पटकते हुए भाग खड़े होते हैं।''[2]

जो गरीब नहीं हैं वे 'छात्र-सहायता कोष' का फार्म भरकर सहायता पा जाते हैं क्योंकि वे चालाक हैं। उनकी चालाकी लड़के की स्थिति यह है कि वे बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के अथवा सूखाग्रस्त क्षेत्र के बन जायेंगे और सहायता पा लेंगे-

''हर चालाक लड़का खुद अपना बाप होकर के दस्तखत औरों से प्रमाणित कराता रहेगा। हर चालाक लड़के की मिलों या फैक्टरियों या दुकानों में कोसी और गंजक और घाघरा बढ़ियाती रहेंगी और फसलें बरबाद करती रहेंगी। हर चालाक लड़के का पुश्तैनी व्यापार 'सूखाग्रस्त क्षेत्र' घोषित होता रहेगा और सारी सम्भव सहायताएँ मिलती रहेंगी।''[3]

1— अपना मोर्चा, पृ0—23
2— वही, पृ0—35
3— वही, पृ0—37

सम्पन्न छात्र ही चालाक हैं और वही छात्र-नेता बनकर सारी व्यवस्था का विरोध करता है :

''छात्रों का नेतृत्व इन्हीं के हाथ में रहा है और ये 'छूट' या 'सुविधा' के लिए आन्दोलन करते आये हैं। अधिकारियों ने कहा कि एम0 ए0 में चालीस सीटें रहेंगी, नेता कहेगा-नहीं, साठ सीटें करो। अधिकारियों ने कहा कि प्रवेश के लिए कम से कम पचास प्रतिशत अंक होने चाहिए। नेता कहेगा- नहीं, छत्तीस प्रतिशत करो। अधिकारियों ने कहा कि इम्तहान बीस मार्च से होगा, नेता कहेगा - नहीं, बीस मई करो। अधिकारियों ने कहा कि कक्षा में उपस्थिति सत्तर प्रतिशत होनी चाहिए। नेता कहेगा-नहीं, उपस्थिति की अनिवार्यता ही खत्म करो। हर मामले में छूट।''[1]

छात्र-संघ की बैठक में चाय-समोसे आते हैं किन्तु उन पर व्यय छात्र-संघ का नहीं होता अपितु बाहरी राजनीति के कर्णधार छात्र-संघ को अपने अधीन रखने के लिए यह व्यय करते हैं। एक छात्र नेता मिस्टर लाल अपने भाषण में यही प्रश्न उठाता है :

''पहली यह कि इन बैठकों के बीच-बीच में जो रोज समोसे, चाय, सिगरेट, पान वगैरह के दौर चलते रहते हैं, वे किसके पैसे से? जो मुझे जानकारी है, वे छात्रसंघ के पैसे नहीं हैं - यह अच्छी बात नहीं हैं। होने भी नहीं चाहिए। मैं यह भी समझता हूँ कि हममें से किसी की हैसियत नहीं हैं कि वह इतने लोगों को इस तरह खिला-पिला सके। अगर कोई है और हमारे ही बीच का है तो मैं यह जानना चाहूँगा कि वह किस बूते पर और क्यों ऐसा कर रहा है? कहीं ऐसा तो नहीं कि जो आपका खर्च चला रहा है, वही आपको यह सवाल भी दे रहा है?''[2]

छात्र आन्दोलन करने के लिए उत्सुक हैं। आन्दोलन हिन्दी के प्रश्न को लेकर होता है। बहुत बड़ा जुलूस निकलता है। भाषा-विधेयक के विरोध में नारे लगाये जाते हैं। पुलिस एक स्थान विशेष पर उनके जुलूस को रोकती है। पुलिस अधिकारी जुलूस को वापस लौट जाने की आज्ञा देते है। छात्र वहीं सभा आयेजित करना चाहते हैं। उसी समय आँसू गैस के गोले फेंके जाने आरम्भ हो जाते हैं। लड़कों में भगदड़ मच जाती है।

1— अपना मोर्चा, पृ0—37—38
2— उपर्युक्त, पृ0—43

पुलिस लाठी-चार्ज आरम्भ कर देती है। सैकड़ों छात्र बन्दी बनाये जाते हैं और सैकड़ों घायल होते हैं। पुलिस लड़कों का पीछा करती है। जनता के लोग अपने घरों के दरवाजे बन्द कर देते हैं। धीरे-धीरे छात्रों और पुलिस के बीच छापामार युद्ध-आरम्भ होता है। छात्रावास से भी इसी प्रकार का युद्ध होता है और पी0 ए0 सी0 के जवानों को घायल किया जाता है। बाद में छात्रावासों को खाली करा दिया जाता है। शहर में कर्फ्यू लग जाता है।

वस्तुतः इंटर कॉलेज से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा-व्यवस्था का चित्रण विभिन्न उपन्यासों में दिया गया है और सभी में विघटन की स्थिति चित्रित है। शिक्षा के स्तर को उन्नत करने की ओर किसी का ध्यान नहीं है, अपितु विद्यार्थी से लेकर प्राध्यापकों तक में स्तर गिर ही रहा है। इससे सांस्कृतिक विघटन को बल मिल रहा है। यही यथार्थ स्थिति है।

(ख) धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति अनास्था :

आलोच्य युग में धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति अनास्था भाव प्रायः देखने को मिलता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व ही अंग्रेजों के प्रभाव से हिन्दू समाज के युवा वर्ग में इस अनास्था का प्रवेश होने लगा था। 'यह पथ बन्धु था' में बाला साहब का पुत्र वामन राव धार्मिक अनुष्ठानों में आस्था नहीं रखता। वह होली पर रंग खेलने को, तो बर्बरता ही मानता है :

"बारंबार वामन राव को रंग खेलने के लिए बुलाया गया लेकिन वे नहीं आये। क्योंकि रंग खेलने को वे हिन्दुस्तानी बर्बरता समझते हैं।"[1]

वह तो स्पष्ट शब्दों में इन्दु से कहता है कि वह एक बार उसके स्कूल में पढ़ लेती तो वह इन हिन्दू देवी-देवताओं के चक्कर से छुटकारा पा जातीः

"दीदी। कभी तुम एक दिन भी वहाँ पढ़ लेतीं तो एक तो इन हिन्दू देवी-देवताओं के चक्कर से छूट जातीं दूसरे ऊँची सोसाइटी में कैसे उठना-बैठना चाहिए, रहना चाहिए सब आ जाता।"[2]

श्रीधर बाबू को प्रचार नाम से चिढ़ थी। 'सप्ताह जी' मनाने की धार्मिक क्रियाओं को वे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे :

"श्रीधर बाबू को प्रचार नाम की चीज से आरम्भ से ही चिढ़ थी। इसीलिए अपने घर में भी या अपने कस्बे में भी होने वाली धार्मिक कथाओं या 'सप्ताह जी' में कभी रुचि न रख सके। क्योंकि वे व्यक्ति की निष्ठा मानते रहे हैं। चौराहों पर इस निष्ठा का प्रदर्शन या भीड़ में बैठकर धर्म के तत्व पर प्रवचन सुनना उन्हें बहुत ही भौंडा लगता रहा है। गिरजाघर में उपस्थितों की शांति तो उन्हें बहुत प्रिय लगी। लेकिन वे विश्वस्त थे कि कोई भी धर्म के मर्म पर न सोच कर घर- धंधे की ही सोच रहा है। धर्म के प्रदर्शन के इस मिथ्यात्व पर तथा बीच-बीच में जिस नाटकीयता का सहारा लिया जा रहा था, बड़ी ही वितृष्णा हुई। धर्म नियम है व्यक्ति का, सामाजिक प्रवचन नहीं।"[3]

1— यह पथ बन्धु था, पृ0—123
2— उपर्युक्त, पृ0—124
3— मछली मरी हुई, पृ0—202

भौतिकवाद के बढ़ते प्रभाव ने अनास्था को जन्म दिया है, इसलिए जिन उपन्यासों में भौतिकवाद का यथार्थ चित्रण किया गया है, उनमें अनास्था का चित्रण स्वतः ही हो गया है राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' का नायक निर्मल पद्मावत कल्कत्ता में आकर जूट मिल चलाता है और थोड़े ही समय में उसकी गणना बड़े पूँजीपतियों में होने लगती है। इस सफलता से उसके मन में आस्था नहीं जागती अपितु अनास्था और अधिक शक्तिशाली हो जाती है। वह सोचता है:

"निर्मल सोचता रहा कि उसे भाग्य पर विश्वास नहीं है। वह कर्म-लेख पर भरोसा नहीं करता। धर्म पर नहीं। नैतिकता पर नहीं। वह किसी ईश्वर पर भरोसा नहीं करता। कर्मलेख अकर्मण्यता सिखाता है। नैतिकताएँ गलत कैदखाने की दीवारें हैं। धर्म अन्धा बनाता है। ईश्वर पर भरोसा करते ही अपनी शक्ति पर अनास्था हो जाती है।....."[1]

भाग्य, धर्म और ईश्वर के प्रति तो अनास्था है ही किन्तु निर्मल पद्मावता तो नैतिकता को अय्याशी ही मानता है :

"पाप की तरह नैतिकता भी नशा है। नैतिकता भी आदत है। नैतिकता भी आदमी को गुलाम और अंधा बनाती है। जैसे किसी औरत का प्यार अंधा बनाता है। जैसे बूढ़े जूलियस सीजर को अबोध शिशु की तरह दिखाई पड़ती क्लियोपैट्रा ने अंधा कर लिया था। जैसे कल्याणी... जैसे शीरीं मेहता... नैतिकता क्या है? नैतिकता एक ऐयाशी की आदत के सिवाय क्या है?"?[2]

इसी अनास्था का यह परिणाम होता है कि निर्मल पद्मावत विश्वजीत मेहता की पत्नी शीरीं को तलाक से पहले ही अपने यहाँ रख लेता है। इसी अनास्था और अनैतिकता का प्रभाव यह होता है कि वह कल्याणी और उसकी पुत्री प्रिया में कोई अन्तर नहीं कर पाता। वह प्रिया के साथ बलात्कार करता है और एक ही रात में कई बार बलात्कार करता है।

इसी प्रकार शीरीं अपनी बहन के साथ समलैंगिक सम्बन्ध बनाती है तो उसे धर्म या पाप का भय नहीं लगता :

1—मछली मरी हुई, पृ0—87
2—तदैव,, पृ0—1

"अरे इस बेहोशी में शीरीं को धर्म का या पाप का या किसी बात का डर नहीं लगता था।"[1]

इस अनास्था का संकेत रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में भी मिलता है। नदी किनारे मंदिर के पास बैठी बुढ़िया कहती है :

"पहले लोग नदी में नहाते थे, मंदिर में जाकर पूजा करते थे और दान-दक्षिणा देते थे। अब बहुत कम लोग आते हैं। दिन भर में कुछ भी नहीं मिलता।"[2]

मंत्र-तंत्र के प्रति भी अनास्था उत्पन्न होने लगी है। बंसी की बेटी को साँप ने काट लिया है। बनवारी बाबा मंत्र पढ़कर उसका विष उतारने का प्रयास कर रहे हैं। और अर्जुन के मन में इसके प्रति अनास्था का भाव उत्पन्न हो रहा है :

"अर्जुन शून्य आँखों से सारा व्यापार देख रहा था। वह सत्रह साल का बालक गाँव के कुछ क्रान्तिकारी विचारों वाले पढ़े-लिखे लोगों के सम्पर्क में उठता-बैठता था। स्वयं भी बड़ी जिज्ञासु रूचि का विद्यार्थी था, आठवीं में पढ़ता था। वह सुन चुका था और विश्वास भी करने लगा था कि जादू-टोना, मंत्र-तंत्र झूठी चीजें हैं। वह खड़ा-खड़ा समझने की कोशिश कर रहा था कि जो विष शरीर में फैल गया है, बातों से कैसे उत्तर सकता है। इस प्रसंग पर वह गाँव के कुछ सुपठ लोगों की बहस सुन चुका था। ठीक ही तो कह रहे थे वे लोग कि शरीर का दर्द तो दवाइयों से ही जा सकता है। डॉक्टरों ने बड़े-बड़े साँपों का जहर चीर-फाड़ करके दवाएं देकर उतारा है। सचमुच मंत्र तो

केवल बात है; बात से शरीर का जहर कैसे उतरेगा?"[3]

आज जीवन इतना संघर्षमय हो गया है कि व्यक्ति को धार्मिक संस्कार परम्परा से नहीं मिल पाते। निरूपमा सेवती के उपन्यास "पतझड़ की आवाजें" में एलमा क्रिश्चियन है और वह चर्च के प्रति अपनी आस्था के बारे में बताती है :

1– मछली मरी हुई, पृ0–111
2– अपने लोग, पृ0–353
3– जल टूटता हुआ, पृ0–43

"वह बता रही थी कि चर्च में उसकी कितनी जबरदस्त आस्था है। कल सुबह भी उसे सात बजे का 'मास' अटेंड करना है। और साथ ही एलमा यह भी पूछँ रही थी, 'आप लोग मंदिर कब-कब जाते हो?"[1]

मंदिर की बात पूँछे जाने पर अनुभा सोच में पड़ जाती है कि वह उसका क्या उत्तर दे। क्योंकि परम्परा से उसे जड़ धार्मिक संस्कार मिले ही नहीं -

"बचपन से ही वह उन्मुक्त आस्था के प्रति ही समर्पित रही है। आज तक वही सिलसिला कायम है। घर से कोई भी जड़ धार्मिक संस्कार नहीं मिला। बिखरे हालातों की वजह से कोई मंदिर नहीं जाता था और अभावों की वजह से आडम्बर भरा हवन वगैरह भी हमेशा नियोजित नहीं हो सकता था। तो सिर्फ धार्मिक या आध्यात्मिक भाव के प्रति ही आस्था रखने के विचार जाने कब-कब उसके भीतर अपनी जड़ें फैलाते गए।"[2]

वह केवल इतना ही उत्तर दे पाती है कि हिन्दुओं के धार्मिक ढंग नियोजित नहीं होते। हाँ, नियोजित होते तो बहुत लोगों के मन में भटकन भी नहीं होती :

"काश। हमारे रिलीजन के ढंग भी आपकी तरह प्लानिंग वाले और डिसिपलिन से भरे होते तो आज कई लोगों में इतनी भटकन न होती।"[3]

शिक्षित व्यक्ति तार्किकता के आधार पर सभी कृत्यों की परीक्षा करता है और अशिक्षित व्यक्ति बिना किसी तर्क के आस्था दिखाता है। ऐसा ही एक प्रसंग श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' में आता है। शिवपालगंज से लगभग पाँच मील दूर एक टीला है। उस टीले पर एक देवी-मन्दिर है। कार्तिक पूर्णिमा पर वहाँ एक मेला लगता है। इस टीले को बड़ा प्राचीन बताया जाता है। वैद्यजी का भानजा रंगनाथ प्राचीन इतिहास में एम0ए0 हैं वह स्वास्थ्यवर्धन के लिए शिवपालगंज में आया है उसे जब यह पता चलता है कि टीले का ऐतिहासिक महत्व है तो रंगनाथ की उत्सुकता जागती है। उसे बताया गया कि टीले पर मन्दिर देवासुर-संग्राम के पश्चात् देवताओं ने स्वयं बनाया। टीले के नीचे एक

1— पतझड़ की आवाजें, पृ0—94
2— तदैव, पृ0—94
3— तदैव, पृ0—94

खजाना होने की किंवदन्ती भी है और मूर्तियाँ गुप्तकालीन तथा मिट्टी के बहुत-से ठीकरे (टेराकोटा) मौर्यकालीन हैं, तो उसने रुप्पन के साथ मेले में जाने का निश्चय किया।

वह मन्दिर के ऊपर लिखे अक्षरों को पढ़ता है, जिस से स्पष्ट हो जाता है कि मन्दिर पुराना नहीं है :

''बनवाया मण्ड़प महिषासुरमर्दिनी का मुसम्मे इकबाल बहादुर सिंह बल्द नरेन्द्र बहादुर सिंह तखत भीखापुर नेमिति कार्तिक बदी दसमी संवत 1950 विक्रमी को।''[1]

मूर्ति को देखकर रंगनाथ आश्चर्यचकित रह जाता है क्योंकि उस पर खजुराहो, भुवनेश्वर अथवा एलोरा की मूर्तिकला का कोई प्रभाव नहीं था। उसके साथ आये साथी साष्टांग दंडवत् हो रहे थे अथवा घुटनों के बल बैठकर जगदम्बिका का नाम जप रहे थे। किन्तु रंगनाथ के मन की आस्था तथा बुद्धि में द्वन्द्व मचा था :

''एक बार आँख मूँदकर, उसने पूरी ताकत से, अपना सब पढ़ा हुआ भूल जाने की कोशिश की। मन-ही-मन वह चीखने लगा, 'बचाओ, बचाओ, मेरी भक्ति पर तर्क का हमला हो रहा है। बचाओ।' पर उसने जब आँखें खोलीं तो उसे लगा कि उसकी भक्ति गायब हो गई है और इतिहास की तोता-रटंत पढ़ाई उसे झकझोर रही है।''[2]

वह मूर्ति को ध्यान से देखता है। उसका सीना सपाट था, उसके सिर पर सिपाहियों का-सा शिरत्राण था। वह निश्चित रूप से देवी की मूर्ति नहीं थी अपितु लगभग बारहवीं शताब्दी के किसी सिपाही की मूर्ति थी। कारण स्पष्ट था :

''अपने यहाँ की मूर्तिकला पर और चाहे जो कुछ कहा जाय, उसके विरुद्ध कोई यह नहीं कह सकता कि हमारे देश की मूर्तियों में लिंगभेद का कोई घपला है। छोटे-छोटे बाल कटाये हुए, कमीज-पैंट पहनकर 'गोल्फ' के मैदान में घूमने वाली नारियों के बारे में हमें भले ही लिंग-सम्बन्धी धोखा हो जाय, पर यहाँ प्राचीन नारी-मूर्तियों को लेकर ऐसा होना संभव नहीं। पुरातत्व के विद्यार्थियों को गले के नीचे ही दो ऊँचे-ऊँचे पहाड़ देखने की आदत पड़ जाती है। और कुछ और नीचे जाते ही पहाड़ पलटकर दूसरी ओर

1– रागदरबारी, पृ0–152
2– उपरोक्त, पृ0–153

पहुँच जाते हैं। यह सब समझने की दिव्य दृष्टि पुरातत्व के-भोंदू-से-भोंदू विद्यार्थी को भी मिल जाती है।''[1]

रंगनाथ मूर्ति का गला छूकर देखता है। पुजारी उसे छूने से रोकता है वह रूप्पन बाबू से कहता है कि यह मूर्ति देवी की है ही नहीं। उसके तीनों साथी चौंककर उसके पास सिमट आते हैं। वह उन्हें समझाते हुए कहता है :

''देखते नहीं। यह सरासर किसी सिपाही की मूर्ति है। यह देखो यह है शिरस्त्राण, और यह देखो, यह है पीछे की तरफ से निकला हुआ तरकस। और यह देखो, बिलकुल सपाट....।''[2]

रंगनाथ अपनी पूरी बात कह पाता उससे पूर्व ही पूजारी ने उछलकर उसे धक्का दिया और वह उस एक धक्के में ही दरवाजे तक पहुँच गया। उसके पश्चात् तो उस पर गालियों की बौछारें होने लगीं :

''उधर पुजारी पूजा कराने और पैसे बटोरने के कारोबार को रोककर पूरी तबियत से रंगनाथ को गालियाँ देने लगा। उसका मुँह छोटा था, पर बड़ी-बड़ी गालियाँ एक-दूसरे को लाँघती हुई बहुत टूटी-फूटी हालत में बाहर आकर गिरने लगीं। थोड़ी देर में मन्दिर के अन्दर गालियाँ ही गालियाँ हो गईं, क्योंकि भक्तों ने भी पुजारी की ओर से गालियों का उत्पादन शुरू कर दिया था।''[3]

सम्भवतः पुजारी को लगा कि यदि रंगनाथ की बात लोगों की समझ में आने लगी तो मंन्दिर की पूजा ही बन्द हो जायेगी और तब उसका कारोबार ही ठप्प हो जायेगा। ऐसी स्थिति में यह अत्यन्त स्वाभाविक था कि वह रंगनाथ को ईसाई घोषित कर दे और उसने किया भी यही :

''मैं तो सूरत देखकर ही पहचान गया था। ईसाई है। विलायतियों की औलाद।

1—रागदरबारी, पृ0—153
2—वही, पृ0—154
3—वही, पृ0—154

जरा-सी गिटपिट-गिटपिट सीख़ ली और कहने लगा कि यह देवी ही नहीं है। चार दिन बाद कहना कि हमारे बाप हमारे बाप ही नहीं है।''[1]

रंगनाथ के साथ कुछ और घट सके, उससे पूर्व ही रूप्पन बाबू की व्यावहारिक बुद्धि जाग गयी और उसने पुजारी से कह दिया कि वह मेले वाले दिन अधिक गाँजा न पिया करे क्योंकि गाँजा दिमाग पर चढ़ जाता है। पुजारी कुछ और कहना चाहता था कि रूप्पन बाबू ने यह कहकर कि वे शिपालगंज के रहने वाले हैं; उसकी तूती ही बन्द कर दी।

2—रागदरबारी, पृ0—154

(ग) साम्प्रदायिकता :

साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता का चित्रण किया गया है। यह चित्रण हिन्दू-मुस्लिम दंगों के रूप में हुआ है। अँग्रेजों ने कभी हिन्दुओं को और कभी मुसलमानों को बढ़ावा देकर इन दंगों की नींव डाली थी। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व कांग्रेस के स्थानीय नेता भी अपने स्वार्थ-पूर्ति के लिए साम्प्रदायिकता को बढ़ाते थे 'यह पथ बंधु था' की बनारस की कथा में इस साम्प्रदायिकता का वर्णन किया है। श्रीधर ने रामखेलावन के साथ मिलकर 'शंखनाद' साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया था। उन दिनों बनारस में हिन्दू-मुस्लिम तनाव था। शंखनाद में उसकी चेतावनी प्रकाशित करते हुए लिखा गया था कि नगर के कुछ राजनीतिक व्यक्ति इस तनाव को बनाये रखने में सहयोग दे रहे हैं :

"बनारस में उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम काफी तनाव था। 'शंखनाद' आये दिन चेतावनी दे रहा था कि नगर के कुछ राजनीतिक व्यक्ति इस तनाव को बनाये रखने में सहयोग दे रहे हैं।"[1]

एक दिन किसी हिन्दू जुलाहे पर किसी ने छुरे से वार किया और सारे नगर के कार्य ठप्प हो गये, कर्फ्यू लग गया :

"बनारस उन दिनों अफवाहों पर चल रहा था, अफवाहों में जी रहा था। और एक शाम उसने सुना कि मदनपुरा में किसी हिन्दू जुलाहे पर किसी ने छुरे से वार किया। और बनारस की सारी दुकानें सारे बाजार, सारे वाहन एकदम ठप्प हो गये। पूरे शहर को जैसे साँप सूँघ गया।"[2]

सात दिन तक बनारस दंगों से प्रभावित रहा। शंखनाद में दंगों के सामाजिक और राजनैतिक कारणों पर प्रकाश डाला गया: दिन भर प्रेस में काम था ही और रात में कर्फ्यू लग जाता। इसके अलावा 'गायघाट' से 'अस्सी' दूर पड़ता था इसलिए वे दंगे के दिनों में प्रेस ही में रहने लगे। करीब सात दिनों तक दंगे का प्रभाव रहा .... दंगे, युद्ध, मंत्रिमंडल बनने की सम्भावना आदि ने मिलकर लोगों पर, जीवन पर अजीब प्रतिक्रिया कर दी।

1—यह पथ बन्धु था, पृ0—540
2—उपरोक्त, पृ0—541

'शंखनाद' के द्वारा श्रीधर बाबू दंगों के सामाजिक तथा राजनीतिक कारणों पर प्रकाश डालते।''[1]

राजनैतिक सोच व्यक्ति को साम्प्रदायिक बना देती है। भारतीय गणतन्त्र धर्म - निरपेक्ष है। किन्तु अनेक व्यक्ति की सोच यह है कि पाकिस्तान बन जाने के पश्चात् मुसलमानों का हिस्सा चला गया और इसलिए यह देश हिन्दूओं का है, इसलिए राज्य भी हिंदुओं का होना चाहिए। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में दुबे जी कथानायक प्रमोद से कहते हैं :

''अरे किसका क्या, जिसका देश हो उसका राज्य हो। देश हिंदुओं का है, उन्हीं का राज्य होना चाहिए। मुसलमानों ने तो अपना हिस्सा अलग ले ही लिया। और साहब, ये कम्युनिस्ट, ये कांग्रेसी सभी मुसलमानों के तलवा चाटने वाले लोग हैं। उनका मन बढ़ा रखा है और ये जिस पत्तल में खाते हैं उसी में छेद करते हैं। जनसंघ का राज्य हो जाय तो ये लोग एक दिन में ठीक हो जाएं। वाह, क्या बढ़िया बात कही है। वाजपेयी जी ने कहा कि इन मुसलमानों का भारतीकरण करो।''[2]

साम्प्रदायिकता का कुछ वर्णन रामदरश मिश्र के उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में किया गया है। भारत-पाकिस्तान के विभाजन के समय चारों ओर से ट्रेन लूटने और गाँवों के गाँव जला देने के समाचार आते थे :

''खबरें आती थीं कि 'आज यह ट्रेन लूट ली गई.... आज हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की सरहद पर इतने गाँव जला दिये गये...... इतनी बहू-बेटियों को बेइज्जत कर पेड़ की डाली पर उल्टा टाँग दिया गया। बापों के, माताओं के सामने इतने पुत्रों को कत्ल कर दिया गया'.... खबरें आती थीं - जैसे लू के झोके आते हों........ लोग रात-रात को सोते से जाग पड़ते और लाठी-भाला लेकर तैयार हो जाते।''[3]

उन दिनों सारा इलाका भयग्रस्त था क्योंकि विभिन्न प्रकार की अफवाहें फैलायी

1— यह पथ बन्धु था, पृ0—542
2— अपने लोग, पृ0—113
3— जल टूटता हुआ, पृ0—19

जाती थीं। हिन्दुओं से कहा जाता था कि मुसलमान आ रहे हैं और मुसलमानों से कहा जाता था कि हिन्दू आ रहे हैं :

''..... अपने इलाके में मुसलमानों के केवल चार ही पाँच गाँव हैं; लेकिन कुछ लोग रोज खबरें लाया करते कि गोरखपुर से मुसलमान आये हैं, जो तमाम बन्दूकों और तलवारों से सुसज्जित हैं। उधर मुसलमानों में अफवाह उड़ती कि आज हिन्दू लोग उनके गाँवों पर हमला करने वाले हैं। एक भयानक भय, एक अनावश्यक सन्देह पूरे इलाके को खा रहा था। ''[1]

दंगों के समय साम्प्रदायिक तत्व भड़काते हैं। सन् 1947 में हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के नेता साम्प्रदायिकता की बात करते थे। बाबू महीप सिंह कट्टर हिन्दू थे। वे अनेक शहरों में मुसलमानों द्वारा किये गये अत्याचारों की बात कहते थे। वे अपने भाषण में कहते थे :

''मुस्लिम लोगों का ऐलान है कि एक हिन्दू मारने से मुसलमान को हजार बहिश्तों का फल मिलता है। कुरान शरीफ का भी यही हुक्म है; इसलिए मुसलमान निरीह हिन्दुओं को बेरहमी से कत्ल कर रहे हैं। हमारी सरकार कितनी हिजड़ा सरकार है, जो मार खाते हुए हिन्दुओं को उपदेश पिलाती है कि हिंसा पाप है, हिंसा का बदला हिंसा नहीं। जो निरीह मुसलमान भारत में हैं, उन्हें मत मारो। कितनी अच्छी शिक्षा है सरकार की? हम लोग पाकिस्तान में पिटते रहें, हमारी जायदादें छीन ली जायें, जला दी जायें, हम वहाँ से खदेड़ दिये जायें और हम हिन्दुस्तान में मुस्लमानों को दूध-हलवा खिलाते रहें। गांधी जी की भी अकल सठिया गई है, अब उनकी आवश्यकता नहीं ....।''[2]

खानपुर के सैयद ललकार कर कहते हैं कि 'किसी ने मुसलमानों पर हाथ लगाया, तो गोलियों से भून कर रख दूँगा', इस बात को सुनकर सभी हिन्दुओं का खून खौलता है किन्तु वे सोचते हैं कि किसको मारा जाये। पड़ोस के गाँव के सभी मुसलमान तो अपने भाई जैसे लगते हैं। मास्टर सुग्गन उन सभी परिचित मुसलमानों के बारे में सोचता है:

1– जल टूटता हुआ, पृ0–19
2– उपरिवत् पृ0–19–20

"ये हैं रमजान काका गाँव भर के लड़कों के शादी-ब्याह के अवसर पर मांगलिक कपड़े सीने वाले। शादी-ब्याह के हर कपड़े पर उनकी बूढ़ी आँखो का आशीर्वाद चुवा है। ये हैं औरतों और पुरूषों के तमाम चेहरे, जो हमारे खेतों में कतार बाँध कर बैठे हुए हैं, गेहूँ-जौ की फसलें काट रहे हैं, होली के गीत गा रहे हैं। यह है अब्दुल्ला जो हमारी कितनी बहू-बेटियों को स्टेशन से घर और घर से स्टेशन ले गया है। एक बार रास्ते में किसी गुण्डे ने एक गाड़ी को देखकर गन्दी बात बोल दी, अब्दुल्ला सिपावा लेकर पिल पड़ा और उसकी मरम्मत करते हुए कहा : 'हरामजादे आँखों में बहू-बेटियों' की आबरू सूख गई है। यह है एक मासूम गरीब चेहरा असगर, जो हमारे स्कूल में पढ़ता है। कितना गरीब और कितना तेज? मैं उसे प्यार करता हूँ क्या वह समझता है कि वह मुसलमान है, जिन्ना का अनुयायी? वह मेरे बेटे के साथ पढ़ता है, मेरे घर भी आता है, खेलता है। एक हैं मौलवी करीमुद्दीन। हमारे गाँव के कितने लड़के उनसे तालीम हासिल कर चुके हैं। उनका ज्ञान, उनका भद्र व्यवहार उनके शगिर्दों के मन में एक स्थायी संस्कार बन कर छा जाता है। किसे मारा जाए, किसे मारा जाए.......।"[1]

मास्टर सुग्गन जैसे सुशिक्षित व्यक्तियों का ही यह विचार था किन्तु अशिक्षित अहीर तो महीप सिंह से ही प्रभावित थे। एक दिन महीप सिंह के गाँव सिंहपुर का एक अहीर मास्टर सुग्गन के पास आता है और उनके सामने वह प्रस्ताव रखता है कि वे किसी दिन असगर की हत्या कर दें। मास्टर सुग्गन उसे डाँटते हैं तो वह उल्टे मास्टर सुग्गन को समझाने लगता है :

"मास्टर तुमको मालुम नहीं है यह जाति कितनी दगाबाज है। शेखपुरा के सैयद ने इसी प्रकार अपने लड़के के हिन्दू दोस्त को खत्म कर दिया। गोरखपुर से तमाम खबरें आई हैं कि मुसलमानों ने दोस्ती के नाम को बदनाम किया है। अपने घरों में छिपे हुए दोस्तों को पकड़वा दिया है; उनकी आँखों के सामने ही दोस्तों की लाशें तड़प कर बिछ गयी हैं। तुम कहते हो कि हम कठोर हो रहे हैं। क्या हमीं लोग नेकी का सारा ठेका लिए बैठे हैं।"[2]

1– जल टूटता हुआ, पृ0–20–21
2– उपरोक्त, पृ0–21–22

मास्टर सुग्गन को स्कूल आने से कठोरतापूर्वक रोकता है। वह उसे समझाता भी है कि उसके प्राणों का खतरा है। मास्टर यह आदेश देता है कि वह कुछ दिन अपने घर से न निकले किन्तु एक दिन असगर की लाश एक नाले में पड़ी पाई जाती है। मास्टर महीप सिंह से घृणा करने लगता है।

"हाँ, दो-चार दिनों बाद असगर की लाश एक नाले में पड़ी पाई गई। मास्टर को बाबू महीप सिंह से घृणा हो गई-कितना बड़ा नर-राक्षक है। एक लड़के की जान लेकर ही रहा, एक क्या अभी तो कितनी जानें जाएंगी। मास्टर की आँखों में असगर की विधवा माँ का विक्षिप्त प्रलाप हाहाकार कर उठा-माँ। अभागिनी माँ,माँ तो सबकी एक ही होती है, माँ तो संसार भर की माँ है। क्या असगर की और क्या लल्लू की? क्या सैयद की और क्या महीप सिंह की।"[1]

गाँव में मुहर्रम के समय भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न होती है ताजिए की परम्परा है कि जिस रास्ते ताजिया जाता है, उसी रास्ते जायेगा, मार्ग की बाधाएं हटा दी जायेंगी। मास्टर सुग्गन ताजिये का दृश्य याद करते हैं:

"उसे याद आया मुहर्रम का दृश्य। क्या मुहर्रम और क्या होली? पवित्र त्यौहारों को भी आदमी ने साम्प्रदायिक कीचड़ों में सान रखा है। दंगा-फसाद की आँधी में आया मुहर्रम। जवार के ताजिये जमालपुरा के पास वाले टीले पर इकट्ठे होते हैं- वहीं दफनाये जाते हैं। धर्म और मजहब, मजहब और धर्म- ये तो केवल दिखावे के समान रह गये हैं, प्रधान रह गया है आदमी का दम्भ। हर साल यही दम्भ प्रधान हो उठता है, अब यह भी कोई धर्म है कि जिस रास्ते ताजिया जाता है उसी रास्ते जायेगा, लीकों के प्रति इतना मोह? भरी फसल को रौंदकर ही ताजिया ले जायेंगे फले हुए पेड़ों की डाल काट कर ही ताजिया ले जायेंगे, जरा हट नहीं सकते, जरा-सा झुक नहीं सकते।"[2]

ताजिया के मार्ग में महीप सिंह के खेत पड़ते थे। शेखपुरा के मुसलमान महीप सिंह के खेतों में खड़ी फसल को रौंदकर जाने लगे। घंटों तकरार हुई। महीप सिंह ने सैकड़ों

1– जल टूटता हुआ, पृ0 –23
2– तदैव,, पृ0–23

लठैत बुलाकर छावनी के पास बिछा रखे थे। तकरार के पश्चात् ताजिये आगे बढ़े तो बीच में आम के पेड़ की एक डाल आ गयी। एक मुसलमान डाली काटने के लिए पेड़ पर चढ़ने लगा तो बाबू के एक लठैत ने उसकी बाँह पकड़ कर उसे नीचे दबोच लिया और दोनों ओर से झगड़ा आरम्भ हो गया:

"एक मुसलमान पेड़ पर टाँकी लेकर चढ़ने लगा, डाल काटने के लिए। बाबू सहाब के एक लैठत ने आगे बढ़कर उसकी बाँह पकड़कर नीचे खींच लिया। वह आदमी पके आम की तरह भदाक से नीचे गिरा और उस पक्ष के तमाम लोग लाठी लेकर बाबू के लैठत पर पिल पड़े। इधर के लोग भी सावधान थे ही। अब तक का रहा सहा बाँध टूट पड़ा और दोनों धाराएं आपस में बजड़ गईं औरतें चीख-पुकार करतीं भागीं। पागल लोग घन-घन घंटी घनघनाते इधर-उधर बिखर गये, ताजिये लाठियों से छिन्न-भिन्न होने लगे। उन्माद में कितनों के सर फूटे, कितने के हाथ-पाँव टूटे, कितने वहीं साफ हो गये, इतने दिनों का घिरा हुआ साम्प्रदायिक उन्माद धुर्री-धुर्री आमने-सामने था, अतः उसकी सीमा भी क्या हो सकती थी। चारों ओर हाहाकार मच गया। दोनों ओर के लोग धमकियाँ देते-देते धीरे-धीरे बिखर गये। कितने लोग धर्म के नाम पर मरे, किन्तु धर्म के रक्षक बाबू साहब और सैयद साहब धर्म की रखवाली में घर पर ही पड़े रहे ....धर्मात्मा बने हुए। उन्हें न चोट आई, न परिवारों का कोई आहत हुआ और धर्म की रक्षा भी हो गई।"[1]

धनी और प्रतिष्ठित व्यक्तियों का साम्प्रदायिक दंगों में कुछ भी नुकसान नहीं होता है। साम्प्रदायिक दंगों को ही आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास 'तमस' है जिसकी रचना भीष्म साहनी ने की है। 'तमस' में भी इस ओर संकेत किया गया है। साम्प्रदायिक दंगों के पश्चात् आंकड़े इकट्ठे किए जा रहे हैं, उस समय देवदत्त कहता है कि एक खाना और जोड़ा जाये जिसमें यह लिखा जाये कि गरीब कितने मरे और खाते-पीते कितने मरे। वह स्वष्ट शब्दों में कहता है:

"यह भी एक पहलू है आंकड़े इकट्ठे करने का। दोनों ओर के गरीब कितने मरे। अमीर कितने मरे। इससे भी तुम्हें कई बातों का पता चलेगा।"[2]

1– जल टूटता हुआ, पृ0–624

2– तमस, राजकमल पेपर बेम्स, 1999, पृ0– 240–241

उपन्यास में किसी भी जाने-माने व्यक्ति की दंगे में मृत्यु नहीं होती है। अपितु एक सम्प्रदाय का व्यक्ति दूसरे सम्प्रदाय के व्यक्ति से दोस्ती भी निभाता है। शहनवाज लाला लक्ष्मीनारायण और उनके परिवार को अपनी नीले रंग की ब्यूक गाड़ी में बिठाकर लक्ष्मीनारायण के समधी रघुनाथ की कोठी पर पहुँचा देता है। रघुनाथ की पत्नी शाहनवाज को एक कार्य सौंपती है:

"मेरे और मेरी जिठानी के जेवरों का एक डिब्बा घर में पड़ा है, वह निकलवाना है। जब आये थे तो थोड़ा-सा सामान लेकर चले आये, मैं कुछ भी साथ नहीं लायी।"[1]

शाहनवाज भाभी के जेवरों के डिब्बे को भी लेने जाता है किन्तु वहीं पर घर की रखवाली कर रहे मिलखी को लात मारकर सीढ़ियों से गिरा देता है। शाहनबाज ने उसकी चुटिया देख ली थी और मस्जिद में रखी लाश को देख लिया था, प्रतिक्रियास्वरूप उसने गरीब मिलखी को सीढ़ियों के नीचे गिराकर मार डाला:

"बाहर आने पर दोनों सीढ़ियाँ उतरने लगे। मिलखी के हाथ में चाभियों का गुच्छा था और वह आगे आगे उतर रहा था डिब्बे को दोनों हाथों में उठाये शाहनवाज पीछे-पीछे चला आ रहा था जब सहसा उसके अन्दर भभूका-सा उठा। न जाने ऐसा क्यों हुआ:

मिखली की चुटिया पर नजर जाने के कारण, मस्जिद के आंगन में लोगों की भीड़ को देखकर, इस कारण कि जो कुछ वह पिछले तीन दिन से देखता-सुनता आया था वह विष की तरह उसके अन्दर घुलता रहा था। शाहनवाज ने सहसा ही बढ़कर मिलखी की पीठ पर जोर से लात जमायी। मिलखी लुढ़कता हुआ गिरा तो उसका माथा फूटा हुआ था और पीठ टूट चुकी थी, क्योंकि जहाँ गिरा वहाँ से वह उठ नहीं पाया"[2]

एक ओर शेख नूरइलाही कट्टरपंथी है और वह हिन्दुओं से घृणा भी करता है। और दूसरी ओर वह कट्टरपंथी हिन्दू लक्ष्मीनारायण की गाँठों को गोदाम से उठवा कर सुरक्षित रखवाता है। दंगे समाप्त हो जाने पर दोंनो मिलते हैं, उस समय शेख नूरइलाही यह बताता है:

1— तमस, पृ0—132
2— तदैव,, पृ0—137

"और दोनों बराबर हो गये। अन्दर-ही-अन्दर दोनों कट्टरपंथी थे, पर खेले-बढ़े हुए थे इसलिये दोस्ती भी थी मेल-मिलाप भी था, दुःख-सुख में थोड़ा-बहुत शरीक भी होते थे। शेख नूरइलाही के वाक्य में मजाक कहाँ तक था और हिन्दुओं के प्रति घृणा कहाँ तक व्यक्त हुई थी कहना कठिन है।

"फिर धीरे से लक्ष्मीनारायण से बोला, 'तेरी गाँठें मैंने गोदाम में से उठवा दी थीं।"

"लक्ष्मीनारायण मुस्कुरा दिया। शेख नूरइलाही अपने मजाकिया अन्दाज में बोला, 'पहले तो मैंने कहा, जला दो करोड़ का माल। फिर दिल में आया, नहीं यार, आखिर तो दोस्त है मेरा .....।"

"आसपास खड़े लोगों को दोस्तों का यह मिलन भला लग रहा था"।

"नूरइलाही कहे जा रहा था, 'पहले तो बेटे को मजदूर ही नहीं मिले। उस रात मजदूर कहाँ से मिलते? मैंने उससे कहा, जैसे भी हो गाँठें उठवा दो नहीं तो लाला मुझे जीने नहीं देगा।' पकड़ लाया फिर कहीं से दो मजदूर।"[1]

'तमस' स्वतन्त्रता से पूर्व हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगों पर आधारित उपन्यास है। इसमें साम्प्रदायिक दंगों के लिए मूलतः अंग्रेजी सरकार को ही उत्तरदायी सिद्ध किया गया है। दंगे की पृष्ठभूमि बनाने के लिए मस्जिद के बाहर एक सूअर की लाश फिंकवायी जाती है। यह सब एक षड्यन्त्र के द्वारा किया जाता है। कमेटी का कारिंदा मुरादअली नत्थू चमार को पाँच रूपया देकर सूअर मारने के लिए तैयार करता है और कारण बताता है कि सलोटटी साहिब ने माँगा है:

"यह तुम्हारे लिए बहुत बड़ा काम नहीं है। सलोटटी साहिब ने फरमाइश की तो हम इंकार कैसे कर देते।' फिर मुराद अली ने लापरवाही के अन्दाज में कहा: 'उधर मसान के पार पिगरी के सूअर घूमते हैं। एक को पकड़ लो। सलोटटी साहब खुद बाद में पिगरी वालों से बात कर लेंगे।[2]"

1— जल टूटता हुआ, पृ0 250—251
2— उपर्युक्त, पृ0 —9

उपन्यास में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के चिन्तन को भी स्पष्ट किया गया है। कांग्रेस का प्रयास है कि वह अपने को हिन्दू मुसलमान और सिख सभी सम्प्रदायों से जोड़े किन्तु मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता कांग्रेस को हिन्दुओं की पार्टी घोषित करते हैं। रूनी टोपी वाला महमूद स्पष्ट शब्दों में कहता है:

"यह सब हिन्दुओं की चालाकी है, बख्शी जी, हम सब जानते हैं। आप चाहे जो कहें, कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है। कांग्रेस हिन्दुओं की जमात है और मुस्लिम लीग मुसलमानों की। कांग्रेस मुसलमानों की रहनुमाई नहीं कर सकती।"[1]

जिले का सबसे बड़ा अफसर जिला मजिस्ट्रेट रिचर्ड है जो लन्दन से निर्णीत होकर आने वाली नीतियों को क्रियान्वित करता है। वह अपनी पत्नी को बताता है कि इन दिनों हिन्दू और मुसलमानों में तनाव है। वे धर्म के नाम पर आपस में लड़तें है और देश के नाम पर उनके साथ लड़ते हैं। लीजा बात को समझ जाती है और स्पष्ट शब्दों में कहती है:

"बहुत चालाक नहीं बनो, रिर्चड। मैं सब जानती हूँ। देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं। और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो। क्यों ठीक है ना?"[2]

रिर्चड जानता है कि हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़े तो अंग्रेजों को कोई खतरा नहीं होगा। यही कारण है कि सुअर और गाय के मारे जाने पर साम्प्रदायिक दंगे की पूरी आशंका है किन्तु रिचर्ड उसे रोकने का कोई प्रयास नहीं करता। दंगों को रोकने के लिए सभी दलों का एक शिष्टमण्डल उसके पास आता है। बख्शी जो कांग्रेस के जिला-अध्यक्ष हैं फौज की चौकियाँ बिठाने की माँग करते हैं तो रिचर्ड कह देता है कि फौज उसके अधीन नहीं है। वह 'अमन कमेटी' बनाने की सलाह देता है और अन्त में व्यंग्य के साथ कहता है:

"वास्तव में आपका मेरे पास शिकायत लेकर आना ही गलत था। आपको तो पण्डित नेहरू या डिफेंस मिनिस्टर सरदार बलदेव सिंह के पास जाना चाहिए था। सरकार की बागडोर तो उनके हाथों में है।"[3]

1– जल टूटता हुआ, पृ0 –31
2– तमस, पृ0–45
3– उपरोक्त, पृ0–78

उपन्यास में साम्प्रदायिक दंगों के समय सुरक्षा और आक्रमण की तैयारियों की चर्चा भी की गयी है। पुण्यात्मा वानप्रस्थी जी अन्तरंग सभा की बैठक में रक्षा के प्रबन्ध करने की बात कहते हैं:

''सबसे पहले अपनी रक्षा का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। सभी सदस्य एक-एक कनस्तर कड़वे तेल का रखें, एक-एक बोरी कच्चा या पक्का उबलता तेल शत्रु पर डाला जा सकता है, जलते अंगारे छत पर से फेकें''[1]

रक्षा के साथ-साथ आक्रमण भी आवश्यक है, इसलिए सज्जन मन्त्री कहते हैं:

''युवक समाज का काम ठण्डा पड़ा हुआ है। देवव्रत जी को आपने लगा रखा है। मैं समझता हूँ युवकों को लाठी सिखाने का काम फौरन शुरू करना चाहिए। दो सौ लाठियाँ आज ही मँगवाकर बाँट दी जायें।''[2]

देवव्रत जी युवाओं को अकेले में दीक्षा देते हैं। वे रणवीर को दीक्षा नहीं देते हैं। रणवीर से मुर्गी का गला काटने के लिए कहा जाता है। तो उसको माथे पर पसीना आ जाता है। देवव्रत जी उसके गाल पर थप्पड़ मारते हैं और मुर्गी को पकड़ कर स्वयं उसकी गर्दन काट देते हैं। रणवीर बैठे-बैठे कै कर देता है। मास्टर जी कहते हैं:

''पाँच मिनट तुम्हें और दिये जाते है। इस बीच भी अगर तुम इसे नहीं मारते तो तुम्हें दीक्षा नहीं दी जायेगी।''[3]

रणवीर दीक्षा लेना चाहता था। उसके संस्कार ही थे जो बाधक बन गये थे उसके निश्चय ने उसके संस्कारों पर विजय प्राप्त कर ही ली:

''पाँच मिनट बाद जब देवव्रत जी कोठरी में से निकलकर आये तो मुर्गी उस के पास छटपटा रही थी और खून के छींटे उड़ रहे थे। रणवीर अपने हाथों के बीच दबाये बैठा था, जिसे देखकर मास्टर जी समझ गये कि मुर्गी उसने नहीं मारी है और रणवीर केवल उसे

1— तमस, पृ0—62
2— उपरोक्त, पृ0—62
3— उपरोक्त, पृ0—70

जख्मी कर पाया है, उसकी गर्दन पूरी काट नहीं पाया। रणवीर बड़ी कठिनाई से मुर्गी को दबोच पाया था और जैसे-तैसे उसकी हिलती गर्दन पर ही छुरा चला दिया था। और फिर खून निकलता देखकर ही रणवीर ने उसे छोड़ दिया था।''[1]

रणवीर को परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित कर दिया जाता है और उसे दीक्षा का अधिकारी भी मान लिया जाता है। मास्टर जी खून से उसके माथे पर टीका लगाते हैं। रणवीर दीक्षित हो चुका है। मास्टर जी ने शत्रु पर बार करने के तरीके उसे सिखा दिये हैं और अब रणवीर अपने तीन साथियों- मनोहर, इन्द्र और शम्भु को समझाता है:

''शत्रु की छाती अथवा पीठ को कभी भी निशाना नहीं बनाओ। बार हमेशा कमर में करो या पेट में। और घुमावदार छुरा घोंपने के बाद उसे अन्दर-ही अन्दर थोड़ा मोड़ दो, इससे अंतड़ियाँ बाहर आ जायेंगी। अगर तुम भीड़ में शत्रु पर वार करते हो तो छुरा बाहर खींचने की कोशिश नहीं करो, उसे वहीं रहने दो और भीड़ में खो जाओ।''[2]

चारों युवक किसी मुसलमान को मारने की ताक में हैं। एक इत्रफरोश सामान लादे आता है इन्द्र गली में कुछ दूर उसके साथ चलता है और फिर:

''सहसा इन्द्र लपका और उसने पैंतरा मारा। इत्रफरोश को लगा जैसे उसके बायें हाथ कोई चीज जोर से हिली है। उसे अभास हुआ जैसे कोई चीज चमकी भी है पर वह खड़ा होकर घूमकर देखे कि क्या बात है तब उसे थैले के नीचे तीखी चुभन का-सा भास हुआ। इन्द्र का निशाना ठीक बैठा था। वार करने के बाद सरदार के आदेशानुसार उसने चाकू को थोड़ा सा मोड़ दिया था और अंतड़ियों के जाल में फँसा भी दिया था।''[3]

दूसरी ओर मौलादाद शाहनवाज को बताता है कि काफिरों ने एक गरीब मुसलमान को मार डाला है। वह आगे बताता है कि ''पाँच काफिर हमने भी काटे हैं। इनकी माँ की ......।''[4]

1— तमस, पृ0—70
2— उपरोक्त, पृ—149
3— उपरोक्त, पृ0—154
4— उपरोक्त, पृ0—129

द्वितीय खण्ड में एक गाँव की कथा आती है। पूरा गाँव मुसलमानों का है। बस-स्टॉप पर हरनाम सिंह सरदार की चाय की दुकान है। उसकी पत्नी बन्तो गाँव छोड़ने के लिए कहती है किन्तु हरनाम सिंह तैयार नहीं होता। बसों का आवागमन पूर्णतः बन्द है। करीम खान आता है और उसके पास रूके बिना बड़बड़ाते हुए आगे बढ़ जाता हैः

"हालात अच्छी नहीं हरनाम सिंह तू चला जा। दो एक कदम जाकर फिर बोला, 'गाँव वाले तो तेरे बल अक्ख वी नहीं चुक्कणगें पर बाहरों लोंकां दे आणदा डर है। उन्हाँ नूँ रोकणा साँडे बस दा नहीं।"[1]

वह पुनः लौटते हुए भी कहता है कि दंगाइयों के आने का भय है, इसलिए उसे देर नहीं करनी चाहिए। हरनाम सिंह अपनी पत्नी के साथ घर छोड़कर भागता है। रात भर चलने के बाद एक गाँव के निकट पहुंचते हैं। और गाँव के पहले घर का दरवाजा पीट कर खुलवाते हैं। हरनाम सिंह अपनी बन्दूक भी साथ ले गया था। घर मुसलमान का था। एक महिला उन्हें शरण देती है किन्तु उसकी बन्दूक ले लेती है। घर का मालिक एहसान अली उसी की दुकान लूट कर उसी का बक्सा लेकर आता है। एहसान अली और हरनाम सिंह एक दूसरे को जानते हैं। एहसान का पुत्र रमजान आता है और उसे पता चलता है तो वह कुल्हाड़ी लेकर दरवाजे को तोड़ता है। हरनाम सिंह के बाहर निकल आने पर उसे नहीं मार पाताः

"दो-तीन बार रमजान ने कुल्हाड़ी उठाने के कोशिश की, पर कुल्हाड़ी हाथ में रहते भी उसे नहीं उठा पाया। काफिर को मारना और बात है, अपने घर के अन्दर जान -पहचान के पनाहगजीन को मारना दूसरी बात। उसका खून करना पहाड़ की चोटी पार करने से भी ज्यादा कठिन हो रहा था। मजहबी जनून और नफरत इस माहौल में एक पतली-सी लकीर कहीं पर अभी भी खिंची थी। जिसे पार करना बहुत ही मुश्किल था। उसे रमजान भी पार नहीं कर पा रहा था।"[2]

आधी रात को हरनाम सिंह और उसकी पत्नी को गाँव के बाहर छोड़ दिया जाता है।

1— तमस, पृ0—165
2— तदैव, पृ0— 201—202

रमजान की माँ राजो सन्दूक में से निकले उसके गहने बन्तों को वापिस कर देती है। दूसरी ओर हरनाम सिंह का पुत्र इकबाल सिंह कुछ युवा मुसलमानों द्वारा घेर लिया जाता है। इकबाल सिंह के सामने प्रस्ताव रखा जाता है कि वह दीन कबूल कर ले तो उसे छोड़ दिया जायेगा। उसके स्वीकार करने पर उसे बगलगीर किया जाता है। उसके सिर को मुंडाया जाता है, दाढ़ी की काट मुसलमानों की जाती है, उसके मुहँ में गोश्त का टुकड़ा डाला जाता है, उसे कलमा पढ़ाया जाता है फिर सुन्नत की जाती है। उसके बाद एक बुजुर्ग उसके कान में कहते हैं:

"तेरा निकाह करायेंगे। बड़ी खूबसूरत औरत तुम्हें देंगे, कालू तेली की बेवा तेरी उम्र की है-जवान गठीली। उसे देखकर तेरी रूह खुश हो जायेगी। अब तू हमारा अपना है, अब तू शेख है, शेख इकबाल अहमद।"[1]

एक दृश्य एक कस्बे का है। सिख समुदाय के सभी नर-नारी और बच्चे गुरूद्वारा में एकत्रित हो गये हैं। दो दिन तक वे मुसलमानी आक्रमण का सामना करते हैं। लड़ाई जमकर होती है किन्तु बारूद और गोली समाप्त हो जाने पर सिखों के लिए लड़ना असम्भव हो जाता है। उपन्यासकार इस लड़ाई को मध्य युग की मानसिकता बताता है:

"तुर्क आये थे पर वे अपने ही पड़ोस वाले गाँव से आये। तुर्कों के जेहन में भी यही था कि वे अपने पुराने दुश्मन सिक्खों पर हमला बोल रहे हैं। और सिक्खों के जेहन में भी वे दो सौ साल पहले के तुर्क थे जिनके साथ खालसा लोहा लिया करता था। यह लड़ाई ऐतिहासिक लड़ाईयों की श्रृंखला में एक कड़ी ही थी। लड़ने वालों के पॉव बीसवीं सदी में थे, सिर मध्ययुग में।"[2]

गुरूद्वारे की युद्ध-परिषद् का विचार बनता है कि पैसे ले देकर सुलह की जाये। तेजा सिंह आकर बताता है कि वे लाख रूपया माँगते हैं। दो लाख रूपया देने के लिए बचे हुए सिख तैयार नहीं होते। तेजा सिंह छोटे ग्रन्थी से कहता है कि

"जाओ ग्रन्थी जी, उनके साथ एक लाख तक फैसला कर लो। पर शर्त यह है कि

1– तमस, पृ० –210

2– तदैव,, पृष्ठ – 211

बाहर से आने वाले लोग नदी पार चले जायें फिर वह अपने तीन नुमाइन्दे भेज दें, हमारे आदमी थैलियां लिये खड़े होंगे।''[1]

छोटा ग्रन्थी मेहर सिंह जाता है किन्तु उसी समय पश्चिम से और बलवाई आ जाते हैं। ग्रन्थी उसे रूकने की आवाज लगाता है। किन्तु मेहर सिंह चलता ही जाता है। मेहर सिंह को घेर कर मार दिया जाता है। गुरूद्वारे में गोलियाँ समाप्त हो चुकी हैं, इसलिए बड़े ग्रन्थी के नेतृत्व में सिख तलवारें लेकर निकल पड़े :

''तलवारें हवा में उठीं और दूसरे क्षण झूमती तलवारों को थामें-थामें सिक्खों का एक जत्था, जिसके बीच अन्य लोगों के साथ बड़ा ग्रन्थी भी था, नारे लगाता दुश्मनों को ललकारता ढलान उतरने लगा। केस खुले हुए, पत्थरों पर उनके पैर उलटे-सीधे पड़ रहे थे, उन्होंने मरने-मारने की ठान ली थी।''[2]

गुरूद्वारे में उपस्थित महिलाओं ने जसवीर कौर के नेतृत्व में अपने बच्चों को उठाकर पक्के कुएं की ओर जाना प्रारम्भ कर दिया। उस समय वे मन्त्रमुग्ध-सी उस ओर बढ़ती जा रही थीं, उन्हें यह भी ध्यान नहीं था कि वे क्यों और कहाँ जा रही हैं। कुएं पर पहुँचने के बाद -

''सबसे पहले जसवीर कौर कुएँ में कूद गयी। उसने कोई नारा नहीं लगाया, किसी को पुकारा नहीं, केवल 'वाह गुरू' कहा और कूद गयी। उसके कूदते ही कुएं की जगत पर कितनी ही स्त्रियाँ चढ़ गयीं। हरि सिंह की पत्नी पहले जगत के ऊपर जाकर खड़ी हुई, फिर उसने अपने चार साल के बेटे को खींचकर ऊपर चढ़ा लिया फिर एक साथ ही, उसे हाथ से खिंचती हुई नीचे कूद गयी। देवा सिंह की घरवाली अपने दूध पीते बच्चे को छाती से लगाये कूद गयी। प्रेम सिंह की पत्नी खुद तो कूद गयी, पर बच्चा खड़ा रह गया। उसे ज्ञान सिंह की पत्नी ने माँ के पास धकेलकर पहुँचा दिया। देखते-ही-देखते गाँव की दसियों औरतें अपने बच्चों को लेकर कुएँ में कूद गयीं।''[3]

1— तमस, पृ0—214

2— उपरोक्त, पृ0—216

3— उपरोक्त, पृ0—218—219

गुरूद्वारे की स्त्रियों का यह व्यवहार इसलिए था कि न जाने कितनी महिलाओं के साथ बलात्कार किया जा चुका था और न जाने कितनी महिलाओं को मुसलमानों ने अपने घर बिठा लिया था। गुरूद्वारे पर अन्तिम आक्रमण होने वाला था, उसी समय एक हवाई जहाज आता है जो बहुत नीची उड़ान भरता है जिसमें एक गोरा फौजी बैठा हुआ अपना हाथ हिला-हिलाकर अभिवादन करता है और दंगा थम जाता है:

''सभी हाथ थम गये, अब और कुछ नहीं होगा, अंग्रेज तक फसाद की खबर पहुँच गयी है, अब कोई आग नहीं लगायेगा, बन्दूक नहीं चलायेगा। मोटे कसाई के बेटे ने, जिसने गुरूद्वारे की खिड़कियों पर तेल छिड़क दिया था और बस दियासलाई लगाने की देर थी, अपने हाथ खींच लिये। लोग मुँह बाये हवाई जहाज की ओर देखते जा रहे थे।''[1]

स्पष्ट है कि जब अंग्रेजी सरकार ने इच्छा दिखाई तब दंगा बन्द हो गया। यह दंगा अंग्रेजी सरकार के कारण ही हुआ और उसी के कारण बन्द हो गया।

उपन्यासकारों ने दंगा न होने के और उसे रोकने के मानवीय प्रयासों का वर्णन भी किया है। देवदत्त दंगा रोकने के लिए प्रयास करता है। देवदत्त कम्युनिस्ट है। राजाराम ने उसे देखते ही दरवाजा बन्द कर लिया था। हयातबख्श ने पाकिस्तान का नारा लगाया था। वह रत्ते में दंगा रूकवाने के लिए साथी जगदीश को भेज चुका था। उसका साथ देने के लिए वह कुर्बान अली को भी भेजता है। पार्टी आफिस में वह मीटिंग में विभिन्न सम्प्रदायों के नेताओं को मिलाने की वकालत करता है:

''कामरेड, उनके मिल बैठने से ही लोगों पर अच्छा असर होगा। फिर हम उनके नाम से शहर से अमन कायम करने की अपील कर सकते हैं। मुहल्ले-मुहल्ले में उसकी मनादी करवा सकते हैं। इस वक्त क्या है? इस वक्त फसाद और खुली मार-काट नहीं हो रही, लेकिन जहाँ इक्का-दुक्का आदमी मिलता है उसे काट दिया जाता है। उन्हें आपस में मिलना निहायत जरूरी है।''[2]

उसके प्रयास से कांग्रेस के बख्शी जी और मुसलिम लीग के हयातबख्श मिलते हैं,

---

1— तमस, पृ0—221
2— तदैव,, पृ0—143

बड़ी कठिनाई से अमन की अपील पर हस्ताक्षर भी होते हैं किन्तु उसी समय समाचार मिलता है कि मजदूर बस्ती रत्ते में दंगा हो गया। देवदत्त को लगता है कि उसका प्रयास व्यर्थ गया।

कांग्रेस का कार्यकर्ता जरनैल अकेले ही दंगा रोकने का प्रयास करता है और उस प्रयास का परिणाम यह होता है कि मुसलमान दंगाई उसे घेर कर मार डालते हैं।

सरकार ने कर्फ्यू लगा दिया और वातावरण बदल गया। फौज तैनात कर दी गयी जिसके कारण दंगाईयों का साहस समाप्त हो गया। कांग्रेस की ओर से एक स्कूल में रिलीफ का दफ्तर खुल गया। डिप्टी कमिश्नर घूम-घूम कर सारा प्रबन्ध देखने लगा। रिचर्ड लीजा को बताता है कि शहर में अनाज की मण्डी जल गयी और देहात में 103 गाँव जल गये हैं रिचर्ड के प्रयासों से अमन कमेटी बनती है और अमन कमेटी के सभी सदस्य एक बस में बैठकर घूम-घूम कर ऐलान करते हैं कि शान्ति स्थापित की जानी चाहिए। उसका भी प्रभाव होता है और शांति स्थापित होने लगती है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय हिन्दू-मुसलमानों के बीच जो साम्प्रदायिक दंगे हुए उनकी कुछ चर्चा 'पतझड़ की आवाजें' में है। भारत-पाक विभाजन के समय अनुभा का जन्म हुआ था और अपनी माँ से उसने वे किस्से सुने हैं उसके दादा को यह समाचार सुनकर कि उनका शहर पाकिस्तान में आ गया है बहुत दुख हुआ। वे मानते थे कि देश के टुकड़े हो ही नहीं सकते, इसलिए वे समय से पूर्व शहर को नहीं छोड़ सके। उसके दादा घोड़े पर बैठे थे जब बीच चौराहे पर उन्हें पकड़ कर घोड़े के साथ बाँधा गया और फिर दोनों को एक साथ मार डाला। अनुभा अपनी माँ से सुनी इस कहानी पर विचार करती है तो उसे इसमें वीभत्सता के ही दर्शन होते हैं:

"ऐसे आदमी को मार सकने का नया खूनी स्वाद, जो आदमी किसी राजा की तरह अपने से कहीं-कहीं ऊँचा लगता रहा हो। कोई भी खूनी स्वाद कितना-कितना भीवत्स होता होगा। बचपन में इसके बारे में सोचती तो डर के मारे दाँत भिंच से जाते थे।"[1]

1– पतझड़ की आवाजें, पृ0 – 11

राजा की तरह रहने वाले सेठ की हत्या होने के पश्चात् पूरा परिवार स्टेशन की ओर दौड़ता है। उस समय स्टेशन के मार्ग में कितनी लाशें रही होंगी, ऐसी ही कल्पना अनुभा करती है:

''जब सारा परिवार निर्धन बना स्टेशन की तरफ भाग रहा था तब इधर-उधर कितनी देहें सड़ रही थीं, कट रही थीं - तब वैसी ही खूनी गंध फैली हुई होगी .... क्या परिवार के हर व्यक्ति के दिमाग में हमेशा के लिए जड़ हो गये होंगे वही खूंखार दृश्य? .... पर यह हमारी सोचें पीछे छूट जाती हैं कहीं छूट गयी छोटी बहू का ख्याल आते ही।''[1]

सेठ की छोटी बहू अर्थात् अनुभा की चाची। एक उजाड़ से स्टेशन पर आक्रमणकारियों ने डिब्बे में प्रवेश किया और छोटी बहू को ही झपट लिया। उसके पति द्वारा रोके जाने पर उसकी हत्या कर दी गयी:

''जब चिनाव वाले शहर को छोड़ा गया, तो कुछ तो कुछ देर बार अगले उजाड़-से स्टेशन पर गाड़ी रूक गयी ..... आक्रमणकारी टूट पड़े ..... धमकाने के बाद या खून-वून करके जिस डिब्बे से जितना माल बना लेकर चलते बने। ..... कुछ उस डिब्बे में भी पहुँचे तो छोटी बहू को ही झपट लिया और सारा परिवार मुँह देखते रह गया, ... बहू के पति ने रोकना चाहा तो हँसते हुये मुस्टंडों ने बहू की धोती चाकुओं से तार-तार कर दी और वहीं सबके सामने और कपड़ों की भी चिंदियाँ उड़ा दी। ...... नंगी देह को प्लेटफार्म पर पटका गया उछाला गया। और कई एक उस पर टूट पड़े-और कोई एक बहू के पति के पेट में चाकू घोंपता रहा।''[2]

अनुभा ने यह सब देखा नहीं था क्योंकि उस समय तो उसकी आयु केवल तीन महीने की थी उसने अपनी माता से सुना है। सुनकर ही वह सुन्न हो जाती है:

''मैं ये सब आँखों से देख लेती तो शायद जीने की इच्छा हमेशा के लिए मर जाती। अब इस पर कभी-कभी सुन्न सी ही हो जाती हूँ। पर क्या देखने और सुनने के बीच इतना बड़ा अंतर है।''[3]

1— पतझड़ की आवाजें पृ० —12
2— वही, पृ०—15
3— वही पृ०,—15

अनुभा ने अपने छोटे चाचा के सम्बन्ध में बार-बार लोगों से यह सुना है कि उसे चुप रहना चाहिए था, यदि वह चुप रहता तो बच जाता किन्तु उसकी प्रतिक्रिया भिन्न है। वह सोचती है कि जीवित रहकर तो वह पागल ही हो जाताः

"मेरे चाचा को भी सुन्न ही रहना चाहिए था। दुबके रहते, रोकते नहीं तो जान बच जाती। पर बचकर क्या वह व्यक्ति पागल नहीं हो सकता था ... हमेशा के लिए संवेग-सुन्न हो जाने की बात से कोई क्यों नहीं डरता।"[1]

अनुभा के लिये तो उसका वह स्वर्गवासी चाचा सबसे बड़ा नायक है, हीरो है हीरो। वह तो केवल यह सोचती है कि ऐसे पुरूष की बाँहों में बँधने का स्वाद भी विशिष्ट ही होता होगा-

"पर जो भी है मुझे वह अनदेखा चाचा बहुत अच्छा लगता है। सब संबंधियों से अच्छा - जो दुबका नहीं रहा। ऐसे किसी पुरूष की बाँहों में बँध जाने का स्वाद कैसा होता होगा। छोटी बहू जानती होगी .... और वह बहू अनावृत ही मर गयी या जिंदा रहकर फिर बार-बार अनावृत होती रही होगी .... कुछ नहीं मालूम। ..... काँप-काँप जाता है मन। तब इस बात को दिमाग के किसी भी कोने में रहने देना चाहती।"[2]

अनुभा की मानसिक स्थिति छोटी बहू की दुर्दशा से सदैव ग्रस्त रहती है और इस प्रकार बहू के साथ घटी दुर्घटना पूरे उपन्यास का केन्द्र-बिन्दू बन जाती है। वह अपने परिवार के बारे में सोचती है तो यही चिन्तन अभिव्यक्ति पाता हैः

"परिवार ही अलग-सी जमीन पर खड़ा था। सन् सैंतालिस में अपनी जगह से उखड़ा परिवार .... और मेरी मानसिक स्थिति रही उस अनदेखी छोटी चाची की दुर्दशा से आक्रान्त।"[3]

1— पतझड़ की आवाजें— 15

2— उपरोक्त, पृ0—15

3— उपरोक्त, पृ0—135

(घ) रंगभेद की नीति :

विदेशी कथाओं पर आधारित उपन्यासों में रंगभेद के अमानवीय स्वरूप का चित्रण किया गया है। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' में अमेरिका के होटलों और बार-हाउसों में काले रंग के भारतीय को भी नीग्रो समझ लिया जाता है और उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। उपन्यास का नायक निर्मल पद्मावत घोर काले रंग का व्यक्ति है जिसके कारण उसका अपमान होता रहता है। एक बार एक काली औरत की रक्षा करने में उसने तो गोरे अमरीकियों का सिर तोड़ दिया था:

''न्यूयॉर्क में उसके लिए मुसीबत सिर्फ एक थी कि घोर काले रंग की वजह से वह अक्सर अमरीकी नीग्रो समझ लिया जाता था। सफेद होटलों और बार हाउसों में उसे सफेद जनता के गुस्से का सामना करना पड़ता था। जनता जब साबित कर लेती थी कि यह आदमी हिंदुस्तान से आया है, इंडियन है, रेड-इंडियन नहीं है, तो शरमाकर माफी माँग लेती थी। इन परिस्थितियों ने उसे सहनशील और संयत बना दिया था। वैसे वह बड़े उग्र स्वभाव का है।गैर ईमानदारी और नाजायज घमंड वह सह नहीं पाता। एक काली औरत की रक्षा में एक बार उसने दो गोरे अमरीकियों का सिर तोड़ दिया था। अदालत में बुलाये जाने पर उसने कहा था, 'मेरे सामने अब भी किसी ब्लैक औरत को अपमानित किया गया, सिर्फ इसलिए कि वह ब्लैक औरत है, तो मैं अपमान करने वाले का सिर फोड़ दूँगा। मैं स्वयं काला आदमी हूँ। आई एम ब्लैक। और मैं कालेपन को बदसूरत या गुनहगार नहीं मानता हूँ।''[1]

इस कालेपन के कारण ही निर्मल पद्मावत अमेरिका छोड़कर भारत आता है और कलकत्ते में अपना व्यापार आरम्भ करता है।

1– मछली मरी हुई, पृ0–38

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संस्कृति विघटन के कगार पर खड़ी है। एक ओर प्राचीन संस्कारों के प्रति अनास्था उत्पन्न हो रही है तो दूसरी ओर पाश्चात्य भौतिकवादी दृष्टिकोण के प्रमुख होते जाने से विकृत मानसिकता बनती जा रही है। नगरों में महिलाएं समलैंगिकता की मनः स्थिति में पहुँच रही हैं, बिना विवाह किये पर-पुरूष से यौन-सम्बन्ध स्थापित कर रही हैं। और पद-प्राप्ति के लिए शरीर को समर्पित कर अधिक से अधिक धनार्जन के प्रति लालायित हैं।

सांस्कृतिक विघटन में शिक्षा-क्षेत्र के विघटन ने अग्नि में घृत का कार्य किया है। शिक्षक अपने वैयक्तिक स्वार्थो के प्रति अधिक चैतन्य रहता है। शिक्षा के स्तर को उन्नत करने की योग्यता का अभाव भी देखने को मिल रहा है। वह विभिन्न-प्रकार की गुटबन्दी में सम्मिलित रहता है। जातिगत दलबन्दी, छात्रों से लेकर अध्यापकों तक में व्याप्त हो गयी है। छात्र में शिक्षा के प्रति कोई रूचि नहीं रह गयी है। वह अनुशासनबद्ध होकर रहना नहीं चाहता। वह निर्धनता का कारण ढूँढ़ना चाहता है।

साम्प्रदायिकता का विष भी सामान्य जन को ही नुकसान पहुँचाता है। सामान्य व्यक्ति ही साम्प्रदायिक दंगों में मारा जाता है। धनी व्यक्ति का कुछ नहीं बिगड़ता। अमेरिका में रंगभेद की नीति के कारण काले लोगों से घृणा की जाती है। विभाजन से उत्पन्न स्थिति और साम्प्रदायिकता का जो यथार्थ चित्रण हिन्दी उपन्यासों में किया गया है उसके सन्दर्भ में डॉ0 शन्नो देवी अग्रवाल का कहना है कि :-

"हिन्दी के इन उपन्यासों में विघटन का राजनैतिक सत्य एक ठोस यथार्थ के रूप में चित्रित हुआ ही है, साथ ही इतिहास के वे अलिखित किन्तु सत्य क्षण भी पूरी गहराई से समर्पित हो गए हैं, जिनको एक संवेदनशील साहित्यकार की लेखनी ही पकड़ सकती है।"[1]

1– स्वतंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में समकालीन राजनीति, पृ0 –138

पंचम् अध्याय

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आर्थिक दृष्टि से विघटन

- धनाभाव के कारण विघटन
- धनाधिक्य के कारण विघटन

पंचम अध्याय

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में आर्थिक दृष्टि से विघटन

(क) धनाभाव के कारण विघटन :

धनाभाव के कारण पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विघटन होता है। सबसे बड़ा दुख धनाभाव ही है और यदि एक भाई के पास धनाभाव होता है तो अन्य भाइयों से उसे स्नेह अथवा आदर नहीं मिलता है। नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में श्रीधर के पास धनाभाव था, इसलिए उसके साथ तथा उसके परिवार के साथ भाई और भाभियों का व्यवहार अच्छा नहीं था। श्रीधर की पत्नी सरस्वती ने विवाह के पश्चात् ही इस स्थिति को समझ लिया था कि वह इस परिवार की दासी है:

''इतने बरस हो गये सरस्वती ने घर में जो देखा या जो सुना वह काम करते हुए, सिर झुकाये ही। वह विवाह के आठ दिन बाद जेठानी के रूख से समझ गयी कि घर को एक दासी की आवश्यकता थी और वही सरस्वती इतने बड़े परिवार में हो सकती है। बिना पति को कुछ बताये सरस्वती ने अपने इस 'अहोभाग्य' को स्वीकार लिया।''[1]

श्रीधर के बीमार होने पर भी सरस्वती को ही काम करना पड़ता है।उसकी सास उसे श्रीधर के पास जाने को कहती है तो सरस्वती की जेठानी आकर बड़बड़ाने लगती है। सरस्वती रोती है तो श्रीधर उससे रोने का कारण पूँछता है। श्रीधर की माँ आकर स्थिति स्पष्ट करती है:

''मझली ने मुझे कुछ नहीं कहा श्रीधर। बल्कि मैंने ही इससे कहा कि जब श्रीधर की तबियत खराब है तो चूल्हे-चौके का काम छोड़कर चली क्यों नही जाती? जब महारानियों को फुर्सत होगी खा लेंगी और सम्हालेंगी चौका-चूल्हा। और एक दिन चौका-चूल्हा सम्हाल ही लिया तो कौन रूप घिस जाएगा रानियों का? बस इस बात पर बडी अपने कमरे से निकली और न ससुर का लिहाज न सास का। लगी फूटी हांडी सी बड़बड़ाने इस

1– यह पथ बन्धु था, पृ0–48

पर। यह बेचारी गाय। आज तक किसी को जबाब दिया जो इन्हीं जेठानी को देती?''[1]

श्रीधर घर-परिवार त्याग कर उज्जैन चला जाता है। बिशन अधिक व्यावहारिक व्यक्ति है। जो वह उसे समझाता है कि घर वापस लौट जाये क्योंकि ये बड़े वकील, बड़े जमींदार और नेता उसे केवल दास बना सकते हैं:

''श्रीधर, अभी भी कहता हूँ कि तुम अपने घर लौट जाओ। इतना सीधापन लेकर सिवाय ठोकरें खाने के और कुछ हाथ नहीं आएगा। भले आदमी। यह दुनियाँ है। क्यों अपनी दुर्गत कराना चाहते हो? गोमुखी में बाघनख छिपाये इन 'भक्तजनों' ने हर श्रद्धालु नारी को वेश्यापद प्रदान किया और हर पुरूष को दास बनाया। श्रीधर इन 'भक्तजनों' की नाक पर यदि घूँसा मार सकते हो तब तो घर-परिवार छोड़ना वर्ना .....।''[2]

धनाभाव होने पर जेठानी देवरानी का शोषण करती है, उस पर अत्याचार करती है। सरस्वती के पति श्रीधर के घर छोड़कर चले जाने पर उसकी जेठानी सावित्री देवी आस-पड़ोस के लोगों से झूठी बातें कहती फिरती और तब तीसरे पहर सरस्वती देवी सूखी रोटी खाती होती:

''दाँतों में सवेरे की बनी रोटी 'किस्स-किस्स' करती खायी जा रही होती कि भभक कर बिछिया तथा पायल बजाती जेठानी चूने में पानी डालने के बहाने आकर देख जाती कि महारानी जी अभी खाना ही खा रही हैं? कपड़े कब धुलेंगे? - सरो, जेठानी को देखकर काँप उठती जैसे बिल्ली देख ली हो। एक रोटी खाकर ही उठ जाती। आँतें, सहस्रमुखी होकर उस समय खाना खा रही होतीं कि उन्हें पानी के एक लोटे से ही परितृप्त कर दिया जाता। सरो, आत्मविस्मृत बनी दिन भर काम में बुझी रहती।''[3]

धनाभाव के कारण राजनीति में तो बढ़ा ही नहीं जा सकता। श्रीधर की समझ में यह बात बनारस के संघर्ष के समय आती है:

1– यह पथ बन्धु था, पृ0–73
2– उपरोक्त, पृ0–269
3– उपरोक्त, पृ0–327

"इसी बीच उन्हें यह अनुभव होता जा रहा था कि कांग्रेस में आगे बढ़ने के लिए व्यक्ति की सामाजिक स्थिति अच्छी होनी चाहिए। जो बात पहले विशन कहा करता था। उसे वे उसका आदेश अधिक मानते थे। यहाँ आकर उस कथन की वास्तविकता का अनुभव कर रहे थे। अब आये दिन बड़े नेताओं के भाषण तैयार करने पड़ते थे और उस समय उन्हें महान आश्चर्य होता था कि उनके ही विचार नेताओं के द्वारा सुनकर जनता में जागरण आ रहा था"[1]

धनाभाव के कारण विघटन की स्थिति का चित्रण 'मछली मरी हुई' में किया गया है। कल्याणी डाक्टरी पढ़ने अमेरिका जाती है किन्तु घर से रूपये आने बन्द होने पर वह वापस भारत नहीं जाती अपितु वहाँ के कहवाघरों और नाचघरों के चक्कर काटती है:

"कल्याणी डॉक्टरी पढ़ने के लिए अमरीका आई थी। लेकिन पढ़ाई नहीं चल सकी। घर से रूपये आने बन्द हो गये। 'फॉरेन एक्सचेंज' की दिक्कत पैदा हो गई। माँ ने चिट्ठी लिखी, टेलीग्राम दिए और तरह-तरह के लालच दिखाए- 'कल्याणी बेटी, तुम वापस चली आओ।' लेकिन कल्याणी कटी हुई पतंग की तरह न्यूयॉर्क, कैलिफोर्निया और लॉस ऐंजिल्स इन तीनों शहर के कहवाघरों और नाचघरों में चक्कर काट रही थी। वह वापस नहीं जाएगी, क्योंकि वह कटी पतंग है। उसकी आत्मा इस नई दुनिया के नए और आजाद आसमान में रम गई है।"[2]

कल्याणी के पास पैसा नहीं है, इसलिये वह मॉडल बन जाती है :

"यह जिप्सी-संगीत कल्याणी को पागल कर देता है। वह शेरॉस की पुरानी 'रम' पीकर भटकती रहती है। पैसे उसके पास नहीं हैं, लेकिन उसके पास एक सुनहरी डायरी है, जिसमें उसने कई फोन नंबर और कई नए-पुराने पते दर्ज कर रखे हैं। वह फैशन-शो में 'मॉडल' का काम करती है। कई चित्रकार और कमर्शियल फोटोग्राफरों ने उसके 'फिगर', उसके शरीर के चढ़ाव-उतार की प्रशंसा की है। न्यूयॉर्क में हिन्दुस्तान से आई

1— यह पथ बन्धु था, पृ0—447
2— मछली मरी हुई, पृ0 —49

हुई अकेली लड़की है कल्याणी - जो अमरीका 'मॉडल' लड़कियों की कतार में खड़ी होकर गायब नहीं हो जाती, कायम रहती है, मुस्कराती रहती है।''[1]

कल्याणी एक वेश्या की तरह जीवन व्यतीत करती है। यदि उसके पास पैसा आ जाये तो वह बचाकर रख नहीं पाती और जब पैसा नहीं होते तो अपने कीमती कपड़े पहनकर किसी न किसी भारतीय को फँसा लेती है :

'' ..... पिछले दो दिनों में कल्याणी ने सरदार निहाल सिंह से ढ़ाई सौ डालर लिए थे। और ये सारे डालर उसने इन्हीं दो दिनों में खर्च भी कर डाले थे। वह बुरे दिनों के लिए पैसे बचाकर रख नहीं पाती, क्योंकि वह हमेशा, हर वक्त 'बुरे दिनों की स्थिति में रहती है। पैसे हुए तो किसी भी अच्छे और अकेले 'पब' में बैठकर 'पोर्ट' या 'शेरी' पीते रहना और अपनी खामखयालियों में डूबे रहना ... पैसे नहीं हुए तो अपने कमरे में, बिस्तर में पड़े-पड़े 'पालमाल' सिगरेट पीना और कोई भी सस्ती शराब पीकर सोते रहना। शहर में हजारों दोस्त, लेकिन कहीं कोई दोस्त नहीं। ज्यादातर वह अकेली रहती है। लेकिन जब होटल का उधार बढ़ जाता है 'लांड्री' से धुले हुए कपड़े ले आने के लिए पैसे नहीं होते .... कल्याणी अपनी सबसे कीमती साड़ी और ब्लाउज निकालती है। हल्का मेकअप डालकर वह अपने कमरे के बाहर निकल आएगी। अकेली, लेकिन पूरी तरह तैयार होकर। 'प्लाजा' में मेडिसन ऐवेन्यू में, 'टाइम' स्क्वायर में, कहीं न कहीं 'सरदार निहाल सिंह' से मुलाकात हो जाती है। परिचय होता है और आगे बढ़कर परिचय कर लेने वाला आदमी कल्याणी की बातचीत, कल्याणी के सलीकों और सिलसिलों को देखकर चकित हो जाता है।''[2]

कल्याणी किसी पुरानें जमींदार घराने के नये वारिस को फँसा लेती है और वह निर्मल पद्मावत को बुलाकर उसका परिचय देते हुए कहती है:

''मैं प्रताप से शादी करने जा रही हूँ .... सैंडियागो में शादी होगी। फिर हम दोनों वापस केलिफोर्निया आ जायेंगे, और ..... ।' उसने अपना दाँया हाथ निर्मल की ओर बढ़ा

1— मछली मरी हुई, पृ0—50

2— तदैव, पृ0—52

दिया। बीच की उँगली में एक कीमती पत्थर जगमगा रहा था .... पुखराज का एक बड़ा-सा बेडौल टुकड़ा।''[1]

प्रताप के चाचाजी एक चतुर व्यक्ति थे और कल्याणी का प्रताप के प्रति अधिक निर्मम स्वार्थी होते जाने के कारण प्रताप उसे छोड़कर चला जाता है। उसके पश्चात् कल्याणी की आर्थिक स्थिति और खराब हो जाती है। उसके पास टैक्सी के किराए के पैसे भी नहीं रहते। वह एक सस्ते नाइट क्लब में एक जूता बनाने वाली कम्पनी के बयोवृद्ध मालिक के साथ खेल-तमाशे करती है किन्तु वह उसके चंगुल में नही फँसता तब वह निर्मल को फोन करके बुलाती है:

''निर्मल दोपहर के बाद उसके कमरे में आया। उसे पता नहीं था कि प्रताप अपने चाचाजी के साथ वापस लौट चुका है और कल्याणी ने अपनी कार बेच दी है। उसे यह भी पता नहीं था कि फिल्म 'आई विल क्राई टुमारो, की सूसन हवार्ड की तरह, अब कल्याणी भी शराब और नींद और किसी आदमी के साथ की खोज में सारी रात सड़कों पर, शराब घरों में, क्लबों में भटकती रहती है।''[2]

निर्मल पदमावत् एक बार कहने पर कल्याणी को अपनी सारी जमा-पूँजी बारह सौ डालर का चैक उसे थमा देता है। कल्याणी निर्मल से पूछती है कि वह उससे क्या चाहता है? निर्मल के उत्तर देने पर कि वह जानती है फिर भी क्यों पूछती है, वह कहती है :

''इसलिए कि तुम्हारे मुँह से यह बात सुन लेना मुझे बड़ा अच्छा लगेगा। .... निर्मल, तुम मेरे अपने देश के आदमी हो। अपनी जबान में बोलोगे। यहाँ मेरा अमेरिकनों से ही नहीं, चाइनीज और अफ्रीकनों से वास्ता पड़ता है। सभी मुझे 'व्हाइट इंडियन लेडी' कहते हैं। और मेरा उजलापन चूस डालना चाहते हैं। तुम मेरे अपने देश के हो, चुसोगे नहीं, कोमल हाथों से मेरे जख्म सहलाओगे, मरे दर्दो पर मलहम लगाओगे ......''[3]

1— मछली मरी हुई, पृ0—54—55

2— तथैव, पृ0—59

3-- तदैव, पृ0—63—64

विश्वजीत मेहता, निर्मल पदमावत् से कल्याणी के सम्बन्ध में यही बात कहता है कि वह एक रात के कुल पचास डालर लेती थीः

"मुझे कल्याणी की तस्वीर देखने की जरूरत नहीं है, मिस्टर पदमावत् मैं हर साल सर्दियों में न्यूयॉर्क जाता था और 'सेग्रीला' में ठहरता था। और हर रात मैं आपकी कल्याणी को बुलवाता था। ज्यादा नहीं वह एक रात के लिए कुल पचास डॉलर लेती थी। कुल पचास डॉलर और दो-एक बोतल वारमूथ की शराब।"[1]

धन की आवश्यकता अथवा अधिक धन कमाने की लालसा ही धनहीनता में विघटन का कारण बनती है। प्रभास चंद्र नियोगी कलकत्ते के प्रमुख उद्योगपति और पूँजीपतियों में से हैं किन्तु उसने यह पूँजी ऐसी ही नहीं जमा कर ली। गबन के एक मामले में नियोगी के पिता जी जेल चले गये थे। वहीं मर-मिट गए। उस समय नियोगी की छोटी बहन सरला पड़ोसियों में एक रूपया, आठ आना या चार आना माँग लाती थी, उसे इसके लिए कभी रोका नहीं गयाः

"एक छोटी बहन भी थी, सरला। वह फ्रॉक पहने रहकर भी बूढ़ी और अनुभवी दिखती थी, और सारा दिन पड़ोसियों के घरों में घुसी रहती थी। कभी रूपया, कभी आठ आना, चार आना माँग लाती थी। मुहल्ले के बुजुर्गों में सरला अत्यन्त लोकप्रिय थी, क्योंकि वह नासमझ थी।"[2]

दूसरी बड़ी लड़ाई के समय नियोगी ने मिलिटरी की ठेकेदारी शुरू की और उसमें मनोरंजन की सामग्री के साथ-साथ लड़कियाँ भी भेजते थेः

"दूसरी बड़ी लड़ाई शुरू होने पर, नियोगी ने शेयर-बाजार छोड़ दिया। मिलिटरी की ठेकेदारी शुरू की। बर्मा, नेपाल, सिक्किम, नागा प्रदेश की सीमाओं पर बिछी हुई फौजी छावनियों में अनाज, कपड़े, वर्दियां, तंबू, मनोरंजन का सामान और लड़कियाँ पहुँचाना। उन

1—मछली मरी हुई, पृ0—90—91
2—तदैव, पृ0 — 38

दिनों जब किसी लड़की पर प्रभास चंद्र नियोगी गुस्सा होते थे, तो उसे किसी न किसी बहाने लड़ाई के 'फ्रंट' पर भेज देते थे।''[1]

युद्ध की स्थिति में गरीब और निर्धन व्यक्ति ही मुसीबत में पड़ता है। पुरूष सैनिक बनकर युद्ध में भाग लेने चला जाता है और उनकी औरतें शहर जाकर शरीर बेचने लगती हैं क्योंकि धनाभाव के कारण रोजी-रोटी के लाले पड़ जाते हैं:

''जब युद्ध होता है, सबसे बड़ी मुसीबत किसानों और शहरी औरतों के लिए होती है। किसान बंदूक उठाकर लड़ने चले जाते हैं। खेत बंजर रह जाएँ, गाँव'-का गाँव अपने चूल्हे सुलगा नहीं सके, पूजा और त्यौहार के दिन भी ढोल-मंजीरे चुप रहें, और उनकी औरतें रोएँ नहीं, सिसकती नहीं रहें और अपने चेहरों पर स्याही पोतकर शहर चली आएँ-बाजारों में नंगी घूमने के लिए।''[2]

इसी प्रकार सिरिजेन्स क्लब के सभापति विश्वजीत मेहता अठारह कंपनियों के डॉयरेक्टर हैं किन्तु ये कंम्पनियाँ उन्होंने किसी उचित मार्ग से नहीं बनायी हैं अपितु 'नाजायज हथकंडे' अपनाकर प्राप्त की हैं। पैंतालीस वर्ष की आयु में स्टील-फैक्टरी के मालिक की पुत्री से विवाह करके फैक्टरी-मलिक और उसके दो पुत्रों को मार्ग से हटवाकर ही वे यहाँ तक पहुँचे हैं :

''मेहता साहब अठारह कम्पनियों के डायरेक्टर हैं। बेहद चालाक पूँजीपति हैं। बिजनेस के सारे जायज-नाजायज हथकंडे जानते हैं। बेहद चालाक हैं। शुरू में एक इंश्योरेंस कंपनी के कानूनी सलाहकार थे। वकालत भी कर चुके हैं। फिर उसी कंपनी के डायरेक्टर बन गये। कैसे बन गये? निर्मल के दफ्तर की फाइल में सारा हाल लिखा हुआ है। पैंतालीस साल की उम्र में विश्वजीत मेहता ने एक स्टील-फैक्टरी के मालिक की लड़की से विवाह किया। फिर स्टील फैक्टरी के मालिक का देहान्त हो गया। मालिक के दो लडके थे दोनों एक साथ एक कार -ऐक्सीडेंट में मारे गए। एक इंश्योरेंस कंपनी ...... एक स्टील-फैक्टरी ...... दो जूट मिल ...... एक शिपिंग कंपनी .... विश्वजीत मेहता

1— मछली मरी हुई, पृ0—39
2— उपरोक्त, पृ0—39

अठारह कंपनियों के मालिक हो गए। कैसे हो गए?''[1]

श्रीनिवास सर्वाधिकारी ने पहले कभी घूस नहीं ली। किन्तु सबसे छोटी लड़की की शादी में दहेज देने के लिए धन चाहिए, इसलिए निर्मल पद्मावत के खातों की जाँच में उन्हें धन चाहिये। इसलिए उनके मन में लालसा है:

''श्रीनिवास सर्वाधिकारी की आँखों में लालसा थी और भय था। बेहद मोटे-तगड़े आदमी थे। ऊँची तोंद, छोटी-छोटी आँखें। पहले किसी कॉलेज में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर थे। सार्विस कमीशन का इम्तहान पास करके आई0 टी0 ओ0 हुए। अब कमिश्नर हुए हैं। पहले कभी घूस नहीं ली है। डरते थे, अब भी डरते हैं। मगर अब रिटायर होने वाले हैं, अपना मकान तक नहीं बना पाए। अपनी गाड़ी तक नहीं है। इसी साल छोटी लड़की की शादी करनी है। कोई लड़का विलायत जाने के खर्चे से कम की बात नहीं करता दहेज में नई कार चाहिए।''[2]

धनाभाव के कारण विघटन भयंकर और विनाशकारी रूप भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यास 'अधूरा स्वर्ग' में देखने को मिलता है। ठाकुर वीरबहादुर सिंह जिले की कचहरी में पेशकार थे। उनकी ऊपरी आमदनी अच्छी थी। किन्तु शराब के व्यसन के कारण उन्होंने भविष्य के लिए कुछ भी धन बचाकर नहीं रखा। उनकी पत्नी की मृत्यु हो जाने पर वे नौकरी छोड़कर हरिपुर आ गये, जहाँ उनके पुरखों का एक खण्डहर मात्र था। उनकी पुत्री कामिनी गजेन्द्र से प्रेम करती थी और गजेन्द्र भी कामिनी से प्रेम करता था। चतुर सिंह येन-केन-प्रकारेण कामिनी को प्राप्त करके गजेन्द्र को पराजित करने का इच्छुक था। उसने राजनीति के प्रमुख अस्त्र छल-कपट को अपना सहारा बनाया। वीरबहादुर सिंह के पास धनाभाव था। किन्तु शराब की लत थी। चतुर सिंह ने वीरबहादुर सिंह को संध्या के समय अपने यहाँ बुलाकर पिलाना आरम्भ कर दिया:

''कहते हैं हराम की शराब का नशा अधिक मादक होता है। वीरबहादुर भी जब घर लौटते तो उनको अपने तन-बदन का होश न रहता। धीरे-धीरे जब चतुरसिंह को यह

1— मछली मरी हुई, पृ0—83
2— तदैव, पृ0—140—141

विश्वास हो गया कि वीर बहादुर के पास पैसे नहीं हैं, और वह बिना रंगीन पानी को कंठ से उतारे जीवित नहीं रह सकते तो उसने तुरूप चाल चली और एक संध्या ऐसी आयी, जब वीरबहादुर उसके यहाँ नित्य के अनुसार जा पहुँचे तो बैठने का आग्रह करने के बाद तुरन्त वह हिसाब-किताब में इस भाँति लग गया, जैसे बहुत व्यस्त हो।''[1]

दोनों ओर से छल-कपट की भाषा का प्रयोग होता है और अन्ततः पिता (वीरबहादुर सिंह) अपनी पुत्री (कामिनी) को दस हजार रूपये में बेंच देने पर सहमत हो जाता है:

''सौदेबाजी शुरू हो गयी। एक राजनीति का खिलाड़ी था, दूसरा कचहरी के अखाड़े का छटा माहिर पहलवान। अन्ततोगत्वा पुत्री पिता के द्वारा बेंच दी गयी। दस हजार रूपयों की थैली पर नीलामी समाप्त हुई।''[2]

चतुर सिंह दस दिन के अन्दर रूपये देने का वादा करता है कि अगले दिन ही परिस्थिति में एक नया परिवर्तन उपस्थित होता है। गजेन्द्र, वीरबहादुर सिंह के पास जाकर कामिनी के साथ विवाह का प्रस्ताव रखता है। वीरबहादुर सिंह किसी अन्य परिस्थिति को टालना चाहता है। किन्तु कामिनी स्पष्ट शब्दों में यह कह देती है कि वह पुरूष के साथ विवाह नहीं करेगी। वह गजेन्द्र के प्रश्न का उत्तर अपने पिता के समक्ष देते हुए कहती है :

''जहाँ तक वचन का प्रश्न है मैं मन-प्राण से आपको पति मान चुकी हूँ। परन्तु पिताजी की इच्छा के विरूद्ध मैं विवाह नहीं कर सकती। हाँ, मैं सौगन्ध खाती हूँ कि किसी अन्य व्यक्ति के साथ मेरा नहीं मेरे शव का विवाह होगा। मैं अन्तिम क्षण तक प्रतीक्षा करूँगी और वेदी पर बैठने की अपेक्षा कटार को अपने हृदय में बैठा दूँगी।''[3]

वीरबहादुर सिंह को दस हजार रूपये जाते हुए दिखते हैं तो उन्हें कामिनी पर क्रोध आता है। वीरबहादुर सिंह को गजेन्द्र के ऊपर उतना क्रोध नहीं आ रहा था जितना कामिनी के ऊपर। मस्तिष्क में रह-रहकर दस हजार रूपयों के नोट उड़ रहे थे। रूपयों का

1— अधूरा स्वर्ग, भगवती प्रसाद वाजपेयी, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, 1996, पृ0—20
2— उपरोक्त, पृ0—24
3— उपरोक्त, पृ0—37

लोभ उनको चैन न लेने दे रहा था। वे कचहरी के दाँव पेच सोच रहे थे।''[1]

ठाकुर वीरबहादुर सिंह के साथ मिलकर एक षड्यन्त्र रचते हैं। इस षड्यन्त्र के अनुसार गजेन्द्र और कामिनी के विवाह के समय चतुर सिंह कामिनी को पूजा कराने के बहाने ले जायेगा और इस प्रकार उसका अपहरण कर लेगा। ठाकुरों में अपहरण की पुरानी परम्परा है। चतुर सिंह इस योजना में और सुधार करता है और वह अपना सब कुछ बेचकर किसी शहर में बसने का कार्यक्रम बनाता है किन्तु वह वीरबहादुर सिंह को रूपए पहले देने से इंकार कर देता है:

''मैं इस विषय में आपका ही अनुकरण कर रहा हूँ। आप रूपया लिये बगैर सम्बन्ध स्थिर नहीं कर रहे थे; क्योंकि आपको मेरे ऊपर विश्वास न था। कल ही अन्तिम क्षण में यदि आपका विचार बदल जाये, या गजेन्द्र आपकी योजना को विफल कर दे तो? .... उस दशा में मेरा रूपया खटाई में न पड़ जायेगा। मैं व्यापारी हूँ। खरे सौदे पर विश्वास करता हूँ। सटोरिया नहीं, जो भविष्य की कल्पना-मात्र पर सब कुछ दाँव पर लगा देता हूँ।''[2]

जब बारात घर के सामने आती है और सभी महिलाएँ दूल्हे को देखने दुल्हन को अकेला छोड़कर चली जाती हैं तो वीरबहादुर सिंह के साथ चतुर सिंह आता है। पिता अपनी पुत्री को देवी का आशीर्वाद लेने के लिए मन्दिर जाने के बहाने चतुर सिंह के साथ जीप में चढ़ा देता है। उपन्यासकार इसे रूपये के लिए विषव्य की संज्ञा देता है:

''दुष्टों का दमन करने हेतु भगवान शंकर ने भी विषपान किया था और शिवरूप होकर पूज्य बन गये थे। परिस्थितियों से घिरे ठाकुर साहब ने भी स्वार्थ हेतु विषपान किया। स्वयं पुत्री को उन्होंने धन के लालच में सूली पर चढ़ा दिया। और धन भी किसलिए, जिससे वे अपनी शराब की प्यास बुझा सकें।''[3]

'अधूरा स्वर्ग मे धनाभाव के कारण चोरी करने का मार्ग अपनाने की घटना भी होती है। भूख से तड़पकर कल्लू की पत्नी मर गयी थी और उसका एक मास का शिशु दूध के अभाव में चिल्ला रहा था:

1– अधूरा स्वर्ग, पृ0–39
2– तदैव,पृ0–43
3– तदैव, पृ0–57

"धैर्य की एक सीमा होती है। दुःखी मन और तन अबोध शिशु का मार्मिक क्रन्दन न सहन कर सका। परन्तु संसार हृदयहीन शिलाखण्डों पर आधारित है। वह न पिघला, न पसीजा और कल्लू को एक चुल्लू दूध दुह लेने के जुर्म में उसके विपक्षियों ने उसे थाने में बन्द करा दिया। वह चीखता रहा, चिल्लाता रहा परन्तु न उसकी प्रत्यक्ष पुकार किसी ने सुनी और न उसकी झोपड़ी में गूँजती हुई भूखी अप्रत्यक्ष आत्मा की पुकार।"[1]

किशन जाति का चमार था। उसकी साली गुलबिया चार वर्ष पूर्व विधवा होने के पश्चात् उसके घर आकर रहने लगी। उसने किशन की आर्थिक स्थिति खराब देखी तो उसके समक्ष देह-व्यापार के द्वारा धन अर्जित करने का प्रस्ताव रखा जिसको किशन ने स्वीकार कर लिया। अब .....

"किशन की असली आय का स्रोत गाँव के बाहर से आने वाले लोग थे। बात करने की उसकी अपनी कला थी। वह बातों-बातों में परदेसियों के मन का भेद पा लेता था और अवसर देखकर रात्रि व्यतीत करने का या समय न होने पर केवल कुछ समय व्यतीत करने पर तैयार कर लिया करता था। परदेसी अधिकतर ट्रक-ड्राईवर होते थे जिनका अधिक समय घर से दूर ट्रकों पर बीतता था। वे तुरन्त ही तन की भूख मिटाने के लिए प्रस्तुत हो जाते और किशन का मतलब पूर्ण हो जाता।"[2]

धनाभाव होने पर चतुर सिंह निराश हो उठाता है। उसे चारों ओर से उपेक्षा मिलने लगी थी। निराशा में वह कामिनी को एक पत्र लिखता है और आत्महत्या करने के लिए चला जाता है। वह कामिनी को जो पत्र लिखता है, उसमें स्पष्ट ही कहता है:

"अब मेरे तप्त हृदय को केवल मृत्यु शान्ति प्रदान कर सकती है। मेरे पास एक ही उपाय बचा है कि मैं अपने तन-मन-प्राण में समाये हुए कलुष को धोने के लिए प्रायश्चित के महासागर की तरंगों का आलिंगन कर लूँ। मैं सोचता हूँ, इसमें कोई बुराई नहीं है।"[3]

धनाभाव की निराशा बहुत भयानक होती है। व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है अथवा

1– अधूरा स्वर्ग, पृ0–83
2– उपरिवत्, पृ0–112
3– उपरिवत्, पृ0–232

पागल हो जाता है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' का एक पात्र उमेश इसी प्रकार का है। छात्र-जीवन में न केवल वह एक बुद्धिमान छात्र था अपितु एक प्रतिभाशाली कवि भी था। नौकरी करते हुए भी वह कक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त करता रहा। माधवी ने उससे न केवल प्रेम किया अपितु भविष्य के सुनहरे सपने भी उसकी आँखों में सजाये किन्तु जब एम0 ए0 में प्रथम श्रेणी आने पर भी अपने ही कॉलेज में पद रिक्त होने पर भी उसे नियुक्ति नहीं मिली तो माधवी ने भी टका-सा जवाब दे दिया। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा:

"नहीं, मैं तुमसे ही बँधना चाहती रही लेकिन उसके लिए मैं किसी आधार पर डैडी को सहमत करना चाहती रही। डैडी बहुत बड़े अफसर को मेरा दूल्हा बनाना चाहते हैं। मैं जानती हूँ कि उनकी इस इच्छा से टकराना आसान नहीं है, टकराने के लिए कुछ आधार तो चाहिए। इसलिए मैं चाहती रही कि तुम लेक्चरर हो जाओ तो उन्हें सहमत करने या टकराने का एक आधार मिल जायेगा।"[1]

कुछ दिनों तक उसके मन में संघर्ष चलता रहा। मन करता रहा कि वह क्लर्की छोड़ दे किन्तु पेट का प्रश्न उसके सामने आ जाता था। वह भीतर ही भीतर अस्त-व्यस्त हो उठता है, टूटता जाता है। उसने स्वयं अपनी डायरी में लिखा:

"कहीं देखता हूँ तो देखता ही रह जाता हूँ। मैंने अपने को एक बार बहुत डाँटा कि माधवी बूर्ज्वा होकर तुम्हें इतनी आसानी से भूल सकती है और तुम मार्क्सवादी होकर भी उसे नहीं भूल पाते। बदले हुए संदर्भ, बदली हुई परिस्थितियों और मनःस्थितियों को पहचानने की बात तो बहुत करते हो लेकिन अपने को इस बदलाव के संदर्भ में क्यों नहीं बदलते? हाँ, मुझे अपने को बदलना चाहिए, मुझे बूर्ज्वा लड़की को भूल जाना चाहिए। मैं मार्क्सवादी हूँ, मैं मार्क्सवादी हूँ इसे भूलूँगा, भूलूँगा .... लानत है मुझे कि मैं अब तक भूल नहीं सका।"[2]

एक दिन उमेश ने एक लेक्चरर को पीट दिया और उसी मुकदमें में उसे दो महीने

1– अधूरा स्वर्ग, पृ0–314
2– उपर्युक्त, पृ0–316

की कैद की सजा हुई। उसके विरुद्ध मुकदमा माधवी के पिता ने ही लड़ा था। जेल में उसका पागलपन बढ़ गया। उस पागल प्रतिभाशाली कवि के लिए न तो मार्क्सवादियों ने ही कुछ किया और न साहित्यकारों ने ही। रामदरश मिश्र के ही दूसरे उपन्यास 'जल टूटता हुआ' का रामकुमार ऐसी स्थितियों में राजनैतिक दल बदलकर संतुष्ट होता है। वह कांग्रेस का कार्यकर्ता है और मिस सेन से प्यार करता है। मिस सेन के समक्ष जब वह अपने प्यार की बात कहता है तो मिस सेन उसके गाल पर एक भरपूर तमाचा मारती है और उसकी हैसियत पूछती है:

"तो यह बात है, अपनी हैसियत नहीं देखते। थर्ड क्लास पास होते हैं; और फिर घर की हैसियत क्या है? मेरे साथ प्यार करने को आप ही रह गये हैं।"[1]

कुमार, कांग्रेस को दकियानूसों की पार्टी मानकर सोशलिस्ट पार्टी में चला जाता है और विद्रोह की बातें करने लगता है। वह अपने जीवन-क्रम को पूरी तरह बदल डालता है। गाँव वाले उसे भ्रष्ट समझने लगते हैं:

"गाँव के लोगों ने इसे कतई नहीं समझा और समझ भी कैसे सकते हैं, रूढ़ियों और आप्त-वाक्यों की माला पहन कर घूमने-वाले गँवई लोग सब कुछ उतार फेंकने वाले नेता कहाँ से समझें तरह-तरह की शिकायतें करने लगे-'ईसाई हो गया, क्रिस्तान हो गया, मुसलमान हो गया, वह सिगरेट पीता है, शराब पीता है, मुसलमान के यहाँ खाता है, मुर्गा खाता है, जनेऊ नहीं पहनता, खड़े-खड़े पेशाब करता है, अरे वह तो एक ईसाई लड़की के पीछे पड़ा है .... ।"[2]

कुमार को धन का महत्व तब समझ में आता है, जब उसका भाई रामविचार बीमार पड़ता है। रामकुमार एक सोशलिस्ट डाक्टर के पास जाता है जो उसके गाँव उसके साथ जाने से इंकार कर देता है क्योंकि वह जानता है कि जितना धन मिलना चाहिए, उतना धन वह नहीं दे सकता। डॉक्टार कुमार से कहता है:

1— जल टूटता हुआ, पृ0—72
2— उपर्युक्त, पृ0—73

"अरे भाई इतनी दूर कछार में जा पाना कैसे सम्भव होगा। न कोई सवारी का रास्ता, न कहीं कुछ पैदल चलना तो मुश्किल हो जाएगा मेरे लिए और दूसरे दो दिन का यहाँ हर्ज होगा मेरा भी और मेरे रोगियों का भी। डॉक्टर साफ टाल गया और मानो बहाने से पूछा हो कि है तुम्हारे बूते की बात मेरे दो दिन की पूरी फीस चुकाना।"[1]

धनाभाव के कारण सभी प्रकार का विघटन होता है। महानगरों में नारी का पर-पुरूष से संबंध बनाने के पीछे भी धनाभाव महत्वपूर्ण हो जाता है। निरूपमा सेवती के उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें' में इसी स्थिति का चित्रण किया गया है। उपन्यास की हर नारी-पात्र अपने प्रिय से विवाह के लिए आतुर है किन्तु धनाभाव रोड़ा बन जाता है और तब आरम्भ होता है विघटन का। उपन्यास की नायिका अनुभा पाकिस्तान से आये शरणार्थी परिवार की सदस्या है। यह परिवार एक सस्ते मकान में किराये पर रहता है जिसकी ऊपरी मंजिल पर देह व्यापार होता है। इस बदनाम मकान और धनाभाव के कारण उससे प्रेम करने वाला रमनेश उससे विवाह करने से इंकार कर देता है। रमनेश की माँ और स्वयं रमनेश उससे कहता है:

"और रमनेश की माँ कहती रही - 'जाओ-जाओ अनुभा -एक मेरा लड़का ही मिला है डोरे डालने को?"

"और रमनेश कहता रहा ..... अकड़ किस बात की है। रहती ही इतनी बदनाम बिल्डिंग में हो।"[2]

वह रमनेश की माँ के सामने गिड़गिड़ायी किन्तु उसका गिड़गिड़ाना व्यर्थ गया, तब उसने निश्चय किया कि भविष्य में वह गिड़गिड़ायेगी नहीं:

"वह घुमड़ते हुए दिल से यकायक यह भी सोच गयी कि अभाव हीन-दीन क्यों बना देते हैं। क्या किसी तरह व्यक्तित्व को बचाया नहीं जा सकता कि अभावों का हौआ न दबाए। .... उसने रमनेश की माँ से दया की भीख क्यों मांगी ... 'नहीं, खराब लड़की नहीं।

1– जल टूटता हुआ, पृ0–75–76

2– पतझड़ की आवाजें पृ0– 14

मुझे समझिए .... वह इतना गिर गयी। उसे आश्चर्य होता है। पर उससे ज्यादा एक डर बैठता है कि फिर कभी व्यक्तित्व को ही वही हौवा धर दबोचेगा - और शायद फिर वह इसी तरह गिड़गिड़ायेगी ..... पर ऐसा नहीं होना चाहिए, नही होगा।''[1]

उसके पिता मकान बदलने के लिए तैयार नहीं। यहाँ भी कारण धनाभाव ही है। धन नहीं तो नया मकान नहीं, नया मकान नहीं तो विवाह नहीं, रूपया नहीं तो विवाह नहीं।

''और कुछ बड़ा घर इतने किराये में कहाँ मिलेगा। अब तक किराये चौगुने हो गए हैं। कौन भर पाएगा इतना रूपया।...... रूपया .... लाल साड़ी और आग।.... और साड़ी के जले हुए टुकड़े ही नहीं किन्हीं जले हुए रूपयों से उठती गंध भी साँस-साँस दबोचती है। वे रूपयें जो हम जैसे लोगों के लिए हमेशा के लिए जल चुके हैं। राख में सिर पटकते हम खुद को धीरे-धीरे स्वाहा करते रहेंगे। यह कैसा अभिशाप है।''[2]

अनुभा ने छोटी-सी आयु-सत्रह वर्ष की आयु मे ही नौकरी आरम्भ कर दी थी उसी समय से उसने देखा कि नारी का मान नौकरी में नही है क्योंकि वहाँ भी तरक्की के लिए अपने आपको बेचना पड़ता है:

''इतनी छोटी उम्र से ही नौकरी करने लगी थी। सच बात तो यह है कि गुस्से से मेरी बुद्धि और आत्मा तक जलने लगती है ...... लालच और बेचना। माँग और खरीद कहां है इन सबके बीच योग्यता की कीमत। नारी का मान, इंसान का मान .....''[3]

यही कारण है कि जब सी0 के0 उसके सामने प्राइवेट सेक्रेट्री का प्रस्ताव रखता है जिसे अधिक वेतन भी मिलेगा और एडवांस भी दिलवा देगा, तो कोई पेमेन्ट फैसिलिटी वाला फ्लैट खरीदा जा सकता है या ज्यादा किराये का मकान लिया जा सकता है तो उसके चेतन और अचेतन मन में द्वंद्व होता है।सी0के0 छुट्टी वाले दिन पिकनिक मनाने का कार्यक्रम बनाता है और चलते समय एक पत्र देता है टाइप किया हुआ पत्र जिस पर किसी

1— पतझड़ की आवाजें, पृ0—16
2— वही, पृ0—34
3— वही, पृ0—63

के हस्ताक्षर नहीं है। पत्र में लिखा है 'इफ यू डोंट फील सेफ आई विल ब्रिंग एफ0एल0। डोंट वरी फॉर इट।' वह सोचती है:

" ..... ओह भगवान। यह नहीं सहा जाता। "..... घटिया होने की प्रक्रिया को अगर महसूस कर लिया तो - तब यातना भयंकर है .... नींद में चीख रही है या चीखों को नींद आ रही है। कुछ पता नहीं। पर यह ख्याल भी जरूर है कि इतनी बड़ी जॉब चरम तनाव से भरी इस घर की घुटन से मुक्ति दिला सकती है। तो क्या फिर वही। एक यन्त्रणा मिटाने को दूसरी यन्त्रणा का चुनाव।"[1]

अनुभा के समक्ष यह घृणित प्रस्ताव इसलिये तो आया कि उसके पास धनाभाव था। वह बिक नहीं सकी। नियत समय पर सी0के0 के पास नहीं पहुँची, परिणामतः उसकी तरक्की नहीं हुई। उस समय उसे सुरक्षा की आवश्यकता पड़ी तथा रात्रि को ऊपरी मंजिल की धमाचौकड़ी उसके यौवन को उकसाती थी, ऐसी स्थिति में उसने विवाहित पुरूष धीरेन के साथ शारीरिक सम्बंध बना लिये:

"मैंने भी इस तरह जीने की कोशिश की। दिन भर के काम और फिर गला जकड़ देने वाले घर के माहौल से छुटकारा मुझे तुममें मिला, धीरने-सिर्फ तुममें।...... वे भयानक रातें मानो आज भी दिल पर खुदी हैं। बीमारी से त्रसित घर..... असुरक्षा के प्रेतों से भरा घर ..... और अकेलेपन की रिक्तताओं से छिलते दिल का घर। और सबसे बड़ी खूंखार मांग थी शरीर में कैद भरमराते यौवन की। शरीर की यह माँग अकेली रातों में रौंद-रौंद कर जाती थी। ..... ये सारी तकलीफें एक साथ सहना बड़ी नारकीय यातना है। बर्दाश्त की हद से परे। और बर्दाश्त कर लो तो मिल जाए पत्थर बन जाने की सजा वाली दूसरी नारकीय यातना।"[2]

धनाभाव की स्थिति ही सुनीला की समस्या बनती है। सुनीला एक आर्टिस्ट विजय से प्रेम करती है। विजय गरीबी में पला था। वह सोचता था कि सुनीला के भाई के पास बहुत धन है, इसलिए उसका भाई बहुत धन दे सकेगा। वह सुनीला के साथ शारीरिक संबंध

1— पतझड़ की आवाजें पृ0 —128
2— तदैव, पृष्ठ—135

स्थापित करने में सफल होता है और जब सुनीला को सन्देह होता है कि वह गर्भवती हो गयी है तो वह स्पष्ट शब्दों में कह देता है कि उसे पहले अपनी बहनों के लिये दहेज जुटाना है। सुनीला का भाई उसके दहेज के लिए बहुत धन नहीं दे सकता था। वह अपनी डायरी में लिखती है:

"मेरे भीतर का कण-कण टूट-टूटकर बदल गया जब बाद में पता चला कि तुम भी कितने विवश थे। ऐश्वर्य पाने का रोग तुम्हारी नस-नस में समा चुका था। अब समझ में आया कि यही वजह थी जो तुम अमीर लग रही लड़की को ज्यादा शारीरिक प्रेम करके किसी भी तरह उसे अपने पास टिकाए रखने को अपनी विवशता मानते थे।"[1]

सुनीला अपनी विवशता जानती है कि वह विजय के ऐश्वर्य पाने की भूख को मिटा पाने में असमर्थ है। वह पुनः अपनी डायरी में लिखती है कि:

"ओह, विजय। मैं उस ढंग से तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकती। यह महसूस कर पहली बार मुझे अपनी तंगहाली पर कितना-कितना अफसोस हुआ-पत्थर से सिर फोड़ने जैसा। सच, वैसे तो मैं इतनी आगे बढ़ चुकी हूँ तुम्हारे साथ कि तुम्हारे स्वार्थ को भी एकदम नजर-अंदाज करने को तैयार हूँ। हम साथ तो रह सकेंगे। बस, यही बात महत्वपूर्ण है।बाकी बातें जाने दो। पर ....माई डीयर ....मैं भी तुम्हारी तरह विवश हूँ। जिन्दगी की आसानियाँ पाने की प्यास, ऐश्वर्य पाने की प्यास सबसे ज्यादा खूंखार है- सबसे ज्यादा। ...मैं जान भी दे दूँ तब भी तुम्हारी यह प्यास नहीं बुझा पाऊँगी ....।"[2]

विजय भी धनाभाव से पीड़ित है किन्तु उसने धनी महिलाओं के द्वारा धन प्राप्त करने का मार्ग चुनकर विघटन ही उत्पन्न किया है। वह श्रीमती चावला की खुशामद इसलिए करता है कि वह उसकी पेंटिंग्स को बड़े-बडे व्यक्तियों के यहाँ अथवा बड़ी-बड़ी कम्पनियों में बिकवाती रहे। वह उसकी पेंटिंग्स की नुमाइश भी लगवाती है। अनुभा, सुनीला की डायरी पढ़कर सोचती है:

"श्रीमती चावला एक मक्कार महिला थी। मैं अमन के यहाँ मिल चुकी थी उससे। यह

1— पतझड़ की आवाजें पृ0—106
2— उपरोक्त, पृ0—107

भी देख चुकी थी कि वह विजय पर कितना मालिकाना ढंग का अधिकार जताती थी। और अब इसका कारण भी समझ में आ गया था।''[1]

उषा अपने शरीर के बदले तरक्की पाती है और फिर ऊँची नौकरी तक पहुँच जाती है तो विजय उससे विवाह कर लेता है। उषा को भी धनाभाव के कारण सुखाड़िया से यह सुनना पड़ा था कि 'शादी तो हम अपने रैंक की लड़की से ही करेंगे।''[2] यही कारण हैं कि उषा ने अपना दृष्टिकोण बदल लिया। 'यदि माल या पोजीशन मिलती है तो किसी मर्द के साथ सो जाओ।' यही दृष्टिकोण उसे तरक्की दिलाता है।

गाँवों में खेतिहर मजदूर चमार होते हैं और वे धनाभाव की स्थिति में ही रहते हैं। चौधरी उनकी स्त्रियों के साथ छेड़छाड़ करते हैं और बलात्कार भी करते हैं। किन्तु धनाभाव के कारण न तो वे स्त्रियाँ ही अपना सम्मान बचा पाती हैं और न उनका समाज ही कुछ कर पाता है। जगदीश चन्द्र के उपन्यास 'धरती धन न अपना' में इस स्थिति का चित्रण किया गया है। लच्छो युवती है और चमारिन है। वह चौधरी हरनाम सिंह के यहाँ काम करती है। हरनाम सिंह का भतीजा उसके साथ छेड़छाड़ करता है। मंगू चमार उसे बताता है कि यह तो पालतू कबूतरी है, दाना देखते ही बैठ जायेगी। हरदेव लच्छो को आवाज देकर बुलाता है और कहता है:

''यह ले तबेले की कोठड़ी की चाबी। वहाँ गेहूँ के सिट्टे (बालियाँ) पड़े हैं। उन्हें ले आओ। कोठड़ी का दरवाजा खुला रहने देना ताकि उसमें ताजी हवा फिर जाए।''[3]

लच्छो चाबी लेकर कोठरी का ताला खोलती है। वह गेहूँ के सिट्टे लेने के लिए हाथ बढाती है, उसी समय चौधरी हरदेव के हाथ उसके सीने पर रेंगने लगते हैं। वह अपने आपको छुड़ाने के लिए हाथ-पैर मारती है, चौधरी से शिकायत करने को कहती है किन्तु हरदेव पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता:

''कपास की छड़ियाँ कुछ देर तक उनके बोझ तले कड़कड़ाती रहीं। फिर थोड़ी देर

1— पतझड़ की आवाजें, पृ0—109

2— उपरोक्त, पृ0—96

3— धरती धन न अपना, पृ0—97

के बाद हरदेव कोठड़ी से निकलकर हवेली से बाहर चला गया। लच्छो वहाँ भूसे पर बैठी रही। लेकिन जब उसने बाहर आहट सुनी तो वह जल्दी से उठी। और अपनी झोली सिट्टों से भरने लगी। झोली भर उसने दरवाजे के दोनों पट खोल दिये। वह अपना टोकरा उठा बगल वाले दरवाजे से चौधरी के रिहायशी मकान में चली गयी। उसने टोकरा एक ओर रख दिया और मन को मारती हुई बोली, चौधरानी जी', रोटी दे दो।''[1]

चौधरानी रोटी तो देती है किन्तु झोली में से सिट्टे निकलवा लेती है। लच्छो सिट्टे लेने के लोभ में सब कुछ गँवा बैठती है। आज जाकर उसे पता चलता है कि उसका भाई देगचा बेचकर आटा और गुड़ ले आया है और माँ उधार आटा माँग लायी है पर वह तो कुछ नहीं ला सकी-

''यह सुन लच्छो चौंक गयी और आटा गूँथती हुई सोचने लगी कि माँ घर से आटा उधार माँगने गयी तो आटा ले आयी। अमरू देगचा बेचकर आटा और गुड़ दोनों ले आया। लेकिन वह अपना सब कुछ लुटाकर भी खाली हाथ वापस आ गयी।''[2]

धनाभाव की स्थिति के कारण चरित्रगत विघटन होता है तो स्थिति ऐसी हो जाती है कि कोई उसकी बहन के बारे में भी कुछ कहे तो वह चुप रहता है। बलवन्ते मंगू के सामने ही दिलसुख से मंगू की बहन के बारे में कहता है:

''दिलसुख, जो लड़की चाचे मुंशी की हवेली में काम करती है वह एकदम पट्ठी है। बिलकुल जंगली मोरनी जैसी। रंग तो पक्का है लेकिन नैन-नक्श बहुत अच्छे हैं। जब वह सिर पर टोकरा उठाकर चलती है तो उसकी कच्चे खरबूजे-जैसी छातियाँ कटोरे में पड़े पानी की तरह हलकोरे खाती हैं। एक बार हाथ फिर जाये तो उसकी जवानी सरसों के फूल की तरह खिल उठेगी।''[3]

मंगू यह तो बताता है कि उसकी बहन लगती है किन्तु कुछ कहता नहीं जबकि काली के मन में उफान आता है:

1— धरती धन न अपना, पृ0—97—98
2— उपरोक्त, पृ0—103
3— उपरोक्त, पृ0—135

"उनकी बातें सुन काली के दिमाग में उफान-सा उठने लगा था। उसका जी चाहा कि बलवन्ते और दिलसुख को मार-मारकर उनका बूथा तोड़ दे। वे चौधरी हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि दूसरों की बहू-बेटियों के बारें में इतनी बेशर्मी से बातें करें। उसे मंगू पर बहुत गुस्सा आ रहा था कि अपनी सगी बहन के बारे में ऐसी बुरी बातें सुनकर भी ही-ही हँस रहा है।"[1]

काली कुंवारी लड़कियों के बारे में ऐसी बातें करने के लिए उन्हें शर्मिन्दा करना चाहता है तो दिलसुख उससे कह देता है:

"तुम्हें शर्म आती है तो तू चला जा। जिसकी बहन है वह तो चुप है लेकिन तेरे पेट में खाहमुखाह मरोड़ उठ रहे हैं। क्यों मंगू?"[2]

बग्गे चमार ने चौधरी पालो को उसी के खेत में मारा। पंचायत बैठती है। बाबे फत्तू अपनी बात कहता है:

"पहले गांव में चाहे चमार हो या चौधरी, सबकी इज्जत साँझी होती थी। लड़ाई झगड़ा तो दूर, कोई चमार चौधरियों के सामने आँख उठाकर भी नहीं देखता था। जब आप लोगों ने हमारी इज्जत को अपनी इज्जत समझना छोड़ दिया। जब जाट और चमार का खून मिलने लगा तो यह गड़बड़ होने लगी। अगर आज आपके ही खून ने आपके बच्चे को मारा है तो आपको दुःख क्यों हुआ?"

"बाबे फत्तू ने बग्गे की ओर संकेत करते हुए कहा, "इसे देखकर कोई कह सकता है कि चमार की औलाद है।"[3]

चौधरी ये सुनकर खिसक जाते हैं क्योंकि सच्चाई स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

गाँवों में यदि पाँच-दस रूपये मिलने की आशा दिखाई दे तो गलत बात पर भी झगड़ने को तैयार हो जाते हैं। काली अपना कच्चा मकान तोड़कर पक्का बनाने के लिए

1– धरती धन न अपना, पृ0–136
2– उपरोक्त, पृ0–136
3– उपरोक्त, पृ0–172

नींव खोदता है। मंगू के चढ़ाने पर निक्कू काली से कहता है कि उसने उसकी जमीन दबा ली है। कालू विनम्रतापूर्वक बात करता रहता है और अन्त में यह कह देता है:

''चाचा अपनी जिद छोड़ दो। मैं सब काम तुम्हारी मर्जी के मुताबिक ही करूँगा। जहाँ कहोगे वहीं बुनियाद खोदूँगा और अगर कहोगे तो मकान बनाना ही बन्द कर दूँगा। लोगों को बहुत तमाशा दिखा चुके हो अब उठो यहाँ से।''[1]

दोनों के बीच फैसला हो जाता है किन्तु जब मंगू आकर उससे फिर कहता है:

''उसने तुम्हारे साथ धोखा किया है। तूने बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया। तुम्हारी जगह मैं पाँच-दस रुपये हथिया लेता।''[2]

निक्कू की पत्नी प्रीतो रुपये की बात सुनकर चौंक जाती है। उसे पता है कि काली शहर से बहुत धन कमा कर लाया है। वह अपने पति को डांटने लग जाती है। पति-पत्नी में कहन-सुनन होने लगती है। मंगू दोनों को चुप कराते हुए कहता है:

''टोकरी से गिरे हुए बेरों की तरह अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। अभी आधी खुदी है। लोग तो इमारत बन जाने पर भी झगड़ा खड़ा कर देते हैं .... दोपहर के बाद जब काली काम शुरू करने के लिए आये तो तुम पहले ही उस जगह पर खाट बिछाकर बैठ जाना। बाद में मैं अपने आप सँभाल लूँगा।''[3]

मंगू उसे समझाता ही नहीं है अपितु रात को दारू पिलाने का लोभ भी देता हैं। दारू की बात सुनकर निक्कू बड़े विश्वास के साथ कहता है:

''अगर शाम तक खुदी हुई बुनियाद भी मिट्टी से न भर दी तो मेरे मुँह पर थूंक देना।''[4]

रुपये और शराब के लोभ में निक्कू काली को नींव खोदने से रोकता है। प्रीतो

1— धरती धन न अपना, पृ0—77
2— उपर्युक्त, पृ0—79
3— उपर्युक्त, पृ0—79
4— धरती धन न अपना, पृष्ठ—80

काली का स्यापा करने लगती है। निक्कू मरने-मारने पर उतारू हो जाता है। मंगू आकर काली के पक्ष में बोल रहे जीतू को डाँटता है। काली खाट को एक ओर खिसकाकर खोदने के लिए तैयार होता है तो मंगू निक्कू को काली की ओर धकेल देता है। मंगू के दूसरे धक्के में निक्कू पक्की ईटों पर गिरता है। उसका माथा फूट जाता है। मंगू यह धमकी देकर जाता है कि वह काली को हथकड़ी लगवायेगा। काली, निक्कू की सेवा करने लगता है। चौधरी इकट्ठे होने लगते हैं। घुड्डम चौधरी के आने पर अन्य चौधरी चले जाते हैं और वह पटवारी के द्वारा फैसला कराने की बात करता है। पटवारी की वह दो रूपये फीस बताता है। काली स्वीकार कर लेता है।

"सब लोगों को पता था कि पटवारी इस काम का एक रुपया लेता है। लेकिन घुड्डम चौधरी ने दो रूपया कहकर अपना हिस्सा भी पक्का कर लिया था।"[1]

पटवारी नाप कर बताता है कि काली की जमीन निक्कू की ओर आधा हाथ निकलती है। निक्कू को धन तो मिलता नहीं अपितु उसका माथा और फूट जाता है।

जब तक धन अथवा पद के आगमन की सूचना भी नहीं होती, तब तक धनाभाव खलता नहीं है। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' के सनीचर की यही स्थिति है। उसके पास एक अण्डरवियर और एक बनियाइन है। वह बनियान कम ही पहनता है। उपन्यासकार ने उसका आरम्भिक परिचय इस प्रकार दिया है :

"एक दुबला-पतला आदमी गन्दी बनियाइन और धारीदार अण्डरवियर पहने बैठा था। नवम्बर का महीना था और शाम को काफी ठण्डक हो चली थी, पर वह बनियाइन में काफी खुश नजर आ रहा था। उसका नाम मंगल था, पर लोग उसे सनीचर कहते थे। उसके बाल पकने लगे थे और आगे के दाँत गिर गए थे। उसका पेशा वैद्यजी की बैठक पर बैठे रहना था। वह ज्यादातर अण्डरवियर ही पहनता था। उसे आज बनियाइन पहने हुए देखकर रूप्पन बाबू समझ गये कि सनीचर 'फार्मल' होना चाहता है।"[2]

सनीचर के चेहरे पर तृप्ति और सन्तोष रहता था वैद्यजी आगामी गाँव-सभा के

1– धरती धन न अपना, पृष्ठ – 87
2– राग दरबारी, पृ0–38

प्रधान के चुनाव में सनीचर को प्रत्याशी बनाकर ग्राम-सभा पर अधिकार करने का निश्चय करते हैं। वे इन्टरमीडिएट के प्रिन्सिपल और अपने बड़े पुत्र बद्री पहलवान से परार्मश करके सनीचर को पुकारते हैं। सनीचर अन्डरवियर पहने वैद्यजी आदि के लिए भंग घोंट रहा था। सनीचर वैद्यजी की बैठक में प्रवेश करता है तो उसे सर्वप्रथम प्रिन्सिपल महोदय अपने पास बैठने का सम्मान देते हैं फिर उसे समझाया जाता कि गाँव प्रधान एक बड़ा पद होता है और तब वैद्यजी उसका वास्तविक नाम-मंगलदास लेकर कहते हैं कि इस बार वे उसे गाँव-प्रधान बनायेंगे। सनीचर यह बात सुनकर भौंचक्का-सा रह जाता है:

''सनीचर का चेहरा टेढ़ा-मेढ़ा होने लगा। उसने हाथ जोड़ दिये। पुलक गात लोचन सलिल। किसी गुप्त रोग से पीड़ित उपेक्षित कार्यकर्ता के पास किसी मेडिकल एशोसिएशन का चेयरमैन बनने का परवाना आ जाये तो उसकी क्या हालत होगी? वही सनीचर ही हुई।''[1]

सनीचर ने सबसे पहला प्रश्न उपस्थित किया। ''पर बद्री भैया, इतने बड़े-बड़े हाकिम प्रधान के दरवाजे पर आते हैं। अपना तो कोई दरवाजा ही नहीं है; देख तो रहे हो वह टुटहा छप्पर।''[2]

गाँव-प्रधान के पद की आशा उत्पन्न होते ही सनीचर के मन में तिकड़म के भाव उत्पन्न होने लगते हैं। वह कालिकाप्रसाद के साथ तीन दिन नगर में घूमकर गाँव की बंजर भूमि को सहकारी कृषि-योजना के रूप मे प्रस्तुत करने में सफल रहता है। गाँव-प्रधान बन जाने के पश्चात् एक परचून की दुकान खोलता है जिसमें भंग और गाँजा भी बेचता है। जब तक गाँव-प्रधान नहीं बना था, मेले-ठेले में छोटे पहलवान से अनुमति मिलने पर दुकान से बर्फी खा लेता था और पैसे नहीं देता था। पुलिस के आ जाने पर वह कहता था:

''जितनी बात सच्ची है वही बोला लाला चिरंजीमल। तुम कहते हो कि हमने अठन्नी की बर्फी खाई, तो हम कहते हैं कि हमने खाई। तुम कहते हो कि हमने अठन्नी नहीं दी, तो हम कहते हैं कि हमने दी।''[3]

1— रागदरबारी, पृ0—136
2— तदैव, पृ0—137
3— तदैव, पृ0—161

छोटे पहलवान के कारण यह झगड़ा कमजोर पड़ जाता है क्योंकि छोटे पहलवान ने भी आठ आने का माल खाया था और उन्होंने बीच में कहा कि इस झगड़े में उनके दिये हुए रूपये को भूल न जाना। दुकानदार बताता है:

''असल झगड़ा अठन्नी का नहीं, उधर पहलवान की ओर से है। ये गंजहे जब अठन्नी के लिए भाँय-भाँय कर रहे थे तो उधर से पहलवान बोले कि भाई इस झगड़े में हमारा दिया हुआ रूपया न भूल जाना। अब देने को तो इन्होंने तो एक छदाम नहीं दिया और कह रहे हैं कि हमारा रूपिया न भूल जाना। क्या जमाना आ गया है।''[1]

इसी प्रकार एक पात्र है- पं0 राधेलाल। राधेलाल झूठी गवाही के लिए कुख्यात थे। यही उनकी आय का साधन था। उपन्यासकार उनका परिचय देते हुए कहता है कि:

''वैसे, 'कभी न उखड़ने वाले गवाह' की ख्याति ही पं0 राधे लाल की जीविका का साधन थी। वे निरक्षरता और साक्षरता की सीमा पर रहते थे और जरूरत पड़ने पर अदालतों में 'दस्तखत' कर लेता हूँ', 'मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। इनमें से कोई भी बयान दे सकते थे। पर दीवानी और फौजदारी कानूनों का उन्हें इतना ज्ञान सहज रूप में मिल गया था कि वे किसी भी मुकदमे में गवाह की हैसियत से बयान दे सकते थे और जिरह में अब तक उन्हें कोई भी वकील उखाड़ नहीं पाया था। जिस तरह कोई भी जज अपने सामने के किसी भी मुकदमे में फैसला दे सकता है कोई भी वकील किसी भी मुकदमे की वकालत कर सकता है, वैसे ही पं0 राधेलाल किसी भी मामले के चश्मदीद गवाह बन सकते थे।''[2]

धनाभाव में विघटन का एक दूसरा रूप भी होता है जो अधिक महत्वपूर्ण है। किसी निरपराध को पकड़ कर उसे सजा दिलवा दी जाती है तो वह व्यक्ति न्याय के लिए अस्त्र उठाकर जंगलों में चला जाता है। हिमांशु जोशी के उपन्यास 'सु-राज' तथा 'अँधेरा-और' में इसी प्रकार की परिस्थितियों से जन्मते विघटन का चित्रण किया गया है। 'सु-राज' का नायक गांगि' का 'गांधी से बड़ा गांधीवादी था'[3] कुमाऊँ क्षेत्र के गरीबों को न्याय दिलाने

1— राग दरबारी, पृ0 —161
2— तदैव, पृ0—92—93
3— सु—राज, पृ0—9

के लिए वह निरंतर संघर्षरत रहा किन्तु उसी के गोद लिये एक पुत्र देवा पर निरापराध होते हुए भी हत्या और चोरी का अभियोग लगाया गया। हत्या के अपराध से तो वह छूट गया किन्तु चोरी -डकैती के अभियोग में उसे सवा तीन साल के कठोर कारावास की सजा दी गयी। गांगि काका की हत्या कर दी गयी। निरापराध होते हुए भी सजा काटकर देवा जब कारागार से मुक्त हुआ तो वह बदला हुआ व्यक्ति था। उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, चेहरा कठोर था तथा आँखें धधकती हुई थीं। उपन्यासकार कहता है:

''इन सवा तीन सालों की घोर यंत्रणाओं ने उसे बहुत कुछ सिखला दिया था। अन्याय का प्रतिकार न करना, अन्याय को बढ़ावा देना है- जेल में चक्की चलाते, रामबाँस कूटते-कूटते इस रहस्य को भी वह आत्मसात् कर चुका था।''[1]

देवा को बताया जाता है कि गांगि' का की हत्या कर दी गयी। हत्यारे खुलेआम घूम रहे हैं। सभी जानते हैं कि हत्यारा कौन है किन्तु भय के कारण कोई नाम लेने को तैयार नहीं है। 'डर' का नाम सुनकर देवा अट्टहास करता है:

''किसका डर?' देवा अट्टहास कर हँस पड़ा, इतने जुलम सहने के बाद भी डरते हो? इससे अधिक और क्या हो सकता है तुम्हारे खिलाफ?''[2]

वह उन सभी से जो काका की हत्या के कारण दुखी हैं, सन्त्रस्त और भयभीत हैं, हत्यारों का नाम पूँछता है। अन्त में बड़े संयत स्वर में कहता है:

''काका जोगी थे- परमहंस। इस धरती के परानी नहीं। पर हमारी धमनियों का रक्त खोले का पानी नहीं। जो हमें जीने नहीं देंगे, हम उनका जीना भी कठिन कर देंगे।.. ....काका की हत्या क्यों हुई? क्या दोष था उनका? बिना अपराध के मैं जेल में नारकीय यातना क्यों सहता रहा? आप लोगों पर आए दिन ऐसे-ऐसे जुलम क्यों होते हैं? कमलु का के बच्चे घुट-घुटकर, तड़प-तड़पकर क्यों मरे? इन पर विचार करना होगा.............. ...। तुम्हें जो भी सहायता चाहिये मैं दूँगा.....। तुम मुझे सहारा दो, मैं तुम्हें मुक्ति दूँगा....।

1– सु–राज, पृष्ठ–54
2– उपरिवत्, पृष्ठ–54

अपने परानों की आहुति भी देनी होगी तो खुशी-खुशी से दे दूँगा....।''[1]

देवा ने परिवार के प्रति अपना मोह त्याग दिया और सिर पर कफन रखकर निकल पड़ा :

''घर लौटने पर देवा ने न बच्चों से कोई बात की, न पत्नी से ही कुछ बोला, नन्दू को घर का भार सौंपकर, रात के अँधियारे में, सिर पर कफन बाँधकर ''चुपचाप निकल पड़ा - किसी सुबह की तलाश में।''[2]

विघटन का चरमरूप है अपराधी बन जाना। देवा न्याय पाने के लिए, अन्याय का विरोध करने के लिए कानून की भाषा में अपराधी भले ही बन जाये किन्तु जिसे न्याय न मिल पाये, पूरे समुदाय को न्याय न मिल पाये तो अन्य कोई मार्ग बचता भी नहीं है। हिमांशु जोशी के ही दूसरे लघु उपन्यास 'अँधेरा और' की भी यही स्थिति है। प्रस्तुत उपन्यास में तराई के थारू आदिवासी अंचल की कथा है। इस अंचल में पहले से ही अत्याचार होता रहा है। खरीमा मंडी का मुंछन्दर सिपाही हर सप्ताह आकर पंचमी काका के दूसरे ब्याह की नई-नवेली बहू सिन्दूरी से बलात्कार करता रहता था। वह हर सप्ताह आता था। काका मछली पकड़ने चले जाते थे और जाल में जितनी मछली आती थीं, उन सबको भी वह खा जाता था:

''जब रात हो आती तो पंचमी काका के कंधे पर कुटे हुए साफ चावल, साबुत उरद की दाल के थैले के साथ-साथ कुमड़ा या कद्दू भी लदवाकर अपने साथ डेरे तक ले जाता। बदले में सतजुगी काका को क्या मिलता? कभी लात, कभी गन्दी-सी गारी। पूरे सात साल तक वह इस थाने में रहा, और उसका यही सिलसिला चलता रहा। लोग कहते हैं कि पंचमी काका के तीनों उसी छोरे मुछन्दर पर गए थे।''[3]

अब अत्याचार और बढ़ गया था। सोहन सिंह का ट्रक बनबसा आते-जाते रात-बिरात भदरपुर में रूकने लगा था। घरमू प्रधान का बेटा झन्नू चाल-चलन का ठीक व्यक्ति नहीं

1— सु–राज, पृ0–55
2— उपरिवत्, पृ0–55
3— उपरिवत्, पृ0–65

था। सर्वप्रथम शंखी लापता हुई थी। उसे वह मेला दिखाने का लोभ देकर ले गया था। उसके ऊपर अनेक प्रकार के अत्याचार किये गये किन्तु किसी प्रकार वह वापस लौट आयी।

भीखू थारू की पुत्री पिरथी अपने गाय-डंगरों को लेने के लिए संध्या समय जंगल गयी तो लौटी ही नहीं। उसे लापता हुए सात दिन हो गये। पुलिस में रिपोर्ट लिखायी गयी। भीखू और उसके साथियों ने सारा जंगल छान मारा। नहीं मिली। वह नदी में डूबती तो क्यों? उसका विवाह निश्चित कर दिया गया था। चकरपुर मण्डी से उसके विवाह के लिए कपड़े भी खरीद लिये गये थे। गाँव में किसी से शत्रुता भी नहीं थी। थानेदार हरप्रसाद ने जाँच करते समय भीखू पर ही आरोप लगा दिया :

"थानेदार हरप्रसाद तहकीकात पर गाँव आया था। पिरथी के लापता होने के लिये सारे गाँव को जिम्मेदार ठहरा रहा था। उसका कहना था कि भीखू थारू ने अपनी जवान बेटी किसी परदेसी के हाथ बेच दी होगी। गाँव-वालों की मिली-भगत से। नहीं तो लड़की एकाएक कहाँ गायब हो गई। डूबी नहीं, कोई भगाकर ले नहीं गया, किसी जानवर ने चीरा नहीं, फिर?"[1]

थानेदार से पीछा तभी छूटता है, जब उसे रिश्वत के रूपये दे दिये जाते हैं। दूसरे दिन बूढ़े सेमल के पीछे पिरथी की लाश मिल जाती है। चकरपुर से आने वाला एक मोटर-ठेला वहाँ कुछ देर के लिए रुका था। शव के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के मत प्रस्तुत किये जाने लगे। रात्रि को ही पंचयातनामा भरकर शव का अन्तिम संस्कार कर दिया गया। परसिया जब लौटकर आया तो उसे यह समाचार मिला। समाचार सुनकर वह बेचेन हो उठा था:

"परसिया को न रात नींद आती थी, न दिन को ही चैन हर समय बेचैने-सा घूमता रहता, अपने ही घर के आँगन में, चिड़ियाघर के पिंजड़े में बन्द चीते की तरह।"[2]

परसिया ने भागदौड़ कर किसी न किसी प्रकार पिरथी के हत्यारे का पता लगा

1— सु–राज, पृ0–61
2— तदैव, पृ0–66

लिया। उसके पश्चात् उसने न्याय पाने के प्रयास आरम्भ किये किन्तु या तो कोई उसकी बात ही नहीं सुनता अथवा उल्टा उसे ही डराया-धमकाया जाता:

"परन्तु जिस दिन से पिरथी के हत्यारे का पता लगा लिया, अपना आपा खो बैठा था। थाने में बड़ी उम्मीद लेकर गया था वह, परन्तु वहाँ उसे बुरी तरह घुड़क दिया था। गाँव के लोगों से पंच-सरपंच सबसे कहा उसने, पाँवों पर टोपी धरकर, पर कोई सुनने को तैयार न था। सबने डरा-धमकाकर वापस भेज दिया था।"[1]

एक रात को फिर पुलिया के पास नीम के पेड़ के नीचे सोहन सिंह का ट्रक रुका था। झन्नू के घर में कच्ची शराब पी गयी तथा भात के साथ कुकड़ी भी तली गयी:

"दावत कब तक चलती रही, किसी को पता नहीं। किन्तु सुबह पौ फटने से पहले ही सारे गाँव के लोग जाग गए थे। पुलिया के पास खड़े ट्रक से आसमान को छूती लपटें उठ रहीं थी और पास ही सोहन की लाश तीन टुकड़ों में कटी पड़ी थी- खून से लथपथ। पुलिस गाँव भर में अत्याचार कर रही थी और यह पता लगने के पश्चात् कि परसिया फरार हो गया है तो भीखू, उसकी पत्नी अमिया और छोरी चंदरिया को पकड़कर थाने ले जाया गया :

"आठ-नौ दिन हिरासत में रहने के बाद जब वे गाँव लौटे तो उनका हुलिया ही बदला हुआ था। भीखू के घुटने टूटे हुए थे, उससे चला तक नहीं जा रहा था। गाँव के लोग कन्धे पर उठाकर किसी तरह घर लाए थे। अमिया अपने को मुँह दिखलाने लायक भी नहीं समझ रही थी - लाज-शरम के मारे। चँदरिया की फूल-सी देह मुरझा आई थी। आँखों के नीचे काली-काली झाँइयाँ। देह में दरद के मारे चला तक नहीं जा रहा था।"[2]

पुलिस के अत्याचार से पीड़ित फरार परसिया ने पुलिस के एक सिपाही की हत्या कर दी। वह शव सुतरिया नदी में बहता दिखाई दिया था। परसिया पर सन्देह का कारण था:

"भदरपुर गाँव के निवासियों का कहना था कि इस दुर्घटना के दो-तीन दिन पहले, रात के अँधियारे में छिपकर परसिया घर आया था। जमनिया ने खुद अपनी आँखों से देखा

1– सु–राज, पृ0–66
2– वही, पृ0–67

था। कंचनियाँ की झुपड़िया के पिछवाड़े, पायल की ढेरी के पास बैठा भात खा रहा था। ज्यों ही आहट आई, कन्धे पर कुल्हाड़ी लिए खेतों की ओर भागा और फिर वहाँ से जंगल की दिशा में।''[1]

परसिया को एक दिन बिरजा प्रधान मिलते हैं। प्रधान जी उसे बहला-फुसलाकर अपने साथ ले जाना चाहते हैं। वे उसकी सहायता करने का वचन देते हैं और कहते हैं कि पुलिस उसके साथ न्याय करेगी किन्तु परसिया के पास यह समाचार पहुँच चुका था कि पुलिस उसे पकड़ने के लिए गाँव वालों की सहायता ले रही है, इसलिए वह प्रधान के मीठे शब्दों में नहीं आता:

''पुलस कब नाय करत है?' परसिया तुनक कर बोला, दबे आक्रोश के स्वर में, 'वह खुद हि अनाय कराय रहि। हमार गय्यन-भैंसन को जे फारम वाले रटक माँ धरि के ले जात हैं, तब पुलस का करत है? हमारि बहू-बेटिन को लोग घसीट के लेइ जात हैं, जोर-जबरन करत है, तब तोहार पुलस कहाँ जात है? चोर हर साल डाका डालत है? करछी-कटोरी सब उठाय के ले जात हैं, तब पुलस को कछु नाहिं सूझत? हमारा खेतन माँ फारमवारे कब्जा करि लेत हैं, तब पुलस किसका साथ देत है? ऐसी पुलसिया पर हमारा भरोसा नाहिं, तोहार है तो तुम जाओ ....।''[2]

बिरजा प्रधान ने अपनी शक्ति का सहारा लेना चाहा तो परसिया ने उससे स्पष्ट कह दिया कि अपनी खैर चाहते हो तो चुपचाप चले जाओ। परसिया के हाथ में कुल्हाड़ी को देखकर और उसके तेवरों से भयभीत होकर बूढ़े बिरजा का फिर साहस नहीं हुआ। परसिया ने चलते-चलते रूककर बिरजा से कहा:

''फारमवारे बिरजबासी से कहि देना, झन्नू से भी तोहार भी दुई टुकड़े नाहिं किए तो हमारा नाम परसुवा नाहिं। फारम जलाय के हि हम फाँसी पर झूलेंगे। अन्नाई दैत कहीं के।''[3]

1— सु—राज, पृ0—69
2— वही, पृ0—73
3— वही, पृ0—73

परसिया ने बिरजबासी से भी बदला ले लिया किन्तु पुलिस के अत्याचारों से पीड़ित भीखू ने सभी हत्याओं का अपराध अपने सिर पर ले लिया जिससे परसिया का जीवन निष्कंटक हो जाये और फाँसी पर चढ़ गया। वर्षों के पश्चात् परसिया गाँव आता है तो कंचनियाँ उसे बताती है:

"पुलस की मार-पीट से परेशान होइ के, अऊर तोहार जिन्नगी बचाने के खातर काका ने थाने माँ बोलि दिहा कि सरदार सोहन सिंह का कतल हम करि है। पुलस का सिपाही हम मारि है।फारम वारे बिरजवासी को भी। बिरजा काका ने गवाही दे डारी और काका को फाँसी होई गई, गए चैत माँ .... ।"[1]

परसिया को पता चलता है कि सभी गाँव छोड़कर चले गये हैं। संखिया के पिता ने झोपड़ी के स्थान पर धान बो दिया है। वह देखता है कि चटाई पर एक नन्हा शिशु सोया हुआ है। वह कंचनियाँ से उस शिशु के बारे में पूछता है तो वह कोई उत्तर नहीं दे पाती और उसके पश्चात् कंचनियाँ के रोकने पर भी परसिया नहीं रूकता। अपने कन्धे पर कुल्हाड़ी रखे अँधेरे में चला जाता है।

वस्तुतः परसिया एक आपराधिक प्रवृति का व्यक्ति था किन्तु उसने जब देखा कि निर्धन और शक्तिहीन को न्याय नहीं मिल पाता तो उसने न्याय पाने के लिए यह मार्ग अपना लिया था। इससे भी अधिक हृदयस्पर्शी कथा कांछा की है जो एक अबोध बालक है किन्तु जिसने एक पत्थर की सिल से भेड़िया जैसे व्यक्ति की हत्या कर दी।

कांछा की कहानी कालि नदी पार नेपाल की पृष्ठभूमि पर आधारित है।कांछा का पिता डोटियालों के साथ कालि नदी पार की हिन्दुस्तानी-राज में मेहनत-मजदूरी करके धन कमाने गया था किन्तु वर्ष-दो वर्ष के पश्चात् और सभी वापिस लौट आये, पर उसका पिता वापिस न लौट सका। उसके पिता के लापता होने के सम्बन्ध में विभिन्न मत थे। कोई कहता था कि पुल बनाते समय वह नदी में बह गया और कुछ का कहना था कि उसने कंचनपुरा की तराई की तरफ किसी विधवा से विवाह करके नया घर बसा लिया है। कांछा की माँ अभी भी उसे जीवित ही मानती थी, इसलिए सधवा की तरह ही रहती थी।

1– सु–राज, पृ0–74

उसके बड़े पुत्र जेठा की मृत्यु के पश्चात् वह असुरक्षित असहाय-सा अनुभव करने लगी। यद्यपि जेठा भी छोटा ही था, पर कुछ हाथ बँटा देता था।

कांछा को उसके मामा ने बुला लिया था। वह छोटा-सा बालक दिन भर गाय-बछिया को चराते हुए थक जाता था और उसकी मामी सबके खा लेने के बाद जो कुछ जूठा-पीठा बचता, उसे उसके सामने रख देती। कभी उसे भरपेट भोजन नहीं मिला। लगभग सवा वर्ष बीत जाने के पश्चात् उसकी माँ उसे अपने साथ लिवा लाई। मामी ने एक बकरी की पाठी उसे दे दी।

कांछा अपनी बकरी की पाठी से बहुत स्नेह करता था। उसके साथ खेलता था, लड़ता था। एक दिन उसके दूर का एक रिश्तेदार गोरखा रेजीमेन्ट से रिटायर होने के पश्चात् उसके घर आया। उसका नाम देवी गुरंग था। उसने कांछा की माँ को समझा लिया कि उसका पति मर गया है और उसके होते हुए वह चिन्ता क्यों करती है। रात्रि में कांछा की नींद खुली तो उसने देखा-

"एक कोने पर बिछी फटी चटाई पर माँ और देवी गुरंग एक ही पंखी में लिपट कर सो रहे हैं- एक होकर ऐसे ही मामा-मामी को भी उसने देखा था- कई बार- कठबाड़े की दीवार की दरार से......।"[1]

दो-तीन महीने के पश्चात् देवी गुरंग फिर आया। उसने बकरी की पाठी को भूनने के लिए कहा। कांछा ने उस बकरी को काटने के लिए देने से इंकार कर दिया। माँ ने उसे पानी भरने के लिए भेजा। लौटकर उसने देखा बकरी काट दी गयी है। गुरंग धधकती आग में उसे भून रहा है। कांछा ने एक जलती लकड़ी उठाई और जोर से गुरंग पर दे मारी। गुरंग का हाथ झुलस गया। गुरंग ने बहुत जोर से उसे चाँटा लगाया।

"वह फुँफकारता हुआ फिर उठने लगा था कि माँ ने पास पड़ी लकड़ी से उसे तड़ातड़ पीटना शुरू कर दिया, "मरता भी तो नहीं राकस। इसी के लिए जी रही हूँ, पर यह है कि किसी और को जीने भी नहीं देता। पैदा होते ही मर चुकता तो आज यह संकट तो न होता।

1– सु–राज, पृ0–82

दो रोटिया तो कहीं से भी बटोर लेती। इतनी बड़ी दुनियां है .... ।''[1]

काँछा रात भर पशुओं की गोठ में रहा। प्रातः उसने बकरी की हड्डियों को बोया। उसने देखा माँ सज-धजकर रहने लगी है। तीसरी बार गुरुंग आता है। माँ उससे देवी चाचा के साथ चलने को कहती है। वह इन्कार कर देता है किन्तु माँ के साथ उसे देवी गुरुंग के गाँव जाना ही पड़ता है। वहाँ पहुँचने पर उसके और माँ के बीच में एक दूरी आ जाती है:

''माँ के प्रति अब कहीं उतना अपनापन नहीं रह गया था। कहीं दरार-सी पड़ गयी थी- दूरी की। उसे लगता उसकी अपनी अन्य वस्तुओं की तरह माँ भी तो छिन गई है। रात को कभी नींद उचटती तो भय-सा लगता। बिछौने पर अपने को अकेला पाता, पता नहीं माँ उठकर कहाँ चली जाती थी।''[2]

उसे गाय-बकरियों को चराने का कार्य सौंपा गया। एक दिन एक बाघ दुधारू गाय को उठा ले गया। रात को उसकी बेरहमी से पिटाई की गयी और भूखा ही पशुओं के साथ गोठ में बन्द कर दिया गया। रात को माँ चोरी से आई। दो सूखी रोटियाँ उसकी ओर बढाईं। माँ ने उसकी मनःस्थिति समझी और कहा कि:

''तो चल, अपने गाँव लौट चलें? दो-चार खेत हैं, रूखे, सिर छिपाने के लिए छानी। जैसे अब तक गुजारा चलता था, आगे भी चलेगा।''[3]

लेकिन एक दिन कांछा की माँ घास छीलते समय फिसलकर घाटी में गिर गयी। दूसरे दिन उसके क्षत -विक्षिप्त शरीर को निकालकर उसका अन्तिम संस्कार कर दिया गया। कांछा रात भर किसी वीरान घर के दालान पर घुटनों में सिर छुपाए ठण्ड से ठिठुरता रहा और प्रातः काल होते ही वह मामा के घर की ओर चल दिया। मामी ने उसका विरोध किया किन्तु मामा ने रख लिया। एकदिन कुछ राहगीरों के साथ नौकरी खोजने वह निकल पड़ा। खटीया में एक हलवाई उसे दुकान में पानी भरने और बर्तन साफ करने के काम पर रख लेता है। लाला जिस रात को दुकान में रूकता तो उसके मन में वितृष्णा

1— सु—राज, पृ0—84
2— उपर्युक्त, पृ0—93
3— उपर्युक्त, पृ0—95

का भाव पैदा होता। एक रात्रि को पानी बरसने के कारण छत टपकती रही और देर रात तक उसे नींद नहीं आयी। प्रातः वह समय पर सोकर उठ नहीं पाया। गीली लकड़ियों के कारण अँगीठी सुलग नहीं पाई तो लाला ने उसकी पिटाई करके उसे नौकरी से निकाल दिया।

भूखा-प्यासा काँछा स्टेशन के प्लेटफार्म पर समय बिताता है। उसे वहाँ एक सैनिक मिलता है और उसे नौकर बनाकर अपने गाँव ले आता है। सैनिक की पत्नी को वह काकी कहने लगा। काकी उसे अपने बच्चे की तरह ही प्यार करने लगी क्योंकि उसका कोई बच्चा नहीं था। सैनिक वापस नौकरी पर चला गया। काकी मैके गयी तो काँछा भी उसके साथ चला गया। काँछा वहाँ से बकरी की एक पाठी माँग लाया।

एक वर्ष तक भवानी सिंह नहीं लौट सका। काकी को हयात सिंह का एक पत्र मिला। जिसमें उसने लिखा था कि एक सिपाही से झगड़ा हो जाने पर भवानी सिंह ने उसे गोली मार दी। अब उसे फाँसी लगेगी अथवा उम्र कैद होगी। फौज से जो पैसे आते थे, उससे घर-खर्च चलता था। अब पैसे आने बन्द हो गये थे। आर्थिक स्थिति दयनीय हो गयी थी:

''जाड़ों के बाद फिर जाड़ों का मौसम शुरू हो रहा था। काकी की ग्यॉलि गय्या बिक गयी थी। एक दिन कोई बछिया भी हाँककर ले गया था। नाम-मात्र के गहने-पत्ते पहले ही गिरवी रखे जा चुके थे। काकी की सूनी कलाईयों में पीतल की दो चूड़ियों के अलावा अब कुछ भी शेष न था। मैके से भाई आया था-बुलाने के लिए जाड़ों के कुछ दिन वहीं कट जाएँगे, पर उसने मना कर दिया था।''[1]

काकी के पास एक लम्बा-चौड़ा सैनिक जो भेड़िया जैसा लगता था आने लगा। तीसरी बार वह काकी के लिए नये कपड़े, चूड़ियाँ, फुन्दे-झुमके लाया। काकी प्रसन्न थी। उसने काँछा से कहा:

''क्यों रे काँछा, तेरी बकरी तो अब खाने लायक हो गई .... क्यों?''[2]

1- सु-राज, पृ0-116
2- तदैव, पृ0-118

काँछा को गुरुंग याद आ गया जो पहले उसकी बकरी खा गया था। वह उसकी माँ को अपने घर ले गया था जहाँ उसे बहुत कष्ट मिला था। घटना की पुनरावृत्ति की यह आशंका उसके मन की अतल गहराईयों में बैठती जा रही थी:

''उसके सीने में रह-रह के भूचाल धधक रहा था। रात उससे खाना भी निगला न गया था। वैसा ही उसने परे रख दिया था। इतनी सर्दी के बावजूद उसे ढंग से कपड़े लपेटने का होश न था। उसके मन में बार-बार एक ही शंका उठती रही -कहीं फिर सब वैसा ही, वैसा ही तो नहीं हो रहा ....।''[1]

उसके मन की आशंका बढ़ती ही गयी। उसके मन में उसकी माँ के साथ घटी सारी घटनाएँ घूम गयीं। परिणाम यह हुआ कि इस प्रकार की दुर्घटना को रोकने के लिए वह चुपचाप भीतर प्रवेश करता है:

''भीतर का दरवाजा यों ही बन्द था।

थोड़ा-सा खोलकर दरार से उसने झाँका-

भेड़िया मुर्दे की तरह लम्बा लेटा खर्राटे भर रहा है ...

उसकी टटोलती निगाहें इधर-उधर मुड़ीं। दाईं ओर दीवार के सहारे मोटे पत्थर की भारी, चपटी शिला खड़ी करके रखी थी ...।

काँछा को न जाने क्या सूझा।

कहाँ से उसमें इतनी शक्ति आई।

उसने अपने दोनों हाथों से भारी-भरकम शिला ऊपर तक उठाई और सोए हुए भेड़िए के सिर पर धम्म से दे मारी......''।[2]

काँछा उस भेड़िया जैसे सैनिक को मारकर बकरी को लेकर भाग खड़ा होता है।

काँछा की यह गाथा अभावों से ग्रस्त उस बालक की गाथा है जिसने यह आपराधिक कृत्य आशंका के कारण किया है। अभाव और गरीबी सही जा सकती है किन्तु अत्याचार

1– सु–राज, पृ0–118

2– तदैव, पृ0–119

की आशंका उसे भेड़िये जैसे उस कठोर व्यक्ति को जान से मारने की प्रेरणा देती है।

आज की नौकरशाही की यांत्रिकता व्यक्ति की मौलिकता को तो नष्ट कर ही देती है, उसकी प्रतिभा को भी कुंठित कर देती है और वह उससे भागकर जाता है तो धनाभाव उसे तोड़ डालता है। बदीउज्जमा के उपन्यास 'एक चूहे की मौत' में क्लर्की करने वालों को चूहेमार की संज्ञा दी गयी है। चूहेमार अनेक बार सोचते हैं:

"वे नियमों से हटकर मौलिक चिंतन से कार्य करें तो सम्भवतः ऐसा करने में वे कम समय में और सरल ढंग से अधिक कार्य कर सकेंगे।"[1]

उनका यह सोचना व्यर्थ जाता है क्योंकि उस चूहे खाने में मौलिक चिन्तन महत्वहीन है और नियम सर्वोपरि है।

"...... यहां नियमों का थोड़ा उल्लंघन भी बहुत आपत्तिजनक माना जाता है और उल्लंघन करने वाले को कड़ी सजाएँ दी जाती है।"[2]

नगर के इस चूहेखाने में श्रेणीबद्धता है जिसके कारण बड़े चूहेमारों के अधीन होकर छोटे चूहेमारों को काम करना पड़ता है बड़े चूहेमार छोटे चूहेमारों की कार्य-कुशलता का प्रमाण-पत्र देते हैं, इसलिए उनकी पदोन्नति सदैव बड़े चूहेमारों पर निर्भर करती है। बड़े चूहेमारों के पास अनेक विशेषाधिकार होते हैं जिनका प्रयोग वे छोटे चूहेमारों के विरूद्ध कर सकते हैं। यही कारण है कि:

"अगर बड़ा चूहामार खुश है तो छोटा चूहामार भी खुश है। वह नाराज है तो यह भी दुखी है।"[3]

बड़े चूहेमार को अधिक वेतन तथा अधिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं और छोटे चूहेमार को अल्प वेतन मिलता है, सुविधाओं का अभाव है जिसके कारण उनका जीवन-स्तर निम्न होता है और उनमें हीनता की भावना रहती है। वे कुंठाग्रस्त भी रहते हैं। इनके लिए-

"चूहाखाना एक बहुत बड़ा बर्फखाना है, जहाँ सभी ठिठुर कर रह गए हैं। इस

1— एक चूहे की मौत, पृ0—10
2— तदैव, पृ0—1
3— तदैव, पृ0—40

ठिठुरन में खून की गर्मी कैसे रह सकती है।.....''[1]

'ग' चूहामार तीसरी श्रेणी का चूहामार है। उसमें प्रतिभा है। और वह उच्चकोटि का कलाकार है। तीसरी श्रेणी का चूहामार होने के कारण उसे सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी। परिणामस्वरूप वह चूहेखाने से त्यागपत्र देकर अपनी कला का उत्कर्ष करना चाहता है। त्याग पत्र देने के पश्चात् भी उसके मन में चूहे हावी रहते हैं, जिससे उसे अपनी कला के विकास की प्रेरणा ही प्राप्त नहीं हो पाती। मौलिक रूप से चिन्तन करने में वह असमर्थ हो जाता है। त्यागपत्र देने के पश्चात् वह बेरोजगार रहता है। भूख से पीड़ित होकर वह विघटन की ओर अग्रसर होता है। पेट पालने के लिए उसे अपनी प्रेमिका से वेश्यावृत्ति करानी पड़ती है। भूख की पीड़ा सहन नहीं होती तो वह अपने चित्र 'प' चूहामार को बेच देता है। चित्र बेच देने के पश्चात् उसकी अनुभूति होती है कि वह स्वयं बिक गया और अन्ततः वह चरम विघटन की स्थिति में पहुँचकर आत्महत्या कर लेता है।

1– एक चूहे की मौत, पृ0–77

(ख) धनाधिक्य के कारण विघटन :

धनाधिक्य के कारण व्यक्ति अपने सामने दूसरों को तुच्छ समझने लगता है और परिवार तथा समाज की मर्यादाओं का वह पालन नहीं करता। 'यह पथ बंधु था' में विघटन के इस मूल कारण की अभिव्यक्ति होती है। श्रीधर सिरिश्तेदार बनकर खूब धन कमाता था:

''उनके (श्रीधर के) बड़े भाई श्रीमोहन ठाकुर ने बन्दोबस्त के दिनों में पूरे राज्य की पैमाइश की थी। जिस जरीब से उन्होंने यह ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न किया था वह आज भी उनकी पत्नी की खास हिफाजत में है। पति उस जरीब को पकड़कर सूबात में सिरिश्तेदारी तक पहुँत गये थे और पत्नी ने उसी जरीब से पूरा मोहल्ला-टोला नाप डाला था।''[1]

श्रीमोहन की पत्नी श्रीमती सावित्री देवी अपनी देवरानी सरस्वती पर नाना प्रकार के अत्याचार करती है, उसका शोषण करती है। सरस्वती के सास-ससुर और पति इस तथ्य को जानते हैं, परन्तु कुछ नहीं कह पाते। यदि कुछ कहना चाहते हैं तो वह स्वयं लड़ने बैठ जाती है और अपने पति से झूठी-सच्ची बातें कहकर उनसे भी डाँट पड़वाती है। सास-ससुर को कुछ नहीं समझती। अपनी पुत्री कान्ता को पढ़ने के लिए उसके मामा के यहाँ भेज दिया जाता है। वहीं उसकी सगाई और पुनः विवाह भी कर दिया जाता है। श्रीधर ठाकुर और उसकी पत्नी अपनी पोती के विवाह में सम्मिलित नहीं हो पाते और अपमान का घूँट पीकर रह जाते हैं। श्रीनाथ ठाकुर श्री मोहन के बारे में सोचते हैं :

''श्रीमोहन रिश्वतखोर है? तभी तो आये दिन यह आम का बगीचा खरीदा, वो जमींदारी बेची, वो नम्बरदारी लेली, करता फिरता है। अब तो छावनी में 'नयी डिझान' का मकान भी बनवा रहा है। तभी उनके मन में एक बात कौंधी कि शायद वह कान्ता को सारा दहेज देना चाहता होगा। यहाँ करता तो परिवार वालों की आँखों में भी आता तथा दूसरे लोगों की नजर जाती। इसी रिश्वत के बल पर ही सुना अपने जमाई को डॉक्टर पढ़ाने नखलऊ भेजने वाला है श्रीमोहन। राम-राम कैसी नीयत हो गयी है इस लड़के की।

1– यह पथ बन्धु था, पृ0–29

घर वालों से पर्दा किये है। माता, पिता, भाई सब पराये हो गये अब इसके लिए? अब तो बस पत्नी, सुसराल वाले ही सगे रह गये हैं। उसकी बहू का बस चले तो वह हम सब लोगों से पूरे मुहल्ले की झाड़ू निकलवा कर छोड़े।''[1]

सरस्वती के बीमार होने पर गुनी खाना बनाती है। एक दिन गुनी को कुछ बताया नहीं जाता तो खाना नहीं बन पाता। श्रीमोहन की पत्नी सावित्री गुनी और अपनी सास से लड़ती है। संध्या समय सावित्री श्रीमोहन को सारी बात बताती है। श्रीमोहन अपनी माँ से स्पष्ट कहता है :

''मेरे बाल-बच्चों की जब कोई इज्जत इस घर में नहीं है तब भला यहाँ रहने से क्या फायदा? हम अब इस घर में नहीं रह सकते। जिन लोगों को पालो-पोसो, वे ही आँखें तरेरने लगें, भला ऐसी भलमनसी करने से क्या फायदा? अब बोलती क्यों नहीं तुम?''[2]

श्रीमोहन आगे तो स्पष्ट शब्दों में अलग होने की बात कह देता है :

''बहू से क्या बात करती हो माँ। मुझसे बातें करो। मैं जानता हूँ कि मेरे बाल-बच्चों के साथ तुम सब क्यों ऐसा व्यवहार कर रहे हो। लेकिन माँ। मैं साफ कर देना चाहता हूँ कि जब तक इस घर में हूँ, मेरे बाल-बच्चों का अपमान नहीं होना चाहिए। और दिन-दिन भर बच्चे भूखे नहीं रह सकते इसलिए कान खोल कर सुन लो कि हम लोगों की रसोई अब आज से अलग बनेगी।''[3]

श्रीमोहन अलग हो गया किन्तु एक दिन उसे भी यह अनुभूति होती है कि दूसरों के मन में भी उसके प्रति एक दीवार खिंच गयी है :

''स्पष्ट था कि शेष कुटुम्ब ने दीवारहीन एक दीवार ऐसी खींच ली थी, उठा ली थी, कि जिसकी अपेक्षा कोई सी भी दीवार अच्छी ही होती। दीवार होने पर लगता है कि दीवार है। सबको दिखती है कि दीवार है। लेकिन न होने पर उस दीवार के लिए किससे क्या

1— यह पथ बन्धु था, पृ0—337
2— उपरोक्त, पृ0—345
3— उपरोक्त, पृ0—345

कहा जाए? सब होते हैं, सब में दीवार खिंची होती है। कब सामने वाले की दीवार आपके लिए अभेद्य हो जाएगी कुछ नहीं कहा जा सकता। दीवार अभेद्य होती है जब अन्तर में खिंची होती है। ऐसी दीवारों का आभास हमें तभी होता है जब स्थान, व्यक्ति, परिस्थिति नितान्त खाली-खाली लगे, कोई उत्तर न आये। हमें चलते हुए या बात करते हुए एक साथ ये दोनों ही बातें लगें कि जमे हुए पानी की गहराई में आप चल रहे हैं; आधीरात की सी दोपहर विवर्ण होकर आपको सुन रही हो - तब हमें मान लेना चाहिए कि स्थान, व्यक्ति या परिस्थिति अब मात्र दीवारें हैं। ऐसी दीवारें जो गूँगी हैं, अन्धी हैं, बहरी हैं जिन्हें अब नहीं तोड़ा जा सकता है, क्यों ऐसी दीवारें मात्र उठती हैं खिंचती हैं - टूटती नहीं हैं, ढहती नहीं हैं। क्योंकि ये दीवारें सम्बन्ध टूटने पर ही उठती है। जरा सी भी भावना शेष हो तो ये दीवारें नहीं बन पाती हैं। तब ऐसे में कोई क्या कर सकता है? और जब श्रीमोहन के मन में तो बहुत पहले ही ऐसी दीवार उठ चुकी थी, तब आज पिता के मन में भी दीवार देखकर मात्र विवर्ण होने के और क्या शेष था?''[1]

धनाधिक्य केवल पारिवारिक विघटन ही नहीं करता अपितु नैतिक और सांस्कृतिक विघटन में भी उसका विशेष योगदान रहता है। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' में धनाधिक्य को सांस्कृतिक विघटन के लिए विशेष उत्तरदायी बताया गया है। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् नए पूँजीपतियों की एक जमात कलकत्ता शहर के विभिन्न भागों में ऊँचे दफ्तरों में बैठ गयी। प्रभासचंद नियोगी भी इस जमात के अंग हैं। करोड़पति बन जाने पर बह कमला डांसर को रात्रि में अपने यहाँ बुलवाते हैं। इससे पूर्व उन्होंने केवल धनार्जन पर ही ध्यान दिया था :

''करोड़पतियों की छोटी-सी कतार में शामिल होने के बाद प्रभासचंद नियोगी ने जीवन में पहली बार 'पर-स्त्री' का स्वाद लिया। इससे पहले उन्होंने आराम और नींद को महसूस नहीं किया था। कभी महसूस भी किया तो उसे पेट के नीचे दबा देने की शक्ति उनमें थी। इसलिए नियोगी ने नींद नहीं, चाँदी और सोना पसंद किया। सिल्वर-मार्केट और गोल्ड-बुलियन-मार्केट-बीसवीं सदी के भारतीय जीवन का, शरीर का 'छात्पिंड' यही है।

1— यह पथ बन्धु था, पृ0—355

आत्मा यहीं बसती है। प्राणों में रस-संचार यहीं से शुरू होता है। नियोगी बचपन से ही ये बातें समझते थे। अपनी समझ का उन्होंने सही उपयोग किया।''[1]

नियोगी की पत्नी का देहान्त हो जाने के पश्चात् उन्होंने अपनी छोटी पुत्री की होशियार और सजी संवरी रहने वाली नर्स से शारीरिक संबंध बना लिये :

''कोई व्यक्ति नौकर-खानसामा बनकर नहीं, परिवार का व्यक्ति बनकर सेवा करने लगे, रात में वापस जाने के समय, सोने के कमरे में आकर, देह पर रजाई डाल दे, दवा खिला दे , बिजली की रोशनी बुझाकर 'नमस्ते' करे....... अच्छा लगता है।

प्रभासचंद नियोगी ने ऐसे ही छोटे-छोटे सुखों के कारण सरकार की तरफ अपने मन और शरीर को ढीला कर दिया।''[2]

निर्मल पद्मावत् के जूट मिल में हड़ताल हो जाती है, तो प्रभासचंद नियोगी फोन करके उसे आधुनिक पूँजीपतियों और मिलमालिकों का फार्मूला समझाते हैं :

''यह गलत फैसला है तुम मजदूरों की शर्ते अभी मान लो। खुद वहाँ जाकर कह आओ कि नया मैनेजर बहाल करोगे और नए मजदूरों के लिए नए क्वार्टर बनवा दोगे। यही दो माँगें हैं। फिर धीरे-धीरे आदमियों को जूट मिल की यूनियन में घुसाओ। सारे बदमाश लीडरों को धीरे-धीरे निकाल बाहर करो।''[3]

प्रभासचंद नियोगी, निर्मल पद्मावत को उस समय भी समझाता है जब इन्कमटैक्स डिपार्टमेन्ट के अफसर उसके बही खातों की जाँच कर रहे हैं। वह कहता है कि लक्ष्मीचंद्र कविरत्न को बुलाकर निपटारा करने का अधिकार दे दे। लक्ष्मीचन्द्र कविरत्न दलाल हैं और दलाल के बिना कोई सौदा नहीं पटता। वह स्पष्ट शब्दों में कहता है :

''तुम खुद नहीं कर सकते, तो मैं कविरत्न को फोन कर देता हूँ। वह सज्जन है। स्वयं तुम्हारे पास चला आएगा। ज्यादा-से ज्यादा दो लाख रूपय खर्च होंगे। मिलकर

1– मछली मरी हुई, पृ0–40
2– उपरिवत्, पृ0–47
3– उपरिवत्, पृ0–98

कंपनी में सेठ ताराचन्द्र को थोड़े से शेयर देने होंगे और रानी साहिबा के साथ किसी नए बिजनेस में साझेदारी करनी होगी। तुम तैयार हो जाओ, निर्मल। नई दुनिया का तौर-तरीका यही है.......।''[1]

विश्वजीत मेहता अठारह कंपनियों का मालिक बन जाने के बाद अपनी पत्नी को तलाक दे देता है। उसके इन कंपनियों के डायरेक्टर बनने का कारण उसकी पत्नी ही थी। उसके पश्चात् मेहता अठारह वर्षीय शीरीं सेल्सवर्ग से विवाह कर लेता है। वह हर साल सर्दियों में न्यूयार्क जाता था, संग्रीला में ठहरता था और प्रत्येक रात पचास डालर और शराब की एक-बोतल देकर कल्याणी को बुलाता था।

निर्मल पद्मावत से सेठ विश्वजीत मेहता की शत्रुता है, इसलिए मेहता निर्मल के जूट मिल में हड़ताल करा देता है। वह दुश्मनी निभाना जानता है :

''मेहता दुश्मनी निभाना जानता है। मेहता ने पूँजीपतियों के एक पूरे दल को निर्मल के खिलाफ ला खड़ा किया है। इस दल के हाथ में अखबार हैं और पूँजीपतियों के अखबारों को पूरी आजादी है। वे चाहे जो कुछ छाप सकते हैं। उनके पास अपना कागज है। विदेशों से मँगवाई गई रॉटरी मशीनें हैं, झूठी-सच्ची खबरें बनाने वाले पत्रकार और संपादक हैं। कोई भी खबर ईजाद की जा सकती है। कोई भी खबर छप सकती है। अखबार अब अखबार नहीं रह गए हैं। जनता के खिलाफ पूँजीपतियों की लड़ाई के हथियार बन गए हैं।''[2]

निर्मल पद्मावत पर आयकर के खातों में लाखों रूपये की गड़बड़ी करने का आरोप लगाया जाता है और यह आरोप भी मेहता साहब के कारण ही लगाया जाता गया है:

''अफसर यही कहते हैं। क्योंकि विश्वजीत मेहता यही कहता है। सेठ ताराचंद मनहरलाल यही कहता है। खानबहादुर यूसुफअली, महारानी श्यामगढ़, जूट प्रिंस कृष्ण चेट्टियर, राजा हरिसिंह देव यही कहते हैं। विश्वजीत मेहता अकेला नहीं है।''[3]

1— मछली मरी हुई, पृ0—129
2— तदैव, पृ0—113
3— तदैव, पृ0—126

पुराने राजा और नवाब नए उद्योगपति बन गए हैं। उन्होंने नए कारोबार आरम्भ किये हैं। ये कारोबार कानून सम्मत नहीं भी हैं। विदशों से चोरी से सोना मँगवाया जाता है:

''विदेशों से जहाजों में लदकर चोरी से सोना आता है। महारानी श्यामगढ़ खुद नहीं' लातीं, उनके खरीदे हुए नौकर लाते हैं। करोड़ों रूपयों का सोना। यह सोना विदेशी बैंकों में जमा होता है। महारानी साहिबा साल में कई बार विदेश जाती हैं। न्यूयॉर्क, लंदन, पेरिस, रोम। अपने हवाई जहाज से जाती हैं। साथ में जाते हैं विश्वजीत मेहता या सेठ ताराचंद या कृष्णन चेट्टियर।''[1]

इसी प्रकार भारत की चाय और अभ्रक विदेशों में बेचा जाता है और विदेशी मशीनें भारत लाई जाती हैं जिससे देश में नए उद्योग-धंधे खुलते हैं :

''आसाम के बागानों की चाय फ्रांस में बेची जाती है। हजारीबाग और कोडरमा-तिलैया का अभ्रक वाशिंगटन में खरीदा जाता है। विदेशों से मशीनें खरीदकर भारत में लाई जाती हैं। विदेशी पूँजीपतियों की सहायता से देश में नए उद्योग-धंधे खुलते हैं। धान और गेहूँ की फसल घटती जा रही है। फैशन और ऐश-आराम के साधनों की उपज बढ़ती है। पूँजीपति सरकार से एक कदम पीछे नहीं रहेंगे 'प्राइवेट सेक्टर' हमेशा पब्लिक सेक्टर से आगे बढ़ता रहेगा। सरकार जीवन-बीमे की संस्थाओं का राष्ट्रीयकरण करेगी। पूँजीपति ट्रांसपोर्ट में पूँजी लगाएंगे। सरकार ट्रांसपोर्ट के साधनों का राष्ट्रीयकरण करेगी। पूँजीपति मनोरंजन के साधनों में पूँजी लगाएँगे। फिल्म कंपनियों में पूँजी लगाएँगे। अखबारों में, पुस्तक-प्रकाशन में, शिक्षा-संस्थाओं में पूँजी लगाएँगे।''[2]

धनाधिक्य विघटन कराने के लिए प्रेरित करता है। भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यास 'अधूरा स्वर्ग' का एक पात्र चतुरसिंह आय बढ़ाने के साधनों में वृद्धि करता जाता है। वह कई मकान और दुकानें बना लेता है। उसके मन में कामिनी को प्राप्त करने की आकांक्षा तीव्र हो उठती है। उसके जब सारे प्रयास निष्फल जाते हैं तो.......

1— मछली मरी हुई, पृ0—127
2— वही, पृ0—127

''एक अवसर ऐसा भी आया, जब उसने यह अनुभव किया कि सीधी उँगली से घी न निकलेगा, तो उसने राजनीति के मुख्य मंत्र छल-कपट को अपना प्रमुख अस्त्र बनाने का निश्चय किया।''[1]

चतुरसिंह कामिनी के पिता ठाकुर वीरबहादुर सिंह को दैनिक रूप से संध्या को शराब पिलाने लगा। जब उसे विश्वास हो गया कि वीरबहादुर सिंह के पास अब धन नहीं रहा है और शराब के बिना वह जीवित नहीं रह सकता तो वह वीरबहादुर सिंह के समक्ष कामिनी के साथ उसका विवाह कराने का प्रस्ताव रखता है। दस हजार रूपये में सौदा पक्का होता है। चतुर सिंह इसमें दोहरी सफलता देखता है। कामिनी तो उसे प्राप्त होगी ही, कामिनी का प्रेमी गजेन्द्र भी परास्त हो जायेगा और वीरबहादुर सिंह की कामिनी अकेली पुत्री है, इसलिए धन उसके पास रहे अथवा वीरबहादुर सिंह के पास, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

''चतुर सोचता था कि रूपया चाहे उसके पास रहे या ठाकुर वीरबहादुर के पास, कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, अन्त में विवाह के पश्चात् या तो सब-कुछ उसी को मिल जायेगा, अन्यथा आगे-पीछे ठाकुर साहब की मृत्यु के उपरान्त वह उनकी सारी सम्पत्ति का अधिकारी हो जायेगा। उसके सन्तोष का एक मुख्य कारण यह भी था कि विजय उसी की हो रही है।''[2]

चतुर सिंह धनाधिक्य और विजय के गर्व में कामिनी को ले जाते हुए गाँव के चारों ओर खेतों-खलिहानों में आग लगवा देता है। प्रज्जवलित अग्नि को देखकर ठाकुर वीरबहादर को चतुर सिंह की बातें स्मरण हो आती हैः

'' प्रज्जवलित अग्नि की लपलपाती लपटों को देखते-देखते एकाएक उन्हें चतुरसिंह का वह कथन याद आया, जिसे वह सदैव दोहरा देता था। जब कभी भी वे योजना की सिद्धि के विषय मे शंका प्रकट करते, चतुरसिंह ऐसे अवसरों पर एक ही वाक्य कहा करता था- 'आप चिन्ता न करें आपकी योजना जहाँ समाप्त होगी, वहीं से मेरी योजना

1—मछली मरी हुई, पृ0—19
2—अधूरा स्वर्ग, पृ0—216

प्रारम्भ हो जायगी।''

''उफ! तो यह है चतुरसिंह की योजना का प्रारम्भ। जिसका आरम्भ विनाश की चरम सीमा से उत्पन्न हुआ हो, उसका अन्त....''[1]

चतुरसिंह कामिनी को अपनी अंकशायिनी बनाने के लिए भी ऐसे ही हथकंडे अपनाता है। वह उसे बताता है कि अग्नि की लपटों में उसका प्रिय गजेन्द्र जलकर मर गया है। कामिनी जब मृत्यु की कामना करती है और आत्महत्या करने का निश्चय व्यक्त करती है तो वह आत्महत्या के विभिन्न साधन उसके समक्ष प्रस्तुत करता है। किन्तु प्रत्येक में कोई न कोई कमी रह जाने की आशंका भी व्यक्त करता है। वह कहता है :

''साधन अचूक होना चाहिये। भूल से कहीं कोई त्रुटि रह गयी तो पुलिस तुरन्त गिरफ्तार कर लेगी और आत्महत्या के जुर्म में तुम्हें लम्बी सजा भुगतनी होगी।''[2]

चतुरसिंह उसके पश्चात् आत्महत्या को पाप बताता है और अन्त में वह अपने हाथों से उसकी हत्या की स्वीकृति माँगता है। स्वीकृति माँगने के साथ ही नाटकीय ढंग से वह कामिनी के गले को दबाता है। गला दबाने का उसका उद्देश्य मृत्यु के प्रति एक डर उत्पन्न करने का और जीवन के प्रति मोह पैदा करने का था जिसमें वह सफल होता है।

''उचित अवसर और अपने अनुकूल उत्पन्न प्रभाव को देखकर चतुरसिंह ने अपनी पकड़ ढीली कर दी और उसे बन्धनमुक्त कर अत्यन्त मृदु स्वर में आश्वासन देने के लिए अपने आलिंगन में इस प्रकार आबद्ध कर लिया जिस प्रकार बेबस शिशु को माँ अपने अंग में छिपा लेती है।''[3]

इस प्रकार चतुरसिंह कामिनी को विवाह के बिना ही प्राप्त करने में सफल होता है। धनाधिक्य व्यक्ति को पतन के मार्ग की ओर आकर्षित करता है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में डॉक्टर सूर्यकुमार के पास अपार धनराशि है, इसलिए वह रंडीबाजी करता है। अपने मित्र की पुत्री को अपने यहाँ नर्स की नियुक्ति देता है। वह मंजरी

1—अधूरा स्वर्ग,पृ0—59
2—तदैव, पृ0—93
3—तदैव, पृ0—96

को भोगना चाहता है। मंजरी के न मिल पाने पर वह रंडीबाजी करने चला जाता है। उसकी पत्नी उसकी प्रतीक्षा ही करती रहती है और फफक कर रो पड़ती है तथा अपनी तकदीर को कोसती है :

"मेरी भी क्या तकदीर है प्रभु। इतने बड़े जमींदार की बेटी, इतने बड़े डॉक्टर की पत्नी-क्या हुआ जो पढ़ी-लिखी नहीं हूँ। मेरी तो तकदीर रंडी से भी गयी बीती है.... मैं जैसे कोई हूँ ही नहीं। महीनों बीत जाते हैं कोई बोल-चाल नहीं हो पाती, बड़े डॉक्टर हैं, बड़े नेता हैं, जिला बोर्ड के चेयरमैन हैं, इतनी ऊँची आमदनी हैं लेकिन मैं कितनी अनाथ हूँ, कितनी असहाय हूँ। जैसे इस घर की तमाम चीजों में से मैं भी एक चीज हूँ। नौकर-चाकर भी मेरी बेबसी समझते हैं। नौकरों-चाकरों के सामने मेरा अपमान भी कर देते हैं। औरतें मुझे रंडीबाज की औरत कहती हैं। लड़के बेटे को रंडीबाज का बेटा कहते हैं। सुन-सुनकर मेरी छाती फटती है। बाहर इनकी जयजयकार होती है, भीतर -भीतर धिक्कार। इतने पढ़े-लिखे और ऊँचे डॉक्टर होकर भी ये इतनी-सी बात नहीं समझते। इच्छा होती है, जहर खाकर मर जाऊँ......।"[1]

धनाधिक्य व्यक्ति की संवेदना भी समाप्त कर देता है। डॉ0 सूर्य की भी यही स्थिति है। एक वृद्ध व्यक्ति अपने एकलौते पुत्र को दिखाना चाहता है किन्तु उसके पास फीस के पैसे नहीं होते। डॉक्टर सूर्य बाहर आकर आदेश देते हैं 'हटाओ' इस पागल को'।[2] समय पर उसको दवा न मिल पाने के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। संवेदना ही नहीं सभी प्रकार के मूल्य समाप्त हो जाते हैं। कालेज में एक छात्र ने एक लड़की को छेड़ दिया। मामले को राजनैतिक बनवा दिया गया। छात्र एक कांग्रेस के एक भूतपूर्व एम0पी0 का पुत्र है इसलिए मामले को कांग्रेस से जोड़ा गया। डॉक्टर सूर्य उस लड़की के प्रति सहानुभूति न रखकर अमानवीय प्रस्ताव रखते हैं :

"यही कि दोष लड़की का है, लड़के का नहीं। लड़की लड़के को फांसना चाहती रही, वह नहीं फँसा तो उस पर झूठा इलजाम लगा दिया।"[3]

1– अपने लोग, पृ0–328
2– उपरोक्त, पृ0–244
3– उपरोक्त, पृ0–324

अधिक से अधिक धन प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न हो जाने पर व्यक्ति अपने भाई को बरबाद करना चाहता है। रामदरश मिश्र के ही अन्य उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में धनपाल इसी प्रकार का चरित्र है। वह अपने छोटे भाई बनवारी को छूट देकर निकम्मा बनाता है जिससे बनवारी घर की वास्तविकताओं से अनभिज्ञ रहे बँटवारे के समय भी वह बेईमानी करता है :

''बनवारी को खेतों की जानकारी नहीं थी। बाद में गाँव के लोगों ने उसे उसकी सारी जमीन की जानकारी दी, तो मालूम हुआ कि कई बीघे खेत धनपाल ने पहले ही अपने नाम करा लिए थे, उनका बंटवारा नहीं किया। उसने बताया कि ये खेत मेरी बीबी के उन रूपयों से खरीदे गये हैं, जो वह मैहर से लाई थी।''[1]

बनवारी का बेटा कुमार जब ठीक स्थिति में आता है तो वह डीह जमीन के एक टुकड़े पर कब्जा कर लेता है :

''कुमार और बंसी के परिवार के बीच पुस्तैनी डीह जमीन के एक टुकड़े के लिए झगड़ा उठ खड़ा हुआ। कुमार ने धनपाल का बदला लेने के लिए उस जमीन पर कब्जा कर लिया, कहा कि यह जमीन हमारे हक में होनी चाहिए धनपाल चाचा ने बेईमानी से इसका बँटवारा नहीं किया था।''[2]

दौलतराम का भाई सिंगापुर से धन कमा कर लाता है तो दौलतराम बलई को एक पाठ पढ़ाने के लिए तैयार होता है। वह उसकी रखैल फुलवा को अपनी ओर सरका लिया।[3]

राजकुमार द्वारा धन कमाये जाने पर बनवारी बाबा फिर आवारा गर्दी करने लगे। उनकी पुरानी दबी हुई इच्छाओं में फिर से उभार आ गया :

''लेकिन बनवारी बाबा पैसा पा कर फिर उभरते गये। अभी तक गरीबी ने उन्हें इतना लाचार बना दिया कि ठंड़क से सारी इंद्रियाँ सिकुड़ी हुई थीं; किन्तु धीरे-धीरे पैसे की धूप पाकर ये इन्द्रियाँ खुलती गई और फिर उनकी पहली आवरागर्दी शुरू हो गयी घर

1– जल टूटता हुआ, पृ0–67–68
2– तदैव, पृ0–329
3– तदैव,–पृ0–364

के जरूरी काम-धाम छोड़कर मेलों-हाटियों चले जाते, काम के खेती के मौसम में नातेदारी करते; सुरती खाने के लिए पूरा गाँव छान मारते। दूसरे गाँव जाकर सोनारों, लोहारों के यहाँ बैठकर घंटों बातें करते। गाँव की औरतों के गहने बनवाते, उनके प्राइवेट सामान लाते और रामलीला में अपना काम-धाम छोड़कर हनुमान जी का अभिनय करते।''[1]

धनाधिक्य के कारण लोग मजदूरों को मनुष्य नहीं समझते। वे उन्हें एक क्षण का भी विश्राम नहीं देना चाहते। सतीश ऐसे लोगों के बारे में सोचता है।

''सतीश को याद आये अनेक चित्र गाँव के, स्वयं महीपसिंह के दरबार के। मजूर-मजूर नहीं है, यन्त्र है। काम करते-करते जरा सा किसी के हाथ थम गये, मालिक गालियों की बौछार करने लगा कोई मजूरिन अपने नन्हे से बालक को दूध पिलाने के लिए उठ गयी, तो गाली तो मिली ही मजूरी भी काट ली गयी।''[2]

महानगरों में धनाधिक्य व्यक्ति का पतन करता है। धनाभाव से ग्रस्त नारियों का शोषण करना सहज हो जाता है। निरूपमा सेवती के उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें' में अनुभा ने सत्रह वर्ष की आयु में नौकरी करना आरम्भ किया था। उसे अनेक कड़वे अनुभव हुए थे। वह एक छोटे से प्लास्टिक-वर्क्स में टाइपिस्ट थी उसके मालिक ने एक दिन उसे अपनी जाँघ पर ही बिठा लिया था :

''उसे छोटे-से प्लास्टिक-वर्क्स के कारोबार के मालिक ने तो उसे खींचकर अपनी जाँघ पर ही बैठा लिया था, 'अजी, आओ ना। डिक्टेशन लेनी नहीं आती तो हम जो प्यार से लिखवाएंगे वह कोई भी भाषा में लिख लो।''[3]

इसी प्रकार जब वह नगर के सबसे बड़े सॉलिसिटर के पुत्र के ऑफिस में टाइपिस्ट थी तो वह किसी न किसी बहाने से रोककर अपने केबिन में बिठाए रखता। अन्ततः वह उससे चिढ़ गया और उसे नोटिस दे दिया गया। नई टाइपिस्ट रखते समय उसने उसके

1– जल टूटता हुआ, पृ0–80
2– वही, पृ0–90
3– पतझड़ की आवाजें, पृ0–52

पिता से ही सौदा किया कि वह देर रात तक रूकेगी। कम्पनी का मैनेजिंग डाइरेक्टर उषा को होटल में ले जाता है और उसकी तरक्की हो जाती है। सुनीला अनुभा को बताती है;

"अरे, यह तुम्हारी उषा भी नंबर वन उस्ताद है। पहले ऑपरेटर ही थी ना। कितनी जल्दी एपाइंटमेन्ट करवा ली। इंपार्टेन्ट पी0एस0 की असिस्टेन्ट बन गयी।"

"हाँ, टाइपिंग तो इसे पहले ही आती थी। बाकी ट्रेनिंग भी ले ली इसने।"

"वह तो है ही। उससे भी इतनी जल्दी तरक्की होती है क्या। मुझसे पूँछ अनु, मैं और अमर एक दिन 'रॉक्स' में गए थे डिनर लेने। वही उस बुढ़ऊ मैनेजिंग डाइरेक्टर के साथ देखा था मैंने इसे।"

"होगा।"

"अरे, वाह। तुम तो ऐसे कह रही हो जैसे यह रोजमर्रा की बातें ही हों। अरे भाई, 'रॉक्स' होटल भी है। वहाँ ऊपर कमरे हैं रहने को। यह महारानी बारह बजे तक क्या कर रही थीं वहाँ।"[1]

इसी प्रकार सी0 के0 अनुजा के सामने प्रस्ताव रखता है किन्तु अनुजा उसे स्वीकार नहीं करती।

सुनीला का विवाह धनी व्यक्ति सुधांशु कपूर के साथ होता है। सुधांशु उसे पत्नी के रूप में केवल खिलवाड़ की वस्तु समझता है। उसकी भावनाओं का ध्यान नहीं रखता जिसके कारण सुनील को वहाँ से भागकर आना पड़ता है अन्ततः सुनीला नींद की अधिक गोलियाँ खाकर आत्महत्या कर लेती है।

गाँवों में धनाधिक्य होने पर चौधरी अपने यहाँ काम करने वाली स्त्रियों को छेड़ते हैं, उनके साथ बलात्कार करते हैं अथवा अनके साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं 'धरती धन न अपना' शीर्षक उपन्यास में इस स्थिति का चित्रण किया गया है। हरदेव चौधरी लच्छो को गेंहूँ के सिट्टे का लाभ देता है और फिर उसके साथ बलात्कार करता है। वह मंगू की बहन ज्ञानों को भी छेड़ता है। लालू पहलवान काली को बताता है :

1— पतझड़ की आवाजें, पृ0—61

"मंगू है न, नत्थू का पुत्र...... जो चौधरी हरनामसिंह की हवेली में काम करता है. ...... उसकी बहन .... नाम तो मुझे याद नहीं.... वह यहाँ मकई कूटने आती थी। एक दिन वह सवेरे आयी तो हरदेव भी बैठा था। बेलने के पास ही अखाड़ा था। वह मालिश करके डण्डबैठक निकालने लगा था। हरदेव ने उसे ठट्ठा किया मैंने भी सुना। लड़की शरीफ थी। उसने उसे झाड़ दिया।"[1]

पालो तो ज्ञानो की छातियों को इतना कसकर दबाता है कि कुछ देर बाद तक भी उसकी छातियों में कसक होती है:

"इसी बीच ज्ञानों भागती हुई आयी और सिर टोकरा पटक वह बफरी हुई आवाज में बोली, 'मैं मोए बूटासिंह और मुंशी के घरों में कभी नहीं जाऊँगी। मोया पालो लाठी लेकर मेरे पीछे दौड़ा और मेरी गुत (चोटी) पकड़ ली। मैंने भी मोए को टोकरे से मारा।"

"यह कहते-कहते ज्ञानो को अपनी छातियों में कसक-सी महसूस हुई और गुस्सा और भी बढ़ गया। 'मोए बेइज्जती करने पर उतारू हो गये हैं।"[2]

धनाधिक्य होने पर व्यक्ति और अधिक से अधिक धन अर्जित करने, दूसरे की सम्पति को हस्तगत करने तथा विभिन्न प्रकार के अत्याचार करने के लिए अपने आपको समर्थ समझने लगता है। और दूसरों को धमकाने या दंडित करने में विश्वास करता है। उसकी सशक्त अभिव्यक्ति हिमांशु जोशी के उपन्यास 'सु-राज' 'में हुई है। नौ गाँव के थोकदार-जमींदारों ने लोहार-हरिजनों की भूमि पर अधिकार कर लिया। गौचर का मार्ग भी बन्द कर दिया। गांगि 'का ने पंचायत करने का प्रयास किया तो कृपालसिंह थोकदार के आदमियों से कहा-सुनी हो जाती है। पटवारी-पेशकार भी थोकदार और जमींदारों के साथ हो जाते हैं। गांगि 'का लोहाघाट की कचहरी में मुकदमा ले जाते हैं। धनकोट में पुनः झगड़ा होता है। मारपीट होती है। लोहार खेतों में मजदूरी करने से इंकार कर देते हैं। इस बात की प्रतिक्रिया जमींदारों और थोकदारों पर होती है :

1—धरती धन न अपना, पृ0—127
2—उपरोक्त, पृ0—245

''इसका परिणाम यह हुआ कि थोकदारों ने अपनी दुकान से उधार सौदा देना भी बन्द कर दिया। कृपालसिंह ने जवाब भिजवाया कि धनकोटिया लोहार अपने बाप की औलाद हैं तो अब तक उनसे लिए कर्ज की एक-एक पाई ब्याज पर ब्याज लगाकर लौटा दें।''[1]

निर्णय थोकदार और जमींदारों के विपक्ष में हो जाता है। इस विजय का सारा श्रेय गांगि 'का को जाता था, इसलिए इस पराजय का बदला लेने के लिए नए ढंग अपनाये जाते हैं। जंगल में चोरी करने का अपराध देवा पर लगाया जाता है। यही नहीं देवा से छोटे नन्दू के साथ भी अत्याचार किया जाता है :

''नन्दू को ठरूवा शराब पिलाकर बुआ के ठाकुरों ने उसकी जमकर पिटाई की-यह समाचार भी काका तक पहुँचाया। यह पहँचाना भी न भूले कि काका ने जगुवा लोहार की जमीन छुड़ाने के लिए किसनसिंह से जो करजा लिया था, उसके लिए काका की जमीन की दिन-दहाड़े कुड़की कराई जाएगी....।''[2]

गांगि 'का बीमार पड़ते हैं और धनकोट के लोहारों से फिर जमींदारों का मनमुटाव हो जाता है। धुनीधार के जंगलों को लोहरों ने आबाद किया था किन्तु अब जमींदार उस पर अपना अधिकार जमा रहे हैं :

''बीमारी की हालत में ही उन्होंने सुन लिया था कि धनकोट वालों से फिर जमींदारों का मनमुटाव हो गया है। इस बार रार बेनाप जमीन की वजह से शुरू हुआ है। धुनी धार के जंगल लोहारों ने आबाद किए। जाड़ों में गड्ढे खोदकर, खाद डालकर सेब और तुमड़िया नाशपाती के पौधे लगाए। ढलवाँ जमीन को चौरस बनाया। सीढ़ीनुमा खेतों में बदला और अब जमींदारों का कहना है कि वह जमीन उनके खेतों के निकट है। इसलिए पहला हक उनका है।''[3]

1– सु–राज, पृ0–25
2– उपर्युक्त, पृ0–26
3– उपर्युक्त, पृ0–32

गांगि 'का अब भी लोहारों का समर्थन करते हैं तो उनके विरुद्ध नए-नए जाल रचे जाने लगे :

"वृद्ध काका को घेरने के लिए नित नए-नए जाल रचे जाने लगे। देवदार के पेड़ों की चोरी के मामले में प्रधान के बेटे घना के बदले अब देवा का ही नाम लिया जाने लगा था। घना को चश्मदीद गवाह बना दिया था। ऐसे और भी कई लोग तैयार करवा दिए थे, जो कहते थे कि देवा को रात के अँधियारे में पेड़ काटते उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखा था।"[1]

केवल चोरी के आरोप तक ही वे सीमित न रहे। उन्होंने ज्योति प्रसाद की हत्या का अपराध भी लगाया। एक दिन प्रातः ही पटवारी-पेशकार ने देवा का घर घेर लिया। बिछौने से घसीटकर उसे बाहर लाया गया और उसके हाथों में हथकड़ी डाली गयीं। भारी भरकम बूट की ठोकरों और डन्डोंसे उसकी पिटाई की गयी। बृद्ध प्रधान ने देवा के अपराध के बारे में पूछा तो बताया गया :

"कमीना, धर्मात्मा बनता है। बनबसा में जोती परसाद की हत्या में भी इसका हाथ बतलाया जाता है। फारम में नूरी मजदूरी न मिलने के कारण मजदूर नाराज थे। अपने फारम के मकान में जिस रात उसकी हत्या हुई, उस रात यह भी वहीं था। हत्या जो हुई, अठारह-बीस हजार की नकदी भी नदारद है........"[2]

इस प्रकार जमींदारों ने पटवारी और पेशकार को अपने साथ मिलाकर गांगि 'का पर परोक्ष रूप से अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। यह वास्तविकता थी कि यदि गांगि 'का लोहारों का समर्थन करना बन्द कर देते तो लोहार कुछ नहीं कर सकते थे, इसलिए जमींदारों का सारा रोष गांगि 'का पर था। गांगि 'का पर तो इस प्रकार के आरोप लगाये नहीं जा सकते थे किन्तु उनके पुत्रवत् देवा को बन्दी कर नैनीताल पहुँचाया जा चुका था। जगराम ने काका को समझाने का प्रयास भी किया :

"आप अब कहीं एकांत में बैठकर राम का नाम जपिए काका। ऐसे जुलम तो हम पर

1— सु-राज,, पृ0—46
2— तदैव,, पृ0—46—47

पहले भी होते थे, अब भी हो रहे हैं - आगे भी पता नहीं कब तक होते रहेंगे। इन्हीं सब कारणों से पटवारी-प्रलय आपको इस तरह झमेलों में डाल रही है। हम निरे पशु नही, सब जानते हैं .....।''[1]

गांगि 'का का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने इस लड़ाई को धर्म और अधर्म की लड़ाई के रूप में स्वीकार किया। काका ने अपनी लड़ाई जारी रखी। पिथौरागढ की अदालत का फैसला भी जमींदारों के विपक्ष में गया। जमींदारों ने मामले को नैनीताल की बड़ी अदालत में ले जाने का निर्णय किया। काका के लिए नैनीताल जाकर मुकदमा लड़ना सम्भव नहीं था। क्योंकि इस दृष्टि से लोहार सक्षम नहीं थे, इसलिए पंचायत बैठी। नाथसिंह ने काका को धमकाया :

''आप बुढ़ा गए हैं। बुद्धि भरष्ट हो गई है कका।' नाथसिंह जोश में आकर कहने लगा, 'तभी तो उल्टी-उल्टी बातें करते हैं। हमारे खिलाफ इन्हें भड़काते रहते हैं। अगर ज्यादा करेंगे तो देख लेंगे लाश का भी पता नहीं चलेगा...।''[2]

पंचायत के सरपंच मानी पंड़ित बनाये गये थे। मानी पंड़ित ने पैसे खाकर जमीदारों के पक्ष में फैसला सुना दिया। उन्होंने अब तक के खर्चे कर हरजाना भी लोहारों पर ठोक दिया। लौहार की आबाद की गई सारी भूमि पर जमींदारों ने अधिकार कर लिया। गौचर का रास्ता भी बन्द कर दिया गया। गांगि 'का ने डिप्टी कलैक्टर को धमकी दी कि यदि न्याय नहीं हुआ तो इसी अदालत के सामने अपने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आत्मदाह कर लेंगे। परिणामतः जमींदारों को लोहारों की भूमि पर से अपना अधिकार छोड़ देना पड़ा किन्तु अब जमींदार गांगि 'का के रक्त के प्यासे हो गये। जमींदारों ने लोहारों के विरुद्ध लड़ाई को दूसरा रूप दिया :

''जिन-जिन लोहारों के पास जितना कर्जा था, जमीदारों ने उन सब पर एक साथ दावा दायर कर दिया।''

1— सु—राज पृ0—48

2— उपर्युक्त, पृ0—50

''अन्त में अदालत से कुर्की करवाकर कटोरी, करछी तक सब एक-एक करके नीलाम करवाने लगे।''[1]

जमींदारों ने जो धमकी गांगि 'का को दी थी, उसे उन्होंने पूरी करके दिखा दिया। एक रात्रि को गांगि 'का की हत्या कर दी गयी :

''कल रात काका वल्का से लौट रहे थे, रास्ते में लोगों ने घात लगाकर पकड़ा और वहीं खोले में चेप कर हत्या कर डाली।''

''सुबह खून से क्षत-विक्षत शव मिला - चौबटिया के किनारे- काफल के पेड़ के नीचे।''

''इससे पहले भी काका की हत्या के अनेक प्रयास किये जा चुके थे। गत वर्ष पूस में रटवाड़ी के मिसाले खोले में उन पर घातक हमला हुआ था। काका बचकर तो निकल भागे, किन्तु कन्धे पर कुल्हाड़ी का गहरा घाव महीनों तक दुख देता रहा।''[2]

वस्तुतः जमींदार पुलिस, तहसीलदार आदि के साथ मिलकर सभी प्रकार के अत्याचार धनाधिक्य होने के कारण करते रहे। विघटन की इस प्रक्रिया में धनाधिक्य होना, और अधिक धन, भूमि पाने की लालसा तथा लालच ने ही परमहंस योगी के समान गांगि 'का का वैसे ही वध कर डाला जैसे महात्मा गांधी को गोली मार दी गयी थी।

हिमांशु जोशी के दूसरे लघु उपन्यास 'अँधेरा और' में भी धनाधिक्य होने के कारण विघटन का चित्रण किया गया है। कथा-नायक पुलिस से भयभीत जंगल में विचरण करता है। फारमवाले बृजवासी उसके आधे खेतों पर अधिकार कर चुका है, शेष खेतों के लिए भी मुँह खोलकर बैठा है। परसिया कंचनियाँ से छिपकर मिलता है और उसके सामने अपने सच का उद्घाटन करता है :

''पुलिस पीछे परी है - बन्दूक तानि के। जब तक ई मुसीबत नाहिं निकल जात, का हो सकत है। फारमवारे बिरजबासी ने म्हारे आधे खेत हजम करि डारे, अब पूरे निगलने

1— सु—राज, पृ0—51
2— उपरोक्त, पृ0—53

के वास्ते मुँह खोलि के बइठा है। खेत-घर छाँड़ि दें तो तू हि बता, कहाँ रहें?....... जौन बात सच नाहिं, उहाको सुपनाँ देखना भी पाप है, घोर पाप।''[1]

परसिया के फरार होने के पीछे अत्याचारों की ही कहानी है। उसने पहले न्याय पाने का भरसक प्रयास किया किन्तु जब सभी स्थानों से उसे न्याय के स्थान पर दुत्कार ही मिली तो उसने स्वंय ही अत्याचारियों को दंड देने का निश्चय कर लिया। उसकी बहन शाम को गाय-डंगर लाने जंगल गई थी किन्तु सात दिन तक वापस नहीं लौटी। थानेदार हरपरसाद ने उल्टे उसके पिता पर ही यह आरोप लगाया कि उसने अपनी बेटी को बेच दिया होगा। उसके पिता भीखू ने दया की भीख माँगते हुए कहा कि वह अपनी पुत्री को कैसे बेच सकता है :

''जब थानेदार किसी भी तरह टलने को राजी न हुआ तो अपनी फटी मिरजई में से मुड़े-तुड़े, मैले-कुचैले कुछ नोट निकालकर गिड़गिड़ाते हुए वह थानेदार के बूटों पर माथा टिकाकर रो पड़ा था, ''देवता, ऐइसा नाँ कहो। कलपानत होई जावेगा। सरकार-दरबार ही ऐइसा कहेगी तो दुनिया का नहीं कहेगी?''[2]

जब से सोहन सिंह का ट्रक भदरपुर रूकने लगा था, तभी से ऐसी घटनाएं घट रहीं थीं। धरमु प्रधान का पुत्र झन्नू का चाल-चलन ठीक नहीं था। शंखी जब लापता हुई थी, तब भी झन्नू पर ही सन्देह हुआ था। शंखी ने लौटकर बताया भी था :

''उसने रोते-कलपते बताया था कि किस तरह से शहर में 'मेला' दिखाने का लालच देकर झन्नू ने उसे जबरदस्ती 'टरक' पर बिठलाया। जाड़ा खूब था। हवा देह को लगती थी। इसलिए अपना आधा कम्बल उसके ठिठुरते शरीर पर लपेटे रहा- नन्ही चिड़िया की तरह अपने सीने से दुबकाए कि कहीं सर्दी न लग जाए। बहेड़ी पहुँचने पर 'मेला' तो क्या दिखलाना था, हाँ, उसे ही एक मेला अवश्य बना दिया था। किसी खपरैल वाले पुराने मकान के अँधेरे कमरे में बन्द करके, जबरदस्ती देसी दारू गले में उड़ेली और सारे कपड़े उतारकर, उन्हें किसी दूसरे कमरे में छिपा दिया था, ताकि बिना कपड़ों के कहीं बाहर न भाग सके। उसे होश

1— सु—राज, पृ0—57—58
2— उपरोक्त, पृ0—61

नहीं क्या-क्या जुल्म उसके साथ होता रहा। सातवें दिन, रात के घुप्प अँधियारे में जब खूब पानी बरस रहा था, बिजली कड़क रही थी - मौका मिलते ही फटे टाट का चीथड़ा देह पर लपेटे बाहर निकल आई थी।''[1]

शंखी पर हुए अत्याचारों का न्याय नहीं हुआ। झन्नू और सोहनसिंह ऐसे अत्याचार करते रहे। साहूकार भी अत्याचार करते रहते हैं। पण्डित सीसराम जब भी गाँव आता वह भीखू की झोपड़ी में ठहरता और रात के अँधेरे में जवान विधवा भावज के साथ बलात्कार करता। साहूकारों का रूपया कभी चुक ही नहीं पाताः

''पण्डित सीसराम प्रधान से पाँच बीसी रूपये करजा लिए थे उसने। हर साल एक बीसी ब्याज के चुकाता रहा। साथ में चावल, धान, दाल का 'सीधा' अलग से। सारी जिन्दगी भर इतना चुकाने के बाद, आज भी साबुत पाँच बीसी रूपये ज्यों के त्यों उसके सिर पर करज के।''[2]

परसिया के फरार होने पर पुलिस उसके घर वालों पर अत्याचार करती है। अमिया और चँदारिया के साथ में बलात्कार किया जाता है। पहाड़ के गाँवों में धनाधिक्य होने पर विघटन होता ही है। हिमांशु जोशी अपने एक अन्य लघु उपन्यास 'काँछा' में बताते हैं कि गुरखा रेजीमेंट से रिटायर्ड सिपाही देवी गुरंग को जब यह पता चलता है कि उसका रिश्तेदार मानबहादुर लापता है तो वह मानबहादुर की पत्नी के साथ सहानुभूति दिखलाकर उसे फँसा लेता है। गुरंग के घर पर उसकी पत्नी थी, सात बच्चे थे, फिर भी वह काँछा की माँ को अपने साथ घर ले गया। गुरंग के घर की स्थिति के बारे में उपन्सासकार कहता है :

''मकान पक्का था- पत्थर का। नीचे गोठ में पशु बँधते, ऊपर की मंजिल में लोग रहते। घर काँछा के अपने घर, से बड़ा था, पर यहाँ रहने वालों की संख्या भी कम न थी। घर की मालकिन के अपने ही सात बच्चे थे - वह स्वयं माँ से अधिक दादी लगती थी। सुरकने वाले कपड़े के बटुए-जैसा मुँह था, जो दिन-रात हर समय खुलता-बन्द होता रहता। गालियों का सिलसिला भी अबाध चलता। जब से माँ के साथ वह पहुँचा है, कहते हैं, उसका तीखा-कर्कश स्वभाव और भी तीखा हो गया है। घर में हर समय युद्ध की - सी भयावह स्थिति।''[3]

1— सु—राज, पृ0—63
2— तदैव, पृ0—65
3— तदैव, पृ0—92

षष्ठम् अध्याय

उपसंहार

✦निष्कर्ष एवं महत्व✦

षष्ठम् अध्याय

उपसंहार

निष्कर्ष एवं महत्व :

'विघटन' का अर्थ है -अलग-अलग करना अथवा विनाश। 'विघटन संगठन का विलोम है, इसलिए उसमें बिखराव और विश्रृंखलता की स्थिति होती है। समाज एक संगठित संस्था होती है। जब उसके संगठन में विषमताएं उत्पन्न हो जाती हैं और उसकी कार्यप्रणाली में अवरोध उत्पन्न होता है तो उसे सामाजिक विघटन कहते हैं। विघटन उत्पन्न होने पर समाज में असंतुलन आ जाता है। सभी समाजशास्त्रियों ने इन्हीं बिन्दुओं को आधार बनाकर 'सामाजिक विघटन' को परिभाषित किया है। पश्चिम में सामाजिक विघटन की प्रक्रिया का आरम्भ सर्वप्रथम हुआ, इसलिए पाश्चात्य समाजशास्त्रियों ने इस पर सर्वप्रथम विचार किया। इलियट, मेरिल, निऊमेयर आदि इसी प्रकार के समाजशास्त्री हैं। हमने सभी के विचारों का मंथन करने के पश्चात् सामाजिक विघटन को निम्न प्रकार परिभाषित किया:

''सामाजिक विघटन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके कारण समूह के अंगों में शिथिलता आती है अथवा उनके सम्बन्ध पूर्णतः टूट जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप उसके अंग शत-प्रतिशत कार्य नहीं कर पाते और समाज में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। परिणामतः समाज के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती।''

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने सामाजिक विघटन की पहचान करने के लिए उसके लक्षणों की पहचान की है। फैरिस ने सामाजिक विघटन के आठ लक्षण गिनाये - (1) औपचारिकता, (2) पवित्र तत्वों का ह्रास, (3) स्वार्थ और रूचि में व्यक्तिभेद, (4) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और अधिकारों पर बल देना, (5) सुखवादी व्यवहार, (6) जनसंख्या में विभिन्नता, (7) पारस्परिक अविश्वास तथा (8) अशान्तिपूर्ण घटनाएं। गिलिन ने सामाजिक विघटन के केवल पाँच लक्षण गिनाये- (1) साधारण दर, (2) समष्टि मापदण्ड, (3) जनसंख्या की रचना, (4) सामाजिक दूरी तथा (5) हिस्सेदारी।

हमने सामाजिक विघटन के उन प्रमुख लक्षणों पर विचार किया है जिनसे समाज तो प्रभावित होता ही है, सहित्य भी प्रभावित होता है। ये लक्षण हैं-

(1) रूढ़ियों और संस्थाओं का संघर्ष, (2) किसी समिति के कार्यों का हस्तांतरण, (3) क्रान्तिवादी भावना, (4) एकमत का ह्रास, (5) नियंत्रण का प्रभावहीन हो जाना तथा (6) सामजिक परिवर्तन की तीव्र गति।

सामाजिक विघटन को प्रभावित करने वाले जो तत्व हैं, उनमें परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। राजनैतिक परिस्थितियाँ सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करती हैं स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय नागरिकों को कांग्रेस सरकार से नाना प्रकार की आशाएं थीं। किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् एक दशक बीत जाने पर भी जब सामान्य व्यक्ति को किसी प्रकार का परिवर्तन लक्षित नहीं हुआ, तो उसका मोह-भंग हो गया। जिसके परिणामस्वरूप सन् 1962 के आम चुनाव में कांग्रेस की शक्ति क्षीण हुई। सन् 1962 में चीनी आक्रमण ने जन-मानस में मोह-भंग की स्थिति को तीव्र किया। सन् 1967 के आम चुनावों के परिणामों ने इसकी पुष्टि की। कांग्रेस को लोकसभा में सरकार बनाने योग्य बहुमत तो अवश्य प्राप्त हुआ किन्तु मद्रास, उड़ीसा, केरल और पंजाब में कांग्रेस की पराजय हुई। उत्तर प्रदेश में चरणसिंह ने दल बदल कर सरकार बनाई। सन् 1969 में मध्याविधि चुनावों में भी कांग्रेस के पक्ष में आशावादी परिणाम नहीं आये। इस चुनाव में जातिगत राजनीति की दिशा अवश्य निश्चित हुई। राष्ट्रपति चुनाव के कारण कांग्रेस का विभाजन हुआ। इन्दिरा गांधी ने समाजवादी दृष्टिकोण अपना कर जन-मानस में अपने नेतृत्व की छाप छोड़ी किन्तु इमरजेन्सी लगाकर जनता के मन से विश्वास समाप्त कर दिया। सन् 1977 के चुनाव में कांग्रेस की पराजय हुई किन्तु जनता दल के विभाजन ने सन् 1980 में पुनः इन्दिरा गांधी को सत्तासीन किया।

सिख आतंकवाद को समाप्त करने के लिए स्वर्ण मन्दिर में सेना का प्रवेश कराया। जिसके परिणामस्वरूप इन्दिरा गांधी की हत्या हुई। इंदिरा गांधी के पश्चात् उनके बड़े पुत्र राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने। उनके कार्यकाल में बोफोर्स तोप, पनडुब्बी एवं एअर बसों की खरीद में ली गयी दलाली के आरोपों ने उनके कार्यकाल को भ्रष्टाचार का काल ही माना गया। सन् 1989 में राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार बनी जिसके नेता विश्वनाथ प्रताप

सिंह चुने गये। सन् 1990 में भारतीय जनता पार्टी द्वारा समर्थन वापस लिये जाने के कारण वी0पी0 सिंह को त्यागपत्र देना पड़ा। चन्द्रशेखर के नेतृत्व में मंत्रिमंडल का गठन किया गया। सन् 1991 के मध्यावधि चुनाव के बीच में ही राजीव गांधी की हत्या कर दी गई। जिसके कारण सहानुभूति-मत कांग्रेस को मिले। नरसिंह राव के नेतृत्व में मंत्रिमंडल का गठन किया गया। नरसिंह राव पर भी भ्रष्टाचार के आरोप लगाये गये। सन् 1996 के आम चुनावों में किसी दल को बहुमत नहीं मिला। 13 दिन तक अटलबिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री रहे, फिर एच0 डी0 देवगौड़ा बने तथा उसके पश्चात् आई0 के0 गुजराल। सन् 1998 में पुनः चुनाव हुए। अटलबिहारी वाजपेयी ने विभिन्न दलों के साथ मिलकर मंत्रिमण्डल बनाया। उनकी सरकार 13 महीने चली। पुनः चुनाव हुए। भारतीय जनता पार्टी ने विभिन्न क्षेत्रीय दलों के साथ मिलकर चुनाव लड़ा और चुनाव के पश्चात् अटलबिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में मिलाजुला मंत्रिमण्डल बनाया गया। यह राजनैतिक इतिहास स्वयं में विघटन का साक्षी हो जाता है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक समरसता के स्थान पर सामाजिक विघटन हुआ। जातिवादी राजनीति की सक्रियता ने उसे बल दिया। वी0पी0 सिंह द्वारा पिछड़ी जातियों के लिये किये गये आरक्षण के परिणाम स्वरूप जातीय संघर्ष तीव्र हुआ। शिक्षा के विकास के कारण अधिकारों की चेतना बढ़ी है और बेकारी, मँहगाई तथा भ्रष्टाचार ने कुंठा और असन्तोष को जन्म दिया है। सामूहिक परिवार टूट रहे हैं। पति-पत्नी के मध्य भी प्रेम की स्थति नहीं रह गयी है। भारतीय समाज में नारी आज भी दलित है। भारतीय समाज में आज भी अंधविश्वास और रूढ़ियाँ प्रचलित हैं। नाना प्रकार के विरोधाभासों ने सामाजिक प्रगति में बाधाएं उत्पन्न की हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस सरकार ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति अपनाई। सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र में अनेक उद्योग स्थापित किये किन्तु कर्मचारियों की अकर्मण्यता और अरूचि के कारण वे उद्योग लाभ अर्जित नहीं कर सके और बीमार हो गये। देश के विकास की गति कुछ ही इस प्रकार हुई की धनी और अधिक धनी तथा निर्धन और अधिक निर्धन होता चला गया। भ्रष्टाचार बढ़ने से भी आर्थिक विकास की दर अवरूद्ध हुई। कृषि के क्षेत्र में हरित क्रान्ति ने देश को आत्मनिर्भर अवश्य बनाया किन्तु

उसका लाभ भी बड़े किसानों को हुआ। देश उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग में विभाजित है। उच्च वर्ग ही प्रसन्न है। विदेशी कर्जों ने भी देश की अर्थव्यवस्था को बिगाड़ा है। देश की बिगड़ती आर्थिक स्थिति ने सामाजिक विघटन को तीव्र ही किया है।

साठोत्तरी भारत में भारतीय संस्कृति का निरंतर क्षय हो रहा है। प्राचीन संस्कारों के प्रति निष्ठा का अभाव होता जा रहा है। भारत धर्म बाहुल्य राष्ट्र है। हिन्दू, सिख, मुसलमान, ईसाई, जैन आदि धर्मों के अनुयायिओं में परस्पर संघर्ष की घटनाओं में वृद्धि हुई है। पंजाब और कश्मीर में आतंकवाद बढ़ा हैं। आतंकवादी संगठनों की बाढ़ सी आ गई है। धर्माचार्य भी वैभव का जीवन जी रहे हैं और उनका उद्देश्य भी अधिक से अधिक धनोपार्जन करना होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में सांस्कृतिक विघटन होना स्वाभाविक हो गया है। धार्मिक उग्रवाद ने राष्ट्र की धर्म-निरपेक्षता को धूमिल कर दिया है।

किसी भी सामाजिक संगठन का मूल आधार परिवार होता है भारतीय परिवार संयुक्त परिवार था जिसमें वयोवृद्ध पुरूष का साम्राज्य होता था। अन्तरंग निर्णय का अधिकार वयोवृद्ध महिला का था। संयुक्त परिवार की सबसे बड़ी विशेषता उसके सदस्यों के मध्य भावात्मक सम्बन्ध होते थे। इनका परिणाम यह होता था कि परिवार में सभी प्रकार के व्यक्ति सुखपूर्वक रह लेते थे। परिवार को देखकर ही विवाहादि सम्बन्ध तय किये जाते थे।

हिन्दी के अलोच्य उपन्यासों में भारतीय संयुक्त परिवारों का चित्रण किया है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में संयुक्त परिवार को चित्रित किया गया है और उसके पश्चात् टूटते भावात्मक सम्बन्धों एवं वैयक्तिक स्वार्थों का वर्णन हुआ है।

पाश्चात्य परिवारों में भावात्मक सम्बन्धों का अभाव है। यही कारण है कि वहाँ वृद्ध व्यक्तियों के आवास की व्यवस्था अलग से की जाती है। पति-पत्नी के सम्बन्धों में भी स्थिरता नहीं रह पाती। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हई' में अमेरिकन संस्कृति के अंगों-उपांगों की एक सूची प्रस्तुत की गयी है जिसमें रूग्ण मानसिकता की झलक मिलती है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही बिना प्रेम के विवाह करने की बाधा अथवा बिना विवाह के किसी विवाहित पुरूष से यौन सम्बन्ध स्थापित करना, इसी प्रकार

के बिन्दु हैं जो आज के उपन्यासों के विषय बन रहे हैं। निरूपमा सेवती के उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें' में प्रेमी द्वारा उसके साथ विवाह न किये जाने पर नायिका एक विवाहित पुरूष से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं क्योंकि उसके साथ उसे मानसिक धरातल पर तृप्ति मिलती है।

भारतीय और पाश्चात्य पारिवारिक व्यवस्था के अन्तर को नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में समझाते हुए बताया गया है कि पश्चिमी सभ्यता नगर सभ्यता है और भारतीय सभ्यता आरण्यक सभ्यता है। पश्चिम के लिए जीवन भोग है किन्तु भारत के लिए त्याग है। यशपाल ने अपने उपन्यास 'बारह घंटे' में प्रेम, सहानुभूति और करूणा के आधार पर इस अन्तर को प्रस्तुत किया है। भारतीय एवं पाश्चात्य परिवारों की तुलना हिन्दी के उपन्यासों में बहुत कम की गयी है।

भारतीय सामूहिक परिवारों में स्त्री की भूमिका सर्वोपरि मानी जाती है। हिन्दी के अनेक उपन्यासों में स्त्री की इस भूमिका को स्पष्ट किया गया है। नरेश मेहता के 'यह पथ बन्धु था' की श्रीमोहन की पत्नी सावित्री, राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' की शीरीं, रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' की रमेश की पत्नी, 'जल टूटता हुआ' के धनपाल की पत्नी, 'धरती धन न अपना' में सन्तसिंह की भाभी, हिमांशु जोशी के उपन्यास 'सु-राज' में छोटी बहू ने पारिवारिक विघटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। ये सभी पात्र वैयक्तिक स्वार्थो की पूर्ति के लिए पारिवारिक विघटन कराते हैं। उनके मन में अन्य किसी भी व्यक्ति के प्रति भावनात्मक सम्बन्धों का अभाव हो जाता है। दूसरों के प्रति स्नेह के स्थान पर शोषण आ जाता है और वे दूसरे पात्रों का शोषण ही करते हैं।

यद्यपि यह कटु सत्य है कि पारिवारिक विघटन में नारी का ही विशेष उत्तरदायित्व होता है किन्तु पुरूष की सहमति के बिना सम्भव नहीं हो पाता। पुरूष की अक्षमता भी एक ऐसा प्रमुख कारण बनती है कि वह उस विघटन को रोक पाने में असमर्थ होता है नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में श्रीनाथ ठाकुर की अक्षमता विघटन का प्रमुख कारण बनी। छोटा पुत्र तबादला कराकर घर से दूर चला जाता है तो बड़ा पुत्र श्रीमोहन बंटवारा कराकर अलग हो जाता है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में चचेरे भाइयों के शोषण से पीड़ित होकर प्रमोद बंटवारे की माँग करता है। दूसरे

उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में रामदरश मिश्र ने पुरुष की भूमिका को और अधिक सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया है। धनपाल बड़ा भाई है और अपने छोटे भाई को आवारा बनने देता है जिससे उसे घर की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात न हो सके। जब बनवारी को यह अनुभव हो जाता है कि बड़ा भाई उसके परिवार के प्रति न्याय नहीं कर रहा तो टकराव बढ़ जाता है। धनपाल स्वयं बँटवारा करता है और उसमें अन्याय भी करता है 'राग-दरबारी' में पारस्परिक कलह और भाइयों में समान आदतें न होने के कारण विघटन होता है। कुसहर प्रसाद ने अपनी लाठी की शक्ति पर भाइयों को घर से बाहर खदेड़ दिया। हिमांशु जोशी के उपन्यास 'सु-राज' में नन्दू ही पारिवारिक विघटन का कारण बनता है। वह बँटवारे में अपनी विधवा भाभी को कुछ देता तो है ही नहीं अपितु बाद में जो कुछ उसके पास बचा था, उसे भी छीन लेता है।

स्त्री और पुरुष की भूमिका के अतिरिक्त पारिवारिक विघटन के कुछ अन्य घटक भी हैं। इन घटकों में प्रमुख है- वैयक्तिक मूल्यों के प्रति आकर्षण, भावना का नष्ट होना, पद और मर्यादा का अन्तर, नियंत्रण का अभाव आदि 'यह पथ बंधु था,' में स्पष्टतः प्रतिपादित किया गया कि जिसके पास पैसा होता है, वही घर का मालिक होता है। श्रीनाथ ठाकुर का अपने पुत्रों पर नियंत्रण भी नहीं रहता।

रामदरश मिश्र के उपन्यासों में शोषण और कलह को विघटन का प्रमुख कारण माना गया है। मन्नू भंडारी के उपन्यास 'आपका बंटी' में आधुनिक युग के शिक्षित और धनार्जन करने वाले पति-पत्नी के मध्य तनाव, बिछोह और तलाक होने के पीछे मूल कारण दोनों के अहं का टकराव है। अहं और स्वातन्त्र्य की भावना के कारण आधुनिक नारी अपने पति को सहन नहीं कर पाती। निरुपमा सेवती के उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें' में सुनीला अपने धनाढ्य पति को इसलिए छोड़कर चली जाती है क्योंकि पति उसकी इच्छा-अनिच्छा को महत्व नहीं देता। जगदीश चन्द्र के उपन्यास 'धरती धन न अपना' में दिलसुख के लम्पट और शराबी होने के कारण उसकी पत्नी उसे छोड़ जाती है। आशा के अनुरूप धन न कमा पाने पर माता-पिता भी पुत्र का बहिष्कार कर देते हैं। काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'अपना मोर्चा' के एक छात्र की स्थिति यही है। अधिक शिक्षा प्राप्त करके युवक भी अपने माता-पिता से अलग हो जाते हैं।

संयुक्त परिवार के विघटन का मूल कारण गुरुदत्त के उपन्यास 'गिरते महल' में प्रस्तुत किया गया है। उपन्यासकार ने यह प्रतिपादित किया है कि संयुक्त परिवार एक भावना है। परस्पर स्नेह पर ही संयुक्त परिवार बना रह सकता है अन्यथा तो उसे विखण्डित ही कर देना चाहिए। एक परिवार के अनेक परिवार बनें। परिवार तो रहेगा ही। इकाई परिवार होने पर भी परिवार होगा। गुरुदत्त की दृष्टि में पाश्चात्य प्रभाव के कारण संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा है किन्तु भारतीय मन-मस्तिष्क इकाई परिवार को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पायेगा किन्तु एक ऐसा समय आने की पूरी सम्भावना है, जब इकाई परिवार ही हो।

स्वतन्त्रता से पूर्व की स्थिति यह थी कि सामान्य जन और मध्यम वर्ग के व्यक्ति कांग्रेस को चन्दा अवश्य दे देते थे किन्तु वे कांग्रेस का स्वयंसेवक बनना उचित नहीं समझते थे। नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बंधु था' में इसी स्थिति का प्रतिपादन किया गया है। सामान्य जन तो राजनीति को व्यर्थ की वस्तु समझते थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् स्थिति में परिवर्तन हुआ। भारत एक गणतन्त्र के रूप में स्थापित हुआ। और चुनावों के कारण सामान्य जन भी किसी न किसी रूप में राजनीति से जुड़ गया। वह भी राजनैतिक चर्चा करने से नहीं हिचकता।

आज की स्थिति यह है कि राजनीति ने समाज को पूरी तरह प्रभावित कर दिया है। समाज में जातिवादी राजनीति घुन की तरह घुस गयी है जो समाज को धीरे-धीरे, भीतर ही भीतर खोखला कर रही है। इसका प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में भी देखने को मिलता है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में राजनीति के इस विकृत रूप का चित्रण किया गया है। यह राष्ट्रीय प्रश्न बन गया है। केवल राजनीति ही नहीं अपितु जातिगत राजनीति ने भी अपने पाँव पसार दिये हैं। गाँव के छोटे स्कूलों से लेकर कॉलेजों तक यही स्थिति है। प्रमोद के कॉलेज में क्षत्रिय और ब्राह्मणों के दो दल हैं और तीसरा दल कायस्थों का है। निर्धन छात्रों की शुल्क-मुक्ति में भी राजनीति चलती है।

कम्युनिस्ट पार्टी के नगरों में श्रमिक और गाँवों में छोटे किसान तथा खेतिहर मजदूरों के प्रति सहानुभूति रखकर समाज और राजनीति को जोड़ने का कार्य करती है।

जगदीश चन्द्र के उपन्यास 'धरती धन न अपना' में डॉक्टर बिशनदास प्रोलतारिया की भावी विजय के प्रति आशावादी है गाँव में जमींदार और चमारों का संघर्ष होने पर उसे याद आता है कि संसार में अनेक सफल और असफल क्रान्तियाँ ऐसी ही छोटी-छोटी घटनाओं से आरम्भ हुई थीं। जहाँ इन्कलावी ताकतों को अच्छी लीडरशिप मिल गयी थी वहाँ वे सफल हो गयी थीं और जहाँ क्रान्तिकारी ताकतें पूरी तरह संगठित न हो सकी थीं, वहाँ उनकी हार हो गयी थी। वस्तुतः मनुष्य का राजनीति से विश्वास उठता जा रहा है क्योंकि उससे व्यक्ति को कोई लाभ नहीं हुआ। मोह-भंग की इस स्थिति का चित्रण हिमांशु जोशी के उपन्यास 'सु-राज' में हुआ है।

आज की राजनीति में समाज-सेवा राष्ट्र-प्रेम सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा, त्याग आदि का महत्व नगण्य हो गया। पद-लोलुपता और स्वार्थ की भावना प्रबल होती गयी। नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में प्रतिपादित किया गया है कि स्वतन्त्रता से पूर्व ही राजनीति में मूल्यहीनता का प्रवेश हो गया था। राजनीतिक का छोटे राजनीतिज्ञों तथा कार्यकर्ताओं का शोषण करते थे। राजनीति में सफलता पाने के लिए पद और मर्यादा की आवश्यकता थी। 'यह पथ बन्धु था' के पुस्तके साहब और ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह इसी प्रकार के राजनीतिज्ञ हैं। सकलदीप नारायण सिंह तो श्रीधर के पीछे गुंडे तक लगा देते हैं। रामदरश मिश्र के 'अपने लोग' में शिवनाथ वर्मा गोरखपुर के एम०एल०ए० हैं और इतने लचीले हैं कि जो व्यक्ति पावर में होता है, उसी की ओर हो जाते हैं। इसी प्रकार का अन्य पात्र मंगल सिंह है जो पहले हिन्दू महासभा में था फिर जनसंघ में आया और अंत में कांग्रेसी हो गया। 'जल टूटता हुआ' में पहले जमींदार अंग्रेजों के समर्थक थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् वे कांग्रेसी हो गये। महीप सिंह इसी प्रकार का पात्र है। दीनदयाल की स्थिति भी यही है। रामकुमार कांग्रेस से समाजवादी पार्टी में चला जाता हैं। उसकी तो मान्यता है कि राजनीति में सब कुछ क्षम्य होता है। वह अपने स्वार्थ पर आधारित राजनीति करता है।

मन्नू भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' में राजनैतिक मूल्यहीनता का विशद् चित्रण किया गया है। प्रदेश का मुख्यमंत्री एक अपराधी को बचाता है और एक 'बेगुनाह' को हत्या के अपराध में बन्दी बनवा देता है। दूसरा पात्र सुकुल बाबू सुरा-सुन्दरी के प्रति बड़ा

अनुरागी पात्र है। मूल्यहीनता की स्थिति नगरों में ही नहीं कस्बों में भी पहुँच चुकी है। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग-दरबारी' में गाँव-सभा का प्रधान किसी भी भूमि को अपने नाम करवाकर उसे किसी अन्य के नाम कर देता है। जिला बोर्ड के चैयरमैन छंगामल ने 'फर्जी प्रस्ताव' बनाकर बोर्ड के डाक-बँगले को एक कॉलेज की प्रबन्धकारिणी समिति के नाम इस शर्त पर लिख दिया कि कॉलेज का नाम छंगामल विद्यालय रखा जायेगा। सनीचरा ने ग्राम-प्रधान चुने जाने से पूर्व ही ऊसर भूमि पर कौआप्रेटिव फार्म खोलने का प्रस्ताव ब्लॉक में भेज दिया और अधिकारियों ने स्वीकार भी कर लिया। पुलिस के दरोगा जी से धन लेकर उसके विरुद्ध दायर मानहानि का मुकद्मा वापस कराने का फैसला किया जाता है।

राजनैतिक चुनावों में भ्रष्टाचार और गुन्डागर्दी का जोर बढ़ा। नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में बताया गया कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति की आशा उत्पन्न होते ही कांग्रेसियों ने उनके रचनात्मक कार्यक्रमों से मुहँ मोड़ लिया और चुनाव की उठा-पटक में लग गये। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में संसद के एक उपचुनाव का वर्णन है जिसमें प्रतिपादित किया गया है कि कांग्रेस जातिवादी राजनीति और धन की शक्ति के सहारे चुनाव जीतती है। चुनाव-सभाओं में गड़बड़ी करने के प्रयास भी किये जाते हैं।

चुनाव के समय नगर जैसी जटिलता गाँवों में भी देखने को मिलती है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में संरपंच के चुनाव के समय यह पता नहीं चल पाता कि कौन किसका समर्थक है अथवा कौन अपना मत किसको दे रहा है।चुनाव में विभिन्न प्रकार के हथकंडे अपनाये जाते हैं। कभी किसी को चुनाव लड़ने के लिए तैयार किया जाता है जिससे दूसरे पक्ष के मतों का विभाजन हो सके ओर कभी शत्रु के प्रबल समर्थक को बदनाम करने का प्रयास किया जाता है। मात्र दस रूपये देकर महाबीर दुबे को अपनी ओर तोड़ लिया जाता है। कुंजू को षड्यन्त्र के द्वारा बदमी के घर पहुँचाकर उसे रंगे हाथ पकड़कर बदनाम किया जाता है। मन्नू भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' में भी चुनाव के समय के इसी प्रकार के कुछ हथकंडों का चित्रण किया गया है। मुख्यमंत्री के प्रमुख व्यक्ति जोरावर को चुनाव लड़ने के लिए उकसाया जाता है। मुख्यमंत्री दासाहब के हथकंडे अधिक सशक्त हैं। 'मशाल' के सम्पादक को विज्ञापन और कागज के कोटे के

द्वारा अपने पक्ष में किया जाता है। गाँव में घरेलू उद्योग-योजना आरम्भ कराई जाती है। दासाहब बिसू ही हत्या का आरोप बिन्दा पर लगवाकर उसे गिरफ्तार करवा देते हैं।

श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' में कस्बों में चुनाव जीतने के तीन प्रमुख हथकंडों पर प्रकाश डाला गया है। रामनगर वाले हथकंडे में जिस प्रत्याशी के साथ प्राण लेने-देने वालों की संख्या अधिक है, वह शान्ति-भंग होने की आशंका में दोनों पक्षों के बराबर-बराबर व्यक्तियों को कारागार में बन्दी बनवा दिया जाता है। जिसके सभी समर्थक बन्दी हो गये, उसकी पराजय निश्चित हो जाती है। नेवादा वाले हथकंडे में धार्मिक व्यक्ति आकर भजन-कीर्तन कराता है और चुनाव से पूर्व ही एक प्रत्याशी की विजय घोषित कर देता है। उस धार्मिक व्यक्ति के कारण उसे वे मत भी मिल जाते हैं जो कभी नहीं मिल पाते। तीसरा हथंकडा महिपालपुर वाला है जिसमें चुनाव अधिकारी अपनी घड़ी को आगे या पीछे कर देता है और प्रत्याशी जीत जाता है। शिवपाल गंज के चुनाव में इसी पद्धति का प्रयोग किया गया। छंगामल कॉलेज की कार्यकारिणी के चुनाव में वैद्यजी अपने विरोधी मतदाताओं को बलपूर्वक वापस लौटवा देते हैं।

नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में भ्रष्टाचार का वर्णन किया गया है। पुस्तके अनेक फण्डों का चंदा खा गया है। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' में इंडस्ट्री मिनिस्टर के रूष्ट हो जाने से नियोगी की स्थिति गड़बड़ा जाती है। निर्मल पद्मावत को नए जूट मिल के लिए सीमेन्ट और लोहे के परमिट की आवश्यकता पड़ती है तो कंट्रोल-मंत्री उसके लिए दावत माँगता है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में शिवनाथ एम0एल0ए0 है जो गर्ल्स कॉलेज के पास सिनेमा खोलने वालों की पैरवी के लिए तैयार हो जाता है। उन्हीं के दूसरे उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में एम0एल0ए0 कालीप्रसाद पहले फटेहाल था। अब गोरखपुर में दो-दो कोठियाँ बनवा लीं। घर के पास की बहुत बड़ी भूमि को अपने अधिकार में कर लिया है। मन्नू भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' में एक मुख्यमंत्री, एक सम्पादक को कागज का कोटा बढ़ाकर उसका क्रय करता है और विरोधी मंत्री को शिक्षा मन्त्रालय देकर अपना समर्थक बनाता है।

भारतीय संस्कृति गत्यात्मक रही है, इसलिए उसमें परिवर्तन की प्रक्रिया एक

स्वाभाविक प्रक्रिया है किन्तु उसे विघटन की संज्ञा नहीं दी जा सकती। परिवर्तन धीरे-धीरे होता है। और वह मूल्यहीनता की स्थिति उत्पन्न नहीं करता जबकि विघटन में नकारात्मक मूल्यों के कारण मूल्यहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। श्री नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में प्राचीन हिन्दू संस्कार का वर्णन किया गया है। जिससे स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्रता से पूर्व सांस्कृतिक विघटन नहीं था। सांस्कृतिक विघटन स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् आरम्भ होता है। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' में समलैंगिक यौनाचार में लिप्त महिलाओं का चित्रण किया गया है। एक स्थान पर पुरुषों की समलैंगिकता का संकेत भी मिलता है। विघटन की प्रक्रिया का संकेत इस बात से मिलता है कि नायक निर्मल पद्मावत अपनी पूर्व प्रेमिका स्वर्गीय कल्याणी की पुत्री प्रिया के साथ बलात्कार करता है। उपन्यास में सांस्कृतिक विघटन के लिए नए बने पूँजीपतियों को महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार किया गया है। वे व्यापारिक वार्ता के लिए भी कहीं जाते हैं तो उनकी 'रिसेप्शनिस्ट' अथवा सेक्रेट्री साथ जाती है।

गाँवों और कस्बों में पर-स्त्री गमन को बहुत अनुचित माना जाता है। सभी को एक दूसरे के बारे में ज्ञात होने पर भी रंगे हाथ पकड़े जाना ही समस्या बनता है। ऐसे समय प्रेमिका अपने प्रेमी पर आरोप लगाने लगती है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में पकड़े जाने पर पार्वती हँसिया को मार-मारकर चीखने लगती है।

'जल टूटता हुआ' में प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक तत्वों का अभाव होते हुए दिखाया गया है। गाँव के पुराने खेल समाप्त हो रहे हैं, त्यौहारों और पर्वों पर युवा वर्ग में उत्साह नहीं रह गया है। नगरों में कमाऊ लड़की की मानसिकता को भी ध्यान में न रखकर आर्थिक लाभ-हानि की ओर ही दृष्टि रहती है। 'पतझड़ की आवाजें' में यौन-सम्बन्धों की पुरुष-मानसिकता का चित्रण हुआ है। नारी को भी यौन-सम्बन्धों की आवश्यकता होती है किन्तु शिक्षित और संस्कारवान नारी चाहे जिससे शारीरिक संबंध स्थापित नहीं कर सकती। वह मानसिक तृप्ति भी चाहती है फिर चाहे उसे विवाहित पुरुष से ही वह शान्ति क्यों न मिलती हो।

शिक्षा संस्कृति का प्रमुख अंग है। अब स्थिति ऐसी हो गयी है कि कोई भी व्यक्ति

शिक्षा-पद्धति के दोषों पर भाषण देने लगता है। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' में इस स्थिति का उद्घाटन किया गया है। उपन्यास में शिक्षकों की गुटबन्दी और उसके कुपरिणामों की अभिव्यक्ति भी हुई है। शिक्षक आटे की चक्की चलाता है तो वह कक्षा और विद्यार्थियों की तुलना में आटे की चक्की को अधिक महत्व प्रदान करता है। विद्यालयों में छात्र की अनुशासनहीनता को कुछ ईटें लेकर क्षमा कर दिया जाता है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में भी शिक्षा-क्षेत्र की दुर्व्यवस्था का वर्णन किया गया है। विद्यालयों से लेकर कॉलेजों तक जातिवादी गुटबन्दी का प्रभाव है। काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'अपना मोर्चा' में विश्वविद्यालय के अध्यापक और छात्रों की विघटित मानसिकता का यथार्थ चित्रण हुआ है। छात्र हड़ताल पर कुलपति द्वारा अध्यापकों की बैठक आयोजित की जाती है और अध्यापक अपने वैयक्तिक स्वार्थ की बातें करते हैं। उनकी भौतिकवादी दृष्टि को सफल अभिव्यक्ति मिल सकी है। विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष की स्थिति यह है कि वह चापलूसी और धमकी की भाषा ही समझता है।

शिक्षा के गिरते स्तर के सम्बन्ध में 'अपना मोर्चा' शीर्षक उपन्यास में बताया गया है कि धमकी अथवा सिफारिश के कारण विश्वविद्यालय में ऐसे प्राध्यापकों की नियुक्ति हो गयी है जो विश्वविद्यालय स्तर के नहीं हैं तथा जिनमें लिखने-पढ़ने की तनिक-सी भी रुचि नहीं है।

प्राध्यापक परस्पर के वार्तालाप में अपनी कक्षा में किसी छात्रा के न होने की शिकायत करते हैं, 'बैंक बैलेन्स' बढ़ते रहने की सूचना देते हैं, निरर्थक निबन्ध प्रकाशित होने से प्रसन्न होते हैं, अदालत के मुकदमों के निर्णय की सूचना रखते हैं अथवा अपनी कक्षाएं नीचे की मंजिल पर पढ़ाने की माँग करते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि विश्वविद्यालय में शैक्षणिक स्तर का विघटन हो रहा है जो सांस्कृतिक विघटन की पृष्ठभूमि है। छात्र-हड़ताल के समय विश्वविद्यालय बन्द कर दिया जाता है तो अध्यापक पिकनिक मनाना चाहते हैं।

'अपना-मोर्चा में छात्रों की मानसिकता पर भी प्रकाश डाला गया है। छात्र पढ़ना नहीं चाहते, अनुशासन में नहीं रहना चाहते अपितु वे तो यह जानना चाहते हैं कि देश में निर्धनता

का कारण क्या है? वे अध्यापकों को हूट करते हैं, छात्राओं को देख-देखकर आह भरते हैं। सम्पन्न छात्र ही चालाक हैं और सभी प्रकार के लाभ भी वे ही उठाते हैं।

समाज में धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति अनास्था का भाव आ रहा है। नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में वामन राव अपनी बहन इन्दु से कहता है कि एक बार वह उसके विद्यालय में पढ़ लेती तो हिन्दू देवी-देवताओं से छुटकारा मिल जाता। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' का नायक निर्मल पद्मावत भाग्य, कर्मलेख, धर्म, नैतिकता, ईश्वर आदि पर विश्वास नहीं करता। उसकी दृष्टि में कर्मलेख अकर्मण्यता सिखाता है, नैतिकताएं गलत कैदखाने की दीवारें है, धर्म अन्धा बनाता है, ईश्वर पर भरोसा करने से स्वयं पर अनास्था उत्पन्न हो जाती है। निरूपमा सेवती के उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें' में बताया गया है कि आज व्यस्त जीवन में परम्परा से जड़ धार्मिक संस्कार प्राप्त ही नहीं होते। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग-दरबारी' में आज के बौद्धिक व्यक्ति की तार्किक शक्ति को भावना से अधिक प्रबल प्रमाणित किया गया है।

साठोत्तरी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता का चित्रण हुआ है। नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' में स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व बनारस में हिन्दू-मुस्लिम दंगे का चित्रण हुआ है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में भारत-पाक विभाजन के समय दंगों का चित्रण तो है ही साथ ही भय की अनुभूति का प्रस्तुतीकरण भी है। हिन्दुओं से कहा जाता है कि मुसलमान आ रहे हैं और मुसलमानों से कहा जाता था कि हिन्दू आ रहे हैं। भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' तो विभाजन की पृष्ठभूमि पर ही लिखा गया है और इसमें प्रतिपादित किया गया है कि दंगों में धनी जाने-माने व्यक्तियों का नुकसान नहीं होता अपितु निर्धन व्यक्ति ही मारे जाते हैं। धनी व्यक्ति तो दूसरे सम्प्रदाय के धनी व्यक्ति की भी सहायता करते हैं। 'तमस' में साम्प्रदायिक दंगों के लिए अंग्रेजी सरकार को ही दोषी सिद्ध किया गया है।

राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' में अमेरिका के होटलों और बार-हाउसों में रंगभेद की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। अमेरिका में न केवल काले लोगों को हेय दृष्टि से देखा जाता है अपितु उनके साथ दुर्व्यवहार भी किया जाता है।

धनाभाव के कारण पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विघटन होता है। सबसे बड़ा दुःख धनाभाव ही है। यदि एक भाई के पास धनाभाव होता है तो उसे अन्य भाइयों से स्नेह अथवा आदर नहीं मिल पाता। नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बंधु था' में श्रीधर की स्थिति का चित्रण किया है। जेठानी, देवरानी का इसीलिए शोषण करती है क्योंकि उसके देवर के पास धनाभाव है। धनाभाव वाला व्यक्ति राजनीति में तो उच्च शिखर पर पहुँच ही नहीं सकता। श्रीधर कांग्रेस की राजनीति में इस तथ्य को भलीभाँति समझ जाता है। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' में धनाभाव के कारण कल्याणी को अमेरिका के कहवाघरों और नाचघरों के चक्कर काटने पड़ते हैं। उसे वेश्यावृत्ति करने पर विवश होना पड़ता है। श्रीनिवास सर्वाधिकारी ने पहले कभी घूंस नहीं ली किन्तु अपनी पुत्री के विवाह में दहेज देने के लिए उनके पास धन का अभाव होता है, इसलिए वे निर्मल पद्मावत के खातों की जाँच के समय धन माँगते हैं।

भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यास 'अधूरा स्वर्ग' में धनाभाव के कारण विघटन की स्थिति का चित्रण किया गया है। ठाकुर वीर बहादुर सिंह ने शराब की लत के कारण अपना सारा धन बरबाद कर दिया। शराब के कारण ही वह अपनी पुत्री को चतुरसिंह के हाथों बेच देता है जबकि वह जानता है कि उसकी पुत्री कामिनी गजेन्द्र से प्यार करती है और गजेन्द्र से उसका विवाह सम्पन्न हो जाने पर वह अधिक प्रसन्न रह सकेगी। गजेन्द्र और कामिनी के विवाह वाले दिन जब बारात दरवाजे पर आ गयी थी, वह अपनी पुत्री कामिनी को देवी का आशीर्वाद लेने के लिए मन्दिर जाने के बहाने चतुरसिंह के साथ जीप में चढ़ा देता है। किशन द्वारा अपनी साली गुलबिया से वेश्यावृत्ति कराना भी धनाभाव का ही कुपरिणाम कहा जायेगा।

रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में उमेश एक उत्कृष्ट कवि और प्रतिभाशाली छात्र था किन्तु धनाभाव के कारण उसकी प्रेयसी माधवी किसी अन्य से विवाह कर लेती है तो वह पागल हो जाता है। मिश्र जी के दूसरे उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में रामकुमार कांग्रेस दल छोड़कर इसीलिए सोशलिस्ट पार्टी में चला जाता है क्योंकि कांग्रेस के नेता की पुत्री उसके प्रेम के उत्तर में उसकी हैसियत पूँछने लगती है रामकुमार कांग्रेस को दकियानूसों की पार्टी मानकर उसे त्याग देता है।

निरूपमा सेवती के उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें' में प्रत्येक युवा नारी पात्र अपने प्रिय युवक से विवाह के लिए आतुर है किन्तु धनाभाव उनके विवाह में बाधा बन जाता है। उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र अनुभा को एक विवाहित पुरूष के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करके सन्तुष्ट रहना पड़ता है तो सुनीला किसी अन्य पुरूष से विवाह करके उसके द्वारा किये जा रहे अत्याचारों को सहन नहीं कर पाती। वह अपने पति को छोड़कर चली जाती है और नींद की अधिक गोलियाँ खाकर आत्महत्या कर लेती है। उषा सभी प्रकार की नैतिकताओं को तिलांजलि देकर ऊँचे से ऊँचा पद प्राप्त करने की होड़ में सफलता पाती है और धनाढ्य बनकर विवाह कर पाने में सफल होती है।

हिमांशु जोशी के उपन्यास 'सु-राज' और 'अँधेरा और' में धनाभाव के कारण जब शोषण बढ़ता जाता है और न्याय मिल नहीं पाता तो व्यक्ति हथियार उठाकर न्याय पाने के लिए जंगल में चला जाता है। निर्धन व्यक्ति का सभी शोषण करते हैं। 'कांछा' में धनाभाव के कारण किसी विवाहित व्यक्ति की दूसरी पत्नी बनने के लिए मजबूर स्त्रियों की स्थिति का चित्रण किया गया है। बदीउज्जमा के उपन्यास 'एक चूहे की मौत' में चूहामार 'ग' अपनी कला के उत्कर्ष के लिए अपने पद से त्यागपत्र दे देता है। त्यागपत्र देने के पश्चात् भी उसके मन में चूहे हावी रहते हैं जिससे उसे अपनी कला के विकास की प्रेरणा नहीं मिल पाती। वह मौलिक रूप से चिन्तन करने में असमर्थ हो जाता है। त्यागपत्र दे देने के कारण वह बेरोजगार हो जाता है। भूख उसे विघटन की ओर धकेलती है। पेट पालने के लिए उसे अपनी प्रेमिका से वेश्यावृत्ति करानी पड़ती है। भूख की पीड़ा सहन नहीं होती तो वह चित्र 'प' चूहेमार को बेच देता है। चित्र बेच देने के पश्चात् उसे यह अनुभूति होती है कि वह स्वयं बिक गया और अन्ततः वह चरम विघटन की स्थिति में पहुँचकर आत्महत्या कर लेता है।

धनाधिक्य के कारण व्यक्ति अपने दूसरे भाइयों को तुच्छ समझने लगता है और पारिवारिक मर्यादाओं का पालन नहीं करता। नरेश मेहता के उपन्यास 'यह पथ बंधु था' में श्रीमोहन सिरिश्तेदार बनकर अपार धन कमाता है। उसकी पत्नी अपनी देवरानी का शोषण करती है। वह अपनी पुत्री का विवाह अपनी ससुराल में जाकर करता है और अपने निर्धन माता-पिता को भी महत्व प्रदान नहीं करता। बँटवारा कराकर अलग भी हो जाता

है। राजकमल चौधरी के उपन्यास 'मछली मरी हुई' में दूसरे महायुद्ध के पश्चात् नए पूँजीपतियों की एक जमात का चित्रण है। ये पूँजीपति बनने के पश्चात् नैतिक विघटन के शिकार बनते हैं। करोड़पतियों की जमात में शामिल होने के बाद प्रभासचंद नियोगी जीवन में पहली बार 'पर-स्त्री' का स्वाद चखते हैं। अपनी पुत्री की नर्स के साथ भी वे शारीरिक सम्बन्ध बना लेते हैं। विश्वजीत मेहता अठारह कम्पनियों के डायरेक्टर बन जाने के पश्चात् अपनी पत्नी को तलाक देकर अठारह वर्षीय नर्तकी शीरीं सेल्सबर्ग से विवाह कर लेता है। शीरीं उसे छोड़कर निर्मल पद्मावत के पास चली जाती है तो वह निर्मल पद्मावत को बरबाद करा देता है। पुराने राजा और नबाब नए उद्योगपति बन जाते हैं। विदेशों से चोरी से सोना मँगवाया जाता है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यास 'अधूरा स्वर्ग' में चतुरसिंह आय के साधन बढ़ाता जाता है। धनाधिक्य हो जाने के पर वह कामिनी को प्राप्त करना चाहता है। चतुर सिंह कामिनी के पिता वीर बहादुर सिंह को रोज संध्या-समय शराब पिलाता है और एक दिन वह कामिनी से विवाह की इच्छा प्रकट करता है। दस हजार रूपये में सौदा पक्का होता है। विवाह वाले दिन वह कामिनी को मन्दिर ले जाने के बहाने से भगा ले जाता है। और गाँव के सभी खेतों-खलियानों मे आग लगवा देता है जिससे गाँव वालों का ध्यान उसकी ओर न जाये तथा वे आग बुझाने में व्यस्त हो जायें। कामिनी के समक्ष वह मृत्यु का भय प्रस्तुत करके बिना उससे विवाह किये ही यौन सम्बन्ध स्थापित करने में सफल होता है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'अपने लोग' में डॉक्टर सूर्यकुमार वेश्यावृत्ति करता है। धनाधिक्य सभी प्रकार की मानवीय संवेदनाओं को नष्ट कर देता है, यह डॉक्टर सूर्यकुमार के उदाहरण से जाना जा सकता है। वह बिना पूरी फीस लिए मरते हुए गरीब बच्चे को देखना नहीं चाहता। एक छात्रा द्वारा छेड़छाड़ की शिकायत होने पर प्रश्न राजनैतिक बन जाता है तो वह उस छात्रा को ही दोषी सिद्ध करना चाहता है। रामदरश मिश्र के दूसरे उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में धनपाल अपने छोटे भाई बनवारी को इसलिए आवारा बनने देता है जिससे उसे घर की आर्थिक स्थिति का ज्ञान न हो सके। बंटवारा भी अपने ढ़ंग से कराता है। दौलतराम का भाई सिंगापुर से धन कमा कर लाता है। दौलतराम बलई की रखैल फुलवा को अपनी ओर सरका लेने में सफलता पा लेता है। निरूपमा सेवती

के उपन्यास 'पतझड़ की आवाजें' में फैक्ट्री का मालिक और बड़ी फैक्टरी के उच्च पदाधिकारी अपनी टाइपिस्ट अथवा सैक्रेट्री से अवैध सम्बन्ध स्थापित करने को आवश्यक शर्त बना देते हैं। सुधांशु कपूर एक सुन्दर नारी सुनीला से विवाह अवश्य करता है किन्तु पत्नी की तरह उसे रख नहीं पाता। उसकी सुख-सुविधाओं अथवा इच्छा-अनिच्छा का ध्यान नहीं रखता।

हिमांशु जोशी के उपन्यास 'सु-राज' में जमींदार लोहारों के द्वारा विकसित खेतों पर अपना अधिकार कर लेते हैं। नीचे की अदालतों से लोहारों को मुकदमा जीतने में सफलता मिलती है किन्तु ऊपर की अदालतों में मुकदमा लड़ने की क्षमता उनके पास न होने के कारण पंचायत होती है और पंचायत जमींदारों के पक्ष में ही निर्णय देती है। गांगि 'का लोहारों का पक्ष लेते हैं तो जमींदार उनके पालित पुत्रों पर अत्याचार कराते हैं और अन्नतः गांगि 'का का वध कराने में सफल रहते हैं। 'अँधेरा और' में जमींदार परसिया के आधे खेतों पर अधिकार कर लेता है तथा वह शेष खेतों के लिए भी मुहँ खोलकर बैठा है। पटवारी, तहसीलदार और जमींदार मिलकर नाना प्रकार के अत्याचार करते हैं।

वस्तुतः साठोत्तरी उपन्यास सभी प्रकार के विघटन की अभिव्यक्ति करने में सफल रहे हैं। सन् 1960 के पश्चात् देश में विघटन का आरम्भ तीव्र गति से हुआ और हिन्दी के उपन्यासकारों ने अपने दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। आज टेलीविजन और कम्प्युटर एक नई सभ्यता को जन्म दे रहे हैं जिससे भविष्य में विघटन के और तीव्र होने की आशंका है और इसी कारण हमें आशा है कि प्रस्तुत शोध-प्रबंध भावी शोध को एक दिशा प्रदान करने मे समर्थ होगा।

आधार ग्रन्थ

अपने लोग -------- रामदरश मिश्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरिया गंज, नई दिल्ली-7
प्रथम संस्करण - 1976

अनुगूंज -------- सुनीता जैन
पराग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली
प्रथम संस्करण-1977

अधूरा स्वर्ग -------- भगवती प्रसाद वाजपेयी
भारतीय ग्रन्थ निकेतन,
लाजपत राय मार्केट, दिल्ली-6
प्रथम संस्करण 1966

अपना मोर्चा -------- काशी नाथ सिंह
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण-1985

आपका बंटी -------- मन्नू भण्डारी
राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण-1971

एक चूहे की मौत -------- बदी उज्जमा
प्रवीन प्रकाशन, दिल्ली
द्वितीय संस्करण-1974

गिरते महल -------- गुरुदत्त
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
प्रथम संस्करण -1969

जल टूटता हुआ -------- रामदरश मिश्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

तमस -------- भीष्म साहनी
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
छठा-संस्करण-1990

धरती धन न अपना -------- जगदीश चन्द्र
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
द्वितीय संस्करण

पतझड़ की आवाजें -------- निरूपमा सेवती
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1970

बारह घण्टे -------- यशपाल
विप्लव कार्यालय, लखनऊ
प्रथम संस्करण - 1968

मछली मरी हुई -------- राजकमल चौधरी
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1961

महाभोज -------- मन्नू भण्डारी
राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1979

यह पथ बन्धु था -------- नरेश मेहता
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण - 1982

रागदरबारी -------- श्री लाल शुक्ल
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
तृतीय संस्करण - 1982

सु-राज -------- हिमांशु एण्ड संस, दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1982

सहायक ग्रन्थ सूची

आधारभूत समाज शास्त्रीय अवधारणाएं	--------	एस0एस0शर्मा सस्य एण्ड संस मेरठ तृतीय संस्करण - 1984-85
आज का हिन्दी उपन्यास	--------	डा0 इन्द्रनाथ मदान राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण - 1975
आधुनिक राजनीति के सिद्धान्त	--------	श्यामलाल शर्मा मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
समकालीन हिन्दी उपन्यास	--------	डा0 डाली लाल साहित्य वाणी इलाहाबाद - 1989
सामजिक विघटन एवं सुधार	--------	विवेक प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली चतुर्थ संस्करण - 1981
साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास	--------	डा0 पारूकान्त देसाई सूर्य प्रकाशन, दिल्ली प्रथम प्रकाशन - 1984
भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास जवाहर	--------	डा0 पी0एम0थामस पुस्तकालय, मथुरा - 1995
साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना	--------	कृष्ण कुमार दिनमान प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण - 1984
सामाजिक समस्याएं एवं विघटन	--------	डा0 रांगेय राघव एवं शर्मा राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण - 1961
स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास, मूल्य-संक्रमण	--------	डा0 हेमेन्द्र कुमार पानेरी संघी प्रकाशन, जयपुर - 1974

स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास -------- डा0 गीता, नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली

संस्कृति के चार अध्याय -------- रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली - 1956

स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन -------- डा0 सुमित्रा त्यागी, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1978

स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाज शास्त्रीय पृष्ठभूमि -------- डा0 स्वर्ण लता, विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, प्रथम संस्करण - 1975

हिन्दी साहित्य का इतिहास -------- डा0 हरिश्चन्द्र शर्मा, मंथन प्रकाशन, रोहतक

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक व आर्थिक चेतना -------- डा0 पिताम्बर सरोदे, अतुल प्रकाशन, कानपुर -1987

उपन्यास और राजनीति -------- डा0सुषमा शर्मा, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद

हिन्दी उपन्यासः सातवाँ दशक -------- डा0 जय श्री बरहाटे, समंचन, कानुपर - 6, 1988

धर्म, संस्कृति और राज्य -------- गुरूदत्त, भारतीय साहित्य सदन, दिल्ली, प्रथम संस्करण

पचासोत्तरी हिन्दी कहानी -------- डा0 देवेच्छा, आत्मा राम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1986

प्रेमचन्द्र और उनका युग -------- डा0 रामविलास शर्मा

प्रेमचन्द्र पूर्व हिन्दी उपन्यास -------- डा0 कैलाश प्रकाश
प्रथम संस्करण - 1962

भारतीय संस्कृति -------- डा0 एस0एस0 नागोरी
वोहरा प्रकाशन, जयपुर

समाज शास्त्र के मूल आधार -------- डा0 द्वारिका दास गोपाल
कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर
प्रथम संस्करण - 1977

सामाजिक विघटन हिन्दी -------- डा0 सत्येन्द्र तिवारी
हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ
प्रथम संस्करण - 1973

स्वतंत्रयोत्तर उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना -------- डा0 सुरेन्द्र प्रताप यादव
भावना प्रकाशन, दिल्ली - 1992

मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास -------- भूपसिंह भूपेन्द्र
श्याम प्रकाशन, जयपुर - 1987
प्रथम संस्करण - 1982

हिन्दी के स्वछन्दतावादी उपन्यास -------- कमल कुमार जौहरी
कानपुर

नगरीकरण और हिन्दी उपन्यास -------- क्षमा गोस्वामी
जयश्री प्रकाशन, दिल्ली - 1981

हिन्दी साहित्यः आठवाँ दशक -------- पुष्पलाल सिंह
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1984

मानक हिन्दी कोश -------- सम्पादक रामचन्द्र वर्मा
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
प्रथम संस्करण - 1965

आदर्श हिन्दी संस्कृत कोश	--------	रामसरूप 'रसिकेश' चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी द्वितीय संस्करण - 1978
समाज शास्त्र कोश और अवधारणाएं	--------	हरिकृष्ण रावत जवाहर नगर, जयपुर प्रथम संस्करण - 1986
हिन्दी साहित्य कोश	--------	सम्पादक डा0 धीरेन्द्र वर्मा ज्ञान मण्डल प्रकाशन, वाराणसी प्रथम संस्करण - सम्वत् 2020

अंग्रेजी ग्रन्थ

A Hand Book of Sociology	-------------	E. Pretter Drydeu Press, New Delhi
An Introduction to Anthropology	-------------	Beals and Hoizer First Edition
Encyclopaedia of Social Science	-------------	Part 7, 14, Talcot Parsons
Human Society	-------------	Kingsly Danis

पत्र-पत्रिकाएँ

आलोचना	पंजाब केसरी
साहित्य सन्देश	परिवेश
सरिता	दैनिक जागरण
अमर उजाला	दैनिक भास्कर